## परमपूज्य प्रातः स्मरणीय निर्ग्रन्थ दि० जैनाचार्य
## १०८ श्री सूर्यसागरजी महाराज
## चातुर्मास पहाड़ी धीरज देहली सं० २००८
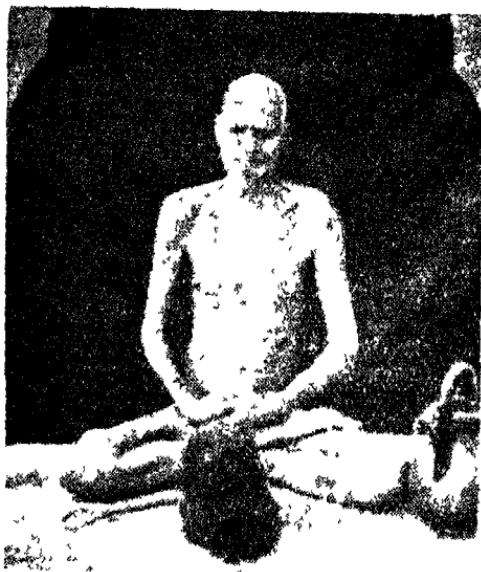
जन्मदिवस कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९४० ग्राम प्रेमसर ( ग्वालियर )

ऐलक दीक्षा आसाज सुदी ६ सं० १९८१ इन्दौर ( मालवा )

मुनि दीक्षा मगसिर बदी ११ सं० १९८१ हाटपीपल्या ( ग्वालियर )

आचार्यपद प्राप्ति कार्तिक शुक्ला ९ सं० १९८५ कोडरमा ( बिहार )

अष्टम नवम प्रतिमा के व्रति मध्यम नैष्ठिक और दशम व ग्यारम प्रतिमाके धारक व्रति उत्कृष्ट नैष्ठक कहलाते हैं यह एक प्रकारमार्ग का हुआ। आगे दूसरी प्रकार का मार्ग इस तरह वर्णन करते हैं कि प्रथम प्रतिमा और दूसरी प्रतिमा का धारक जघन्य नैष्ठक तथा दूसरी प्रतिमा से लगाकर छट्टी प्रतिमा तक मध्यम नैष्ठिक होता है और सप्तम व अष्टम और नवम प्रतिमा धारक उत्तम नैष्ठिक हुआ करता है। अब रहे दशम ग्यारम प्रतिमा के धारक सो साधक कहलाते हैं।

इनके दो भेदों का खुलाशा—नैष्ठिक साधक श्रावक की ग्यारह प्रतिमा के भेद कहे हैं इनका खुलाशा इस प्रकार है—

१—मिथ्यात्व छोड़ने से ११ व्रत वाला जघन्य पाक्षिक होता है।

२—जघन्य पाक्षिक मिथ्यात्व त्याग को निरतिचार पालन करे और अन्याय—जो सात व्यसन त्याग को अतिचार सहित पाले वह मध्यम पाक्षिक होता है।

३—मध्यम पाक्षिक सप्त व्यसन त्याग को अतिचार रहित पालन करे, और जो अभक्ष का त्याग करे वह पूर्ण उत्तम पाक्षिक कहलाता है।

इसके उपरान्त वह श्रावक अभक्ष के भी जो ५ पाँच अतिचार माने हैं उनका भी सर्वथा त्याग करे एवं जो सातिचार पंचाणुव्रत धारे सो नैष्ठिक कहलाता है।

## प्रथम प्रतिमा का स्वरूप

इसमें पंचाणुव्रत सातिचार धारण हुआ करते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—

# दो शब्द

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागर जी महाराज द्वारा रचित यह आवश्यक मार्तण्ड है। इसमें बालक के जन्म होने से लेकर मरण तक की अवस्था का वर्णन किया गया है। साथ ही पाक्षिक नैष्ठिक और साधक इन तीनों प्रकारके श्रावकों के क्या कर्तव्य है क्या क्या कार्य करना चाहिये और क्या क्या कार्य छोड़ने चाहिये तथा पदस्थ के अनुसार उन उन व्रतों की रक्षा के लिये उनमे किसी प्रकार का दूषण न लगे इसलिये उन अतिचारों का भी वर्णन कर दिया गया है ताकि उस व्रत का निर्दोष पालन लिया जा सके। प्रसंग वशात् ध्यान का श्री ज्ञानार्णव के आधार से विशद वर्णन किया गया है। सबसे अंत मे सल्लेखना का वर्णन किया गया है, जिसमे बताया है कि सल्लेखना कैसी अवस्था मे धारण की जाती है, क्यों की जाती है इससे क्या लाभ है? आदि सभी बातों का दिग्दर्शन कराया गया है। आचार्य श्री ने इसके निर्माण करने मे श्री ज्ञानार्णव, स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, रत्नकरण्डश्रावकाचार, मूलाचार, सागारधर्मामृत, तत्त्वार्थसूत्र, धर्मसंग्रह श्रावकाचार, यशस्तिलक चम्पू, आदिपुराण, उत्तर-पुराण, पद्मपुराण, इष्टोपदेश, सारविंदु, छहढाला, षट् पाहुड़, ज्ञानसार, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, मोक्षमार्ग प्रकाश, सार चतुर्विंशतिका, चारित्रसार आदि ग्रन्थों से सहायता लेकर प्रकरणानुसार उन उन ग्रथों के प्रमाण भी दिये हैं। यह ग्रंथ प्रत्येक श्रावक के लिये अत्यंत उपयोगी है।

१ अहिंसा अणुव्रत, २ सत्य अणुव्रत, ३ अचौर्य अणुव्रत, ४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत, ५ परिग्रह प्रमाण अणुव्रत। इस तरह पाचों के नाम सिद्धान्तों में कहे हैं।

स्वामी समन्तभद्र महाराज रत्नकरंडश्रावकाचार में कहते हैं—

**प्राणातिपातवितथव्याहारस्तेयकाममूर्च्छेभ्यः**
**स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥५२॥**

अर्थ—स्थूल १ हिंसा २ झूठ ३ चोरी ४ कुशील ५ परिग्रह इन पांच प्रकार के पापों का एक देश त्याग करना अणुव्रत कहलाता है अन्य कई आचार्यों ने जैसे मूलाचार के श्रावकाचार के कर्त्ताओं ने छट्ठारात्रि भोजन त्याग नामका व्रत भी माना है।

आगे इन पाँचों का पृथक् २ लक्षण बतलाते हैं।

## अहिंसाणुव्रत का लक्षण

**संकल्पात्कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्वान्।**
**न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥५३॥**

अर्थ—जो जीव मन, वचन और काय के संकल्प से त्रस जीवों को नहीं मारता है उसकी उस क्रिया को गणधरादि देव अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

इस प्रकार अणुव्रत पालने वाले श्रावक को अहिंसाणुव्रत की ५ प्रकार की भावना भानी चाहिये।

## अहिंसाव्रत की ५ भावनाएं

**वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पंच ॥४॥** तत्वार्थसूत्र अध्याय ७ सूत्र ४

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य सूर्यसागरजी महाराज ने भारत की राजधानी देहली ( इन्द्रप्रस्थ ) में संवत् २००८ में चातुर्मास किया। ब्रह्मचारी लक्ष्मीचन्द जी ने देहली चातुर्मास के बाद आचार्य श्री के समक्ष मुझसे कहा कि महाराज ने एक श्रावकोपयोगी आवश्यक मार्तण्ड लिखा है इसका संपादन तुम्हें करना होगा। मैं कुछ असमंजस में पड़ गया। आचार्य महाराज ने कहा क्या सोचते हो ? चिन्ता मत करो और निधड़क कार्य करो। मैंने आचार्य श्री की आज्ञा को स्वीकार किया। फलतः यह ग्रंथ पाठकों के समक्ष है। यद्यपि मैंने इसके संपादन और संशोधन में पूर्ण सावधानी से काम किया है फिर भी प्रेस के कम्पोजीटरों की महरवानी से कुछ गलतियां रह जाना स्वाभाविक हैं अतः विज्ञ पुरुषों से निवेदन है कि वे इसके लिये क्षमा करें।

**बाबूलाल शास्त्री**
संपादक 'जैन गजट' देहली

अर्थ—इस प्रकार जो ये पांच भावना कही हैं सो ये अणुव्रतों को महाव्रत रूप होने की शिक्षा देने में समर्थ होती हैं ऐसा आचार्यों ने कहा है।

## इन पाँचों का खुलासा

१—**वचन गुप्ति**—उसे कहते हैं कि जिसको वचन बोलने रूप विकल्प ही न हो ये तो यथार्थ मोटे रूप से है परन्तु यहां पर वचन गुप्ति वह कहलाती है कि जो वचन बोला जावे वह वचन हित, मित और प्रिय हो,किसी को कटुक न लगे। जैसे बोलना चाहिये आपके दामाद आये हैं परन्तु ऐसा न बोलकर यह बोले कि तेरी बेटी का खसम आया इसको कठोर करकस बचन कहते हैं। इस प्रकार के व्यवहार का सर्वथा वर्जन होता है।

२—**मनोगुप्ति**—उसे कहते हैं कि जिस में मन में आत्म-रमण के सिवाय अन्य विकल्प ही न आवे। परन्तु यहां व्यवहार मनोगुप्ति का कथन है सो मन में सिवाय आत्म सुधार के अलावा अन्य विकल्पों के निराकरण रूप भावना सदा होती रहे।

३—**ईर्या समिति**—हे आत्मन्–ईर्या समिति पूर्वक यानि चार हाथ एक जूड़े प्रमाण पृथ्वी को परख (देख) शोधकर गमन करना।

४—**आदान निक्षेपण समिति**—उसे कहते हैं जो आंखों से अच्छी तरह से देखना सोधना और अपने पास जो कोमल उपकरण हो तो उसे मार्जन पूर्वक धरना और उठाना।

५—**आलोकित पान भोजन**—उसे कहते हैं जो ३ घड़ी दिन चढ़ने के पश्चात तथा तीन घड़ी दिन रहने के पूर्व

## प्रातः स्मरणीय निर्ग्रंथ दिगम्बर जैनाचार्य श्री १०८ सूर्यसागरजी महाराज द्वारा विरचित और संग्रहीत ग्रंथों की नामावली

१—श्रावकधर्मप्रकाश—सामान्यरूपसे

२—श्रावकधर्मप्रकाश—विशेष रूप से

३-१२—संयमप्रकाशग्रन्थ—१० भागों में

मुनिधर्म के ५ भाग

३—प्रथम भाग में मुनियों के २८ मूलगुण।

४—द्वितीय भाग में आचार और विचार।

५—तीसरे भाग में पंचाचार किस तरह से पालना।

६—चौथे भाग में किस प्रकार भावना रखकर धर्म-ध्यान स्वाध्याय सहित संतोष रखना।

७—पांचवें भाग में समाधिमरण की ठीक २ विधि।

श्रावक धर्म के पांच भाग

८—सम्यग्दर्शन अधिकार।

९—पाक्षिक अधिकार।

१०—भोजन विधान का विविध प्रकार खुलासा।

का जो समय है उस में भी उजाला यानि प्रकाश पूर्वक सिद्धान्तानुकूल अपने पद के अनुकूल भोजन करना उसमें दोष नहीं लगाना ।

इस प्रकार पांचों भावनाओं का पूरी तरह से पालन करना । आगे अहिंसा अणुव्रत के पांच अतिचार बतलाते हैं—

**छेदनबन्धनपीड़नमतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।**
**आहारवारणापि च स्थूलवधाद् व्युपरतेः पञ्च ॥५४॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

इस प्रकार अहिंसाणुव्रत के अतिचार छोड़ना योग्य है ।

१—तिर्यंच के या और के नाक कान आदि अंगों का छेदना
२—इच्छित स्थान में जाने से रोकना ।
३— डंडा, कोड़ा आदि शस्त्रों से मारना पीटना ।
४—शक्ति से भी अधिक भार लादना या अधिक बेमयाद ा से कार्य लेना ।
५—आहार पानादिक समय पर न देकर बेसमय और थोड़ा देना । इस प्रकार अतिचार टालना आवश्यक है ।

## सत्याणुव्रत का लक्षण—

**स्थूलमलीकं न वदति न परान्वादयति सत्यमपि विपदे ।**
**यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवैरमणम् ॥५५॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

**अर्थ**—जो स्थूल झूठको न तो आप बोलता है और न दूसरों से बुलाता है तथा दूसरों की आपत्ति के लिये सच भी स्वयं नहीं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है उसकी उस क्रिया को गणधर आदि महापुरुष स्थूल असत्य का त्याग अर्थात सत्याणु-

११—नैष्ठिक-श्रावक की प्रतिमाओं का स्वरूप।

१२—किस तरह श्रावक अवस्थामें समाधिमरण करना।

१३—अध्यात्म ग्रन्थ संग्रह—आठ ग्रन्थों का समुदाय कर के उनकी बालबोधनी टीका।

१४—आत्म साधन मार्तण्ड—आत्म अनुभव का उपाय।

१५—आत्म सद्बोध मार्तण्ड—सामायिक आदि का स्वरूप संग्रह।

१६—अभक्ष विचार मार्तण्ड—२२ अभक्षों सहित द्विदल का स्वरूप पूर्ण विधि विधान सहित।

१७—सद्बोध मार्तण्ड—निगोद से निकलना तथा व्यवहार राशी व चतुर्गति देव पर्याय सहित मोक्ष का स्वरूप।

१८—निर्जरामार्तण्ड—कर्म की सत्ता, बंध, उदय, उपशम आदि १० करणों सहित स्वरूप।

१९—निजानंद मार्तण्ड—शुद्धात्मा की व्यवस्था कैसे और क्यों करनेरूप समझावट तथा आत्मा का शुद्ध अनुभव का स्वरूप गुणस्थान मार्गणा सहित।

२०—विवेक मार्तण्ड—संसारी जीवों को किस प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव कर अपनी आत्मा को बलवान बनाना चाहिए उसका कर्तव्य यानि उपाय।

२१—स्वभावबोध मार्तण्ड—आत्मा किस प्रकार परीषह सहकर अपना स्वरूप निजानंद पद कैसे प्राप्त कर सके।

२२—प्रबोध मार्तण्ड प्रथम भाग—प्रश्न संसारी आत्मा संसार के व्यवसाय से कैसे छुटकारा पावे उसकी व्याख्या।

२३—प्रबोध मार्तण्ड द्वितीय भाग—उत्तर, संसारी आत्मा संसार की व्यस्था में रहते हुए संसार के कारणों से इस प्रकार भावना से प्रथक हो सकता है।

२४—आर्षमार्ग मार्तण्ड—इसमें पंचामृत अभिषेक व प्रतिमाजी पर केसर पुष्प नहीं चढ़ाना तथा स्त्रियें भगवान का स्पर्श न करें चँवर रात्रि पूजना द का निषेध।

२५—आवश्यक मार्तण्ड—पाक्षिक श्रावक से लेकर ग्यारह प्रतिमा तक का तथा समाधिमरण करने का खुलासा विधि विधान सहित स्वरूप।

२६—लावनी संग्रह—पुरातन लावनियों का संग्रह।

२७—विविध संग्रह—पूजन मुनियों की आहार विधि वगैरह।

२८—नित्य पाठ गुटका—स्तोत्र तथा सामायिकादि ।

२६—परम अध्यात्म मार्तण्ड—शुद्धात्म द्रव्यकी कथनी।

३०—तत्त्वालोक मार्तण्ड—द्रव्य की कौन २ गुण और पर्यायें हैं तथा परिणमनशीलता का यथार्थ स्वरूप ।

३१—स्तोत्र मार्तण्ड—कई स्तोत्रों का संग्रह ।

३२—प्रभात प्रार्थना—प्रातः बोलने की स्तुति रूप कथन।

# मुनि दीक्षा लेने के समय से अब तक जिन २ स्थानों में आचार्य श्री ने चातुर्मास किये उनकी नामावली

१—संवत १९८१ इन्दौर चतुर्मास दीक्षा।

२—सं० १९८२ ललितपुर में चतुर्मास।

३—सं० १९८३ इन्दौर में लावरेभरों पर चतुर्मास।

४—सं० १९८४ इन्दौर में खजूरी बाजार लशकरी मंदिर जी में।

५—सं० १९८५ श्री सम्मेदशिखर जी की यात्रा से कोडरमा में।

६—सं० १९८६ जबलपुर में चतुर्मास।

७—सं० १९८७ दमोह में चतुर्मास।

८—सं० १९८८ खुरई (सागर) में चतुर्मास।

९—सं० १९८९ टीकमगढ़ जिला झाँसी में चतुर्मास।

१०—सं० १९९० भिंड (ग्वालियर) में चतुर्मास।

११—सं० १९९१ आगरा पीरकल्याणी नशिया में।

१२—सं० १९९२ लाड़नू मारवाड़ में चतुर्मास।

१३—सं० १९९३ जयपुर में चतुर्मास।

१४—सं० १९९४ अजमेरमें सेठ भागचंदजी की नसियाजी

१५—सं० १९९५ उदयपुर मेवाड़ में चतुर्मास।

१६—सं० १९९६ कुरावड़ जिला उदयपुर मेवाड़ में।

१७—सं० १९९७ भिन्डर जिला उदयपुर मेवाड़ में।
१८—सं १९९८ भीलवाड़ा जि० उदयपुर मेवाड़ में।
१९—सं० १९९९ लाड़नू जि० जोधपुर मारवाड़ में।
२०—सं० २००० कुचामन मारवाड़ जि० जोधपुर।
२१—सं० २००१ जैपुर नगर राजस्थान में।
२२—सं० २००२ मंदसौर मालवा में।
२३—सं० २००३ इन्दौर दीतवारिया बाजार में।
२४—सं० २००४ सँयोगतागंज छोटी छावनी इन्दौर में
२५—सं० २००५ इन्दौर तुकोगंज सर सेठ हुकमचंदजी साहब के इन्द्र भवन में।
२६—सं० २००६ उज्जैन फ्रीगंज माधोनगर में सेठ साहब के मील के कंपाउंड में।
२७—सं० २००७ कोटा शहर राजस्थान।
२८—सं० २००८ हिन्दुस्तान की राजधानी देहली शहर (इन्द्रप्रस्थ) में पहाड़ीधीरज पर।

卐

❀ नमः सिद्धेभ्यः ❀

# ॥ आवश्यक मार्तण्ड ॥

निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैनाचार्य पूज्यपाद १०८ श्री सूर्यसागर जी महाराज द्वारा संग्रहीत

## मंगलाचरण

**नमः सकलज्ञानाय, नमः सकलसंयमाः**
**नमः परमपवित्राय, त्रिजगद्गुर्वे नमः ॥१॥**

अर्थ—हे प्राणियो ! मंगल संसार भर के प्राणियों के लिये सदा सुखकारी है। परन्तु मंगल किसे कहते हैं और वह कैसे होता है? इस बात की योग्यता से प्राणी बहुत ही अनभिज्ञ ही हैं। अतः संसार भर के प्राणियों को सबसे पहिले इसके प्रकारको समझने की बड़ी आवश्यकता है।

इसलिये यहां पर सबसे पहिले ग्रन्थ के आदि में मंगलाचरण किया है। ये मंगलाचरण चार प्रकार की व्यवस्था को बतलाने वाला है, उन चार प्रकार की व्यवस्थाओं के नाम और उनका स्वरूप निम्न प्रकार है—

१ **आगम का सेवन**— पूर्वाचार्यों का मन्तव्य सदा ही निवृत्तिमार्ग की तरफ झुकता रहा है।

२ **युक्ति का अवलम्बन**—लौकिक में रहते हुए धर्म में किसी प्रकार की बाधा न आवे।

३ **परम्परा गुरुओं का उपदेश**—हमारे जैनधर्म के मार्ग में किसी प्रकार की क्षति न आवे।

४ **स्वसम्वेदन**—एकान्त में बैठ कर आत्मानुभव करो कि हमारी आत्मायें किसी प्रकार की कषाय वश होकर विपरीतता पर तो नहीं उतर रही हैं।

इस प्रकार का खयाल रख करके आगम का सम्पादन करना चाहिये। आगम का सम्पादन तीन प्रकार से होता है। एक तो प्रेमरूप से, दूसरा भयानक रूप से और तीसरा यथार्थ रूप से।

न कि हमारी मंशा के अनुकूल किसी ने कुछ कह दिया। वाके खण्डन के लिये हमारा जो निवृत्ति मार्ग का ह्रास हो जावे उसकी परवाह नहीं करते, कुछ अन्ट सन्ट ही लिख मारते हैं ये विपरीत मार्ग है। जिससे कर्म बन्ध होवे और धर्मका ह्रास तथा समाज में शिथिलता आने से धर्म की निन्दा होवे ऐसा कार्य करने वाला नरक और निगोद का पात्र होता है।

खयाल करिये जैनधर्म सदा से ही निवृत्ति मार्ग का ही उपदेश देता है जैनधर्म प्रवृत्ति मार्ग से सदा ही दूर रहने वाला है।

**प्रश्न**—जैनधर्म प्रवृत्ति मार्ग से दूर रहने वाला है तो फिर देव पूजा, गुरूपास्ति, दान देना, विद्या पढ़ाना, मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाओं को दान देना, वसतिका बनवाना, औषधालय खोलना यानि पर प्राणी का उपकार करना प्रवृत्ति मार्ग है जो सब बन्द हो जावेगा, फिर धर्मी स्वच्छंद हो जावेंगे। आपने ठीक उपदेश दिया कलिकाल तो पहिले से ही था। आपने और भी प्राणियों को कार्यरूप प्रवर्तने से रोक कर स्वच्छंद बनाने का ठीक मार्ग बनाया।

**उत्तर**—सुनो आप अभी जैनधर्म के उपासक हो यह हम समझ गये। परन्तु जैनधर्म को समझे नहीं। परम्परागत जो जैनधर्म चला आ रहा है उसे मैं आपको सिद्धान्तों द्वारा लिखा हुआ ठीक तरह से समझाऊंगा। हमारे यहां थोड़े दिनों से इस जैनधर्म में कालदोष के निमित्त से दो टुकड़े हो गये हैं १ दिगम्बर २ श्वेताम्बर। भगवान भद्रबाहु आचार्य महाराज के समय से विक्रम सम्वत १३६ से इसका लेख आचार्य देवसेन कृत भाव संग्रह नामक ग्रन्थों में भी है और स्वामी भद्रबाहु चरित्र में भी है तथा आचार्य इन्द्रनन्दीकृत नीतिसार नामा ग्रन्थ में भी है वहां से देखकर अच्छी तरह से आप अपनी दिल की शंका समाधान कर सकते हैं, आपका संशय निकल जावेगा यानि दूर हो जावेगा।

जैसे पहिले यह जैनधर्म दिगम्बर नाम से नहीं पुकारा जाता था। इसका नाम था, क्षपणक धर्म। श्वेताम्बर होने से यह धर्म दिगम्बर कहलाने लगा। सुनो इस दिगम्बर जैनधर्म में भी फिर टुकड़े होते ही रहे, जिनका नामोल्लेख यहां थोड़े से रूप में कराए देता हूं। शेष देखना हो तो उपरोक्त ग्रन्थ देखें। १ संघ का नाम मूलसंघ, २ संघ का नाम द्राविडसंघ, ३ संघ का नाम यापनीय संघ, ४ संघ का नाम माथुर संघ, ५ संघ का नाम काष्ठासंघ, ६ संघ का नाम जामलीय संघ, ७ संघ का नाम

इस प्रकार इस धर्म में चालनी न्यायकर बहुत से भेद हो गये, उन संघो की अलग अलग प्रवृत्ति रही।

बाहर से तो जैनधर्मी कहलाना परन्तु आचरणों में शिथिलाचारी जैन। कहलाने तो लगे मुनि, पंच पापों के सर्वथा त्यागी,

परन्तु मार्ग चला दिया प्रवृत्ति का जिसमें हिंसा होवे। कारण अपने मनोगत मार्ग की पुष्टि करना। देखो दर्शनसार ग्रन्थ।

इस जैनधर्म में धर्म के दो भेद आचार्य महाराजों द्वारा प्रतिपादन किये गये हैं।

१ पंचपापों का सर्वथा नवकोटी त्याग सो तो मुनियों का मार्ग है।

२ पंचपापों का एक देश त्याग सो धर्म श्रावकों का है जो तीन कोटी से भी पापों का त्याग करे तथा ६ कोटी से भी त्याग करे सो व्रती श्रावक कहलाता है।

३ एक देश त्याग में भी एक देश पालन करना। जसे पाक्षिक अवस्था में संकल्पी हिंसा का त्याग न कि और प्रकार की हिंसा का त्याग।

श्रावक की दशामें हिंसा का इस प्रकार का त्याग हुआ करता है। जैसे "त्रस हिंसा का त्याग वृथा थावर न संहारे।"

प्रश्न— जैनधर्म में हिंसा कितने प्रकार की हुआ करती है। इसका खुलासा करिये।

उत्तर—मूल में हिंसा दो प्रकार की हुआ करती है (१) स्व हिंसा (२) पर हिंसा। इनके भी दो दो भेद हुआ करते हैं जैसे एक द्रव्यहिंसा दूसरी भावहिंसा। सर्व देश पचपापों का त्याग करने वाले जो महा पुरुष हैं वो नवकोटी सर्व प्रकार की हिंसा को त्याग देते हैं जैसे मुनिराज।

रहा श्रावक धर्म, सो श्रावक के भेद प्रभेद धर्म हैं, उनमें हिंसा धर्म पालनमें अपने २ पदस्थ के योग्य धर्म को पाला जाता है उसे श्रावकाचारों से समझना चाहिये। यहां तो मोटे रूप से दिग्दर्शन

कराया जाता है। पाक्षिक श्रावक तथा नैष्ठिक श्रावक सो इनके भी जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट रूप से तीन २ भेद होते हैं। नैष्ठिकों के भेदों में बतलाया है कि पहिली प्रतिमा से छठी प्रतिमा तक जघन्य नैष्ठिक, सप्तम प्रतिमा, अष्टम प्रतिमा तथा नवम प्रतिमाधारी मध्यम नैष्ठिक और दशम तथा ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट नैष्ठिक कहलाते हैं।

इसके अलावा सिद्धान्त ग्रन्थ में ऐसा भी कथन मिलता है कि जो अव्रति पुरुष होते हैं वो तो पाक्षिक, और प्रथम प्रतिमा से लेकर नवम प्रतिमा तक नैष्ठिक तथा दशम ग्यारम प्रतिमा-धारी साधक कहलाते हैं।

**प्रश्न**—आपने जो सिद्धान्त बतलाया सो तो मान्य है परन्तु इसके नाम निर्देश से काम नहीं चलेगा, इनका विशेष खुलासा करियेगा, जो समझ में आवे।

**उत्तर**—प्रथम पाक्षिक, दूसरा नैष्ठिक, तीसरा साधक। इनका खुलासा इस प्रकार है, सो सुनो

## १ पाक्षिक का स्वरूप

पाक्षिक श्रावक के ३ तीन भेद हैं (१) जघन्य (२) मध्यम (३) उत्तम। इनमें पहले जघन्य पाक्षिक श्रावक का स्वरूप बतलाते हैं।—

## जघन्य पाक्षिक

४५ दिन के बच्चों से कहते हैं। जब बच्चा पैदा होता है तब से ४५ वें दिन उसकी माता उसको लेकर मन्दिर जी में आती है और उस बच्चे को इस प्रकार का नियम कराया जाता है जिसे मूलगुण कहते हैं।

मूलगुण—

पंचउदम्बर तीनमकार, सद् गुरुधर्म देव आधार।
जघन्य पाक्षिक नामप्रधान, मातपिता रक्षक ही जान ॥

**प्रश्न**—पंच उदम्बर और तीनमकार क्यों छोड़ना चाहिये ?

**उत्तर**—स्थूलःसूक्ष्मस्तथाजीवाः— सन्त्युदम्बरमध्यमाः ।
तन्निमित्त जिनोद्दिष्टं पंचोदम्बरवर्जनम् ॥

अर्थ—स्थूल तथा सूक्ष्म जीवों के ये पंचोदम्बर फल घर हैं इनमें सदा जीव चलते फिरते ही रहते हैं। इस निमित्त से हिंसा बनी ही रहती है अत. ये जैनियों के वास्ते सब से पहिले त्याग होना ही लाजिम है। इनके त्यागे बिना जैनी बन ही नहीं सकता, इनके बिना मूलगुणी श्रावक होता ही नहीं।

**प्रश्न**—मूलगुण कितने प्रकार के होते हैं ?

**उत्तर**—सुनो मूलगुण आचार्यो ने कई प्रकार से बतलाये हैं। सो मैं तुम्हें यहाँ बतलाता हूं।

श्रावक के व्रत पालने से नियम कर स्वर्ग होता ही है—

यः श्रावकः व्रतैस्शुद्धः पराराधनचेतसः ।
कर्मेप्यन्तेऽच्युते स्वर्गेदेवानामधिपोभवेत् ॥१॥

अर्थ—हे भव्यो श्रावकों के व्रतों को निरतिचार पालने से वो प्राणी स्वर्ग मे जाकर देवों का अधिपति इन्द्र होकर सागरों पर्यन्त सुख भोगता है पश्चात् वहाँ से चयकर मनुष्य होकर मोक्ष प्राप्त करता है ऐसा व्रतों का महत्व होता है।

सो ही भगवन पूज्यपाद स्वामी इष्टोपदेश में बतलाते हैं—

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वतनारकम् ।
छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥३॥

अर्थ—व्रतों के द्वारा देवपद प्राप्त करना बहुत अच्छा है किन्तु अव्रतों के द्वारा नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। जैसे छाया और धूप में बैठने वालों में अन्तर पाया जाता है, वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करने वालों में फर्क पाया जाता है। इसलिये व्रतों का पालन करना श्रेयमार्ग है।

आचार्य सोमदेव सूरि यशस्तिलक चम्पू में कहते हैं—

मद्यमांसमधुत्यागाः सहोदंबरपन्चकैः ।
अष्टावेते गृहस्थानामुक्ता मूलगुणाः श्रुते ॥१॥

अर्थ—पांच प्रकार के उदंबर फलों के साथ साथ मद्य, मॉस और मधु का त्याग करना सो श्रावकों के अष्ट मूलगुण हैं।

आचार्य स्वामी अमृतचन्द्रसूरी ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है।—

मद्यं मांसं क्षौद्रं पंचोदंबर फलानि यत्नेन ।
हिंसाव्युपरतकामैर्मोक्तव्यानि प्रथममेव ॥१॥

अर्थ—हिंसा त्याग करने की इच्छा करने वालों को प्रथम ही यत्नपूर्वक मद्य, मॉस, मधु और ऊमर, कठूमर, पीपर, बड़, पाकर ये पॉचों उदम्बर फल छोड़ देना चाहिये।

स्वामी समन्तभद्राचार्य रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं—

मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥१॥

अर्थ—मद्य मांस, और मधु के त्याग के साथ पाँचों अणु-व्रतों का पालन करना गृहस्थों के आठ मूलगुण होते हैं ऐसा गणधर आदि देवों ने वर्णन किया है।

भगवज्जिनसेन स्वामी आदिपुराण में लिखते हैं—

**हिंसासत्यस्तेयादब्रह्मपरिग्रहाच्च बादरभेदात्।**
**द्यूतान्मांसान्मद्याद्विरतिर्गृहिणोऽष्टसंत्यमी मूलगुणाः ॥**

अर्थ—हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांचों पापों का स्थूल रीति से त्याग करना तथा जुआ माँस और मद्य का त्याग करना ये गृहस्थों के आठ मूलगुण होते हैं।

पंडित आशाधर जी कृत सागारधर्मामृत में कहा है—

**मद्यफलमधुनिशासन पंचफली विरती पंचकाप्तनुती।**
**जीवदयाजलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणाः ॥१८॥२॥**

अर्थ—१—मद्य का त्याग, २—मांस का त्याग, ३—शहद का त्याग, ४—रात्रि भोजन का त्याग, ५—पांचों उदंबर फलों का त्याग, ६—देव पूजा बन्दना, ७—दया करने योग्य प्राणियों पर दया करना, ८—पानी छानकर काम में लाना। श्रावकों के लिए ये आठ मूलगुण भी किसी शास्त्र में आचार्यों ने वर्णन किये हैं ॥१॥

पंचोदम्बर ( १ वड़फल, २ पीपरफल, ३ ऊमर फल, ४—कटूमरफल, ( अंजीरादि वगैरह ) ५—पाकरफल ) तीनमकार (१—मद्य (शराब) २—मांस- त्रसजीवों का कलेवर यानि दो इन्द्रिय से आदि पंच इन्द्रिय तक ) ३—मधु यानि शहद, इनका आजन्म तक त्याग। इनके अलावा सच्चा देव वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी अरहंत देव जो समोशरण में विद्यमान सशरीरी और सच्चा धर्म जो जीवों को संसार के दुखों से छुड़ाकर मोक्ष में स्थापित करे और अहिंसारूप प्रवृति

कराकर अरहंत बना देवे तथा सच्चे गुरु जो आप खुद चारित्र धारण करे सम्यक पूर्वक और अन्य आत्माओं के लिए आदृत्य होवे इसप्रकार जघन्य पाक्षिक ४५ दिन के बच्चे से लेकर अष्टवर्ष तक के बच्चे के ये गुण हुए। इस बच्चे के व्रतों की ८ वर्ष तक की आयु तक इसके माता पिता ही रक्षाके जिम्मेवार होते हैं। इस उपरान्त जब बालक ८ वर्ष का हो जावे तब इन ११ व्रतों को उसके माता पिता इसको खुद समझा देते हैं। फिर वो स्वयं उसके व्रतों का पालक हो जाता है, माता पिता जिम्मेवार नहीं रहते।

अब आगे मध्यम पाक्षिक का स्वरूप बतलाते हैं—जब ये व्रत पालने योग्य होगया, तब पूर्व जघन्यके ११ से लेकर ३४ गुण मध्यम पाक्षिक श्रावकको और पालने पड़ते हैं ऐसे ४५ गुण हो जाते हैं अतः यहां पर जो ३४ गुण कहे हैं उनको बतलाते हैं—५ सप्तव्यसनों का त्याग और होता है जैसे १ जुआ खेलना २ मांस खाना ३ मदिरा (शराब) पीना ४ वेश्या ५ पर स्त्री सेवन ५ का त्याग ६ शिकार खेलना जैसे हथियार लेकर जिव्हा लोलुपता वास्ते जीवों को मार डालना तथा और भी कई प्रकार खटमलादिक या मच्छरों को चूहों को और भी कई जीवों को मारना, ७ चोरी करना, राज्य का होसल चुराना. राज्य का कायदा तोड़ना, किसी की तिजोरी तोड़ना या ताला तोड़ना, खाद लगाना वगैरह कई प्रकार से दूसरों की सम्पत्ति को हड़पना सब चोरी कहलाती है।

इनमें ऊपर ग्यारहवें प्रकार के त्याग में, मांस, मदिरा, पहिले गिन लिया है अतः वे दो कम करने पर ५ व्यसन रहे। इसके अलावा इसे व्यवहार सम्यग्दृष्टि कहा है, यातें इसको २५ मल दोष छोड़ना होते हैं उनका यहां इस प्रकार स्वरूप बतलाया है।—

चौपाई

**वसुमद वसु शंका को निवार, षट अनायतत्रयमूढ़ विचार।**
**तब सम्यक कहिये हैं शुद्ध, इन पाले बिन आतम अशुद्ध॥**

**अर्थ**—इनका प्रथक् प्रथक् विवरण इस प्रकार है—

## अष्ट मदों की व्याख्या

**जाति कुल पूजा बलधार, ऋद्धि तप वपु बुद्धि विचार।**
**अष्टप्रकार मद किये बखान, इनको त्याग करो विद्वान।**

**अर्थ** – १ जातिका मद करना कि मेरे नाना मामा ऐसे बड़े आदमी हैं, २ कुल का मद करना कि मैं इस कुल का पैदा हुआ हूँ जहां राजपन या राजमानता या सेठपन या मैं ऐसा धनवान था, ३ मेरी संसार में ऐसी प्रतिष्ठा थी सो पूजामद, ४ बलमद मैं ऐसा बलवान हूं मेरे सामने कोई जीत नहीं सकता, ५ ऋद्धि मद करना मुझे ऐसी पराक्रम ऋद्धि पैदा हो रही है, ६ तप का मद मैं ऐसा तप करता हूं जिसको कोई कर नहीं सकता, ७ शरीर का मद करना मेरा इतना बढ़िया खूबसूरत शरीर है, ८ बुद्धि का मद करना मैं इतना विद्वान श्रुत का पाठी हूँ मेरे समान दूसरा कोई नहीं है।

## अष्ट अंग

निःशंकित निःकांक्षि विचार। निर्विचिकित्सा अमूढ़ईधार।
उपगूहन स्थिति करण संभार, वात्सल्यता परभाव सुधार।

**अर्थ**—अष्ट प्रकार शंकादिक दोष हैं उनका खुलासा इस प्रकार है—

१ **निःशंका**—पदार्थ का स्वरूप जो भी विशेष ज्ञानियों ने कहा है वैसा ही है ? मेरी बुद्धि में न आवे तो क्या उसको झूठा मान लेवे, खयाल करो वीतरागी पुरुष हरगिज अन्यथा नहीं भाषते सो ही सिद्धान्तों में वर्णन है। आलाप पद्धति में लिखा है—

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैवहन्यते।
आज्ञासिद्धं तु तद्ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः।

२ **निकांक्षित**—एक पदार्थ दूसरे पदार्थ को यथार्थता में कदापि सहायता नहीं दे सकता, ऐसा सिद्धांत है। परन्तु मोही जीव अन्य पदार्थ से आशा करता है तभी तो दुःखी रहता है।

३ **निर्विचिकित्सा**—संसार में अनन्त पदार्थ हैं कौन २ पदार्थ का व्याख्यान किया जावे सब का स्वरूप भिन्न २ है किस से ग्लानि करे और किससे प्रेम करें ये अज्ञानियों की बात है।

४ **अमूढ़दृष्टि**—ज्ञानी पुरुष किसी के साथ भी अपनी बुद्धि को विपरीत नहीं करता, देखता है इस जीवने ऐसा किया इस जीवने ऐसा किया, मैं विकल्प कर क्यों राग और द्वेष करूं।

५ **उपगूहन**—विचारवान पुरुष पराये अवगुण देखकर विचारता है कि कर्म का प्रेरा यह जीव इस प्रकार का आचरण करता है अत ये दुःखी है, मैं इसका अवगुण प्रकाश करूं ये मेरा धर्म नहीं है कारण ऐसा आचरण मुझ से भी अनन्त बार हुआ है और कर्म के उदय से मुझसे अब भी हो जावे।

६ **स्थितिकरण**—संसार में जितने भी जीव हैं वे सब जीव कर्म बन्धन सहित हैं इसलिये ये साता और असाता

वेदनीय कर्म से दुःखी हैं। मैं समझदार होकर उनको मदद न दूंगा तो मैं भी उसी तरह कर्मों का मारा हुआ आ रहा हूं अतः मैं उनको तथा मेरी आत्मा को यथार्थ धर्म मार्ग में स्थिर करूं, यही मेरा धर्म है।

७ वात्सल्यता—संसार भर में ये जीव कर्म बन्धन सहित चक्कर लगाता रहता है इसको रंचमात्र भी सुख नहीं है। इसलिये इसका उपकार होना जरूरी है। मैं समझदार होकर स्थितीकरण नहीं करूं तो मैंने तीर्थंकरों की आज्ञा का भंग किया और वृथाही सम्यग्दृष्टिपन का घमण्ड किया।

८ प्रभावना—स्व आत्मा के धर्म की पर आत्मा के धर्म की जैसे बने वैसे प्रभावना में कमी नहीं करनी, तारीफ सुनने के वास्ते कानों को खडा नहीं रखना येही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। जैसे मनुष्य समाज का उत्थान हो, धर्म की प्रभावनाहो विद्यालय विद्या आश्रम गरीब गुरु वा श्रीमान धीमान कोई भी हो हरगिज भी किनारा नहीं करना चाहिए।

## षट अनायतनों का स्वरूप

**दोहा—कुगुरु कुदेव कुधर्म अरु इनके सेवक जान।**
**षट अनायतन ये कहे, सेये धर्म कि हान।**

अर्थ—कुगुरु, कुदेव तथा कुधर्म और इनके मानने वाले इस प्रकार छह अनायतन माने गये हैं।

प्रश्न—आपने कहा सो ठीक है परन्तु ये अनायतन क्यों और कैसे ? इसका प्रथक् प्रथक् खुलासा करिये।

उत्तर—जो छः अनायतन हैं उनका खुलासा निम्न प्रकार है—

१ कुगुरु—उन्हें कहते हैं जो साधु नाम धरा कर विषयों से ममता जोड़े और हिंसा युक्त कार्य आरम्भे। जैसे

दोहा—फूटी आँख विवेक की, सूज पड़े नहिं पन्थ।
ऊँट बलध लादत फिरें, तीनों कहे महन्त।

हिंसा युक्त तथा आरम्भ परिग्रह सहित जो पाप का कार्य है उन सहित जिनकी जीविका होवे सो सब कुगुरु होते हैं।

## २ कुदेवों का स्वरूप

जैसे परमात्मा कहलाकर विषय वासना में मगन तथा आर्त रौद्र जिनका भेष, शस्त्र रखना, जीवों को दुष्ट मानकर उनका संहार करना, अपने को माने उसका भला करना चाहे, ये सब संसारी जीवों का कार्य है न कि परमात्मा यानि देवका। कुदेव के वास्ते सिद्धान्तों में कहा है कि 'रागद्वेष मलीमसा' जिनकी ऐसी परिणति हो सो सब कुदेव हैं।

## ३ कुधर्म का स्वरूप

जिस धर्म में हिंसा की पुष्टि की जावे, अग्नि होम करके जीवों का बध किया जावे, दुष्टों को दण्ड देवो कभी चूको नहीं, अपने पक्ष की मान्यता करो। जो अपने धर्म के अनुयायी नहीं हों वे नास्तिक तथा काफिर हैं जिसका ऐसा अभिप्राय सो ही कुधर्म कहलाता है।

इनके अलावा तीन प्रकारके इन तीनों के सेवन, पूजन तथा मानने वाले हों, ऐसे सब मिलकर छः हुये। ये सब अनायतन यानि पाप स्थान धर्म स्थान से वर्जित अनायतन कहलाते हैं।

अब तीन प्रकार की मूढ़ता बताते हैं--

दोहा

लोकमूढ़ देवमूढ़ता अरु गुरुमूढ़ता जान।
इन का जो सेवन करें नरक धरा महिमान॥

अर्थ—लोक मूढ़ता, देव मूढ़ता तथा गुरु मूढ़ता इस प्रकार मूढता तीन प्रकार मानी है।

प्रश्न—मूढ़ताओं का नाम तो सुना है परन्तु स्वरूप नहीं समझा, सो खुलाशा समझाइये।

उत्तर—अच्छा सुनिये

१ सबसे पहिले लोकमूढता का व्याख्यान है कि लोक में देन लेन को, व्यापार को धर्म मानना कि हमने इसका बड़ा उपकार कर दिया, मुर्दे को मसान में जलवा दिया, उसका पिन्ड दान गयाजी में कर दिया, गंगा जी मे स्नान कर श्राद्ध कर दिया, बड़े बूढों के नाम पर पानी दे दिया. ऊंट, घोड़ा, हाथी, गाय, भैस, बैल, बकरी, तलवार, बन्दूक, दवात, कलम. कागज. माँसखोरी देव पूजना, निर्जला ग्यारस करके रातमें खालिया, जन्माष्टमी कर रातमें खाना, श्राद्धपूनम मानना, देहली पूजना. गाड़ी पूजना, रेवड़ी पूजना, साजी गनगोर दशहरा दीवाली होली करना ये सब लोकमूढता है। कहां तक कहें अनेक प्रकार के और भी कई रीति रिवाज ऐसे हैं जिनमें हिंसा होती है, जैसे माता जी के भैसा बकरा चढाना, भैरू जी को मदिरा पिलाना साधुओं को भाँग गांजा चरस या नकदी पैसा देना जिससे विपरीत कार्य करे ये सब लोक मूढ़ता है, श्राद्धोंमें कागले को भोजन देना कुत्तों को पालना, पक्षियों को लड़ाना मूढता कहलाती है।

**प्रश्न**—महाराज आपने तो हमारे गृहस्थों का जो धर्म साधन का मार्ग था उस सबका ही निषेध कर दिया। अब हम आगे कैसे धर्म साधन करेंगे सो बताइये।

**उत्तर**—सुनिये, धर्म किसे कहते हैं सो यहां पर आगे इसही ग्रन्थ में बतावेंगे उससे तुम्हारा कल्याण होगा।

२ **देवमूढ़ता**—खयाल करिये जो देव संसार का कर्त्ता धरता है उसको सब आसान है वह जो कुछ भी करना चाहे सो कर सकता है फिर उसको शस्त्र, स्त्री, राजपाट, गाड़ी, घोड़ा, रथहांकना इन कार्यों से क्या जरूरत। ये कार्य तो अति गरीब रंक भिखारी सरीखे हैं इनसे उनकी महन्तता कैसे? परमात्मा पन कैसे जाहिर होवेगा ये देवमूढता नहीं तो क्या है? ज्यादा लिखना पर्याप्त नहीं थोडा लिखा ही बहुत समझिये।

## गुरुमूढ़ता का स्वरूप

समाज में गुरु वो कहलाते हैं जिनमें गुणों की गरिष्ठता हो। आज गुरुओं की व्यवस्था देखी जावे तो सिवाय विषयवासना के और कुछ नहीं। कारण आज के गुरु गांजा पीना, भांग पीना, चरस पीना, वेश्या सेवन करना, मौज उडाना, हाथी घोड़े रखना, जमास जोडना, तम्बाखू पीना, मांग मांग कर भंडारा करना, बढिया बढिया ऐश और आराम करना, अच्छा मकान बनवा कर रहना ये साधु गुरु मार्ग नहीं हैं। जंत्र मंत्र तंत्रक जादु टोंना करना आजकल के गुरु गृहस्थों से भी गये बीते हो गये क्या किया जावे? धर्म साधन का मौका लावो। इस तरह यहांतक पाक्षिक श्रावक के ४१ गुण हुये। इसके उपरांत चारगुण और होते हैं वे इस तरह से हैं—

**प्रशम और संवेग है अनुकम्पा का जान।**
**आस्तिक मिल चारों भये सम्यक्त्वी पहिचान॥**

**अर्थ**—सम्यग्दृष्टि जीव के नियम कर ये चारगुण हुआ ही करते हैं-इन चारों गुणों का प्रथक् प्रथक् लक्षण सिद्धान्तों में संक्षेप रूप से इस प्रकार माना है—

**१ प्रशमगुण**—इस गुण का महात्म्य है कि जो जीव पर पदार्थको तीनकालमें भी अपना नहीं मानता पर पदार्थ पर ही है अतः उसके कषाय इतनी मंद हो जाती है कि वो अपने स्वरूप में स्थिर होने लग जाता है और क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप बाकी गति मंदरूप परिणति कर संसार से और शरीर भोगों से उदासीनता का सदा वांछक रहता है।

**२ सम्वेग**—धर्म कहिये चेतना और इसको धारण कर ने वाले जीव इन दोनों से इस गुण वाले की इतनी प्रीति हो जाती है जैसे जन्मे हुए गऊ के बच्चे और गऊ के। ऐसा ही सिद्धान्तों में आचार्यों ने बतलाया है।

**३ अनुकम्पा**—संसार में अक्षय अनंते प्राणी हैं जो कर्म बंधन से जकड़े हुए हैं, वे प्राणी किस प्रकार से मेरे द्वारा सुखी होवें, मैं इस प्रकार का यत्न करूं जिससे मेरी आत्मा में जो अनादि काल से आकुलता स्थान पा रही है सो दूर होकर निराकुलता प्राप्त होवे इस गुण का यही महात्म्य है।

**४ आस्तिक**— संसार में सर्वज्ञ श्रुतकेवली या गण-धर आचार्यों द्वारा जैनधर्म का स्वरूप, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय रूप प्रवचन तथा जीवका लक्षण चेतना,

पुद्गल का लक्षण अचेतन इनका अनादिकाल से क्षीर और नीर, तिल और तेल तथा स्वर्ण और किट्टका की तरह सम्बंध हो रहा है। अब मुझे सर्वज्ञ के बचनों के द्वारा इन बातों की जानकारी हुई है तो मैं ऐसा यत्न करूं जिससे मेरी आत्मा इस संसार रूपी कीचड़ से निकल शुद्धात्म मे स्थिर होवे इस प्रकार की श्रद्धा और आचरण को आस्तिक कहते हैं।

यहाँ तक—मध्यम पाक्षिक के ४५ गुण बतलाये।

आगे उत्तम पाक्षिक का स्वरूप कहते हैं —

चौपाई

**मध्यम के पैंतालिस गुण कहे, अभक्ष त्याग जो औरहु लहै। सो।पूर्ण पाक्षिक पहिचान, इनको दृढ़ किये पाप न जान।**

**अर्थ**—इस प्रकार इस चौपाई में पूर्ण पाक्षिक के लिये अभक्ष का त्याग करना ही बतलाया है।

**प्रश्न**—अभक्ष त्याग तो बतलाया उसके स्वरूप का यहाँ दिग्दर्शन पूर्ण रूप से कराना योग्य है। अन्यथा किसको छोड़े और किसको ग्रहण करे, इसलिये खुलासा करिये।

**उत्तर**—सुनिये, अभक्ष उसे कहते हैं जो मर्यादा से बाहिर हो या चलित रस हो गया हो या अपने धर्म से जाति से विरुद्ध हो। हां, स्वामी समन्तभद्र महाराज ने तो रत्नकरंड-श्रावकाचार में अभक्ष के ५ भेद माने हैं। जैसे—१ अल्प फल बहुघात, २ त्रसहिंसा, ३ प्रमाद, ४ अनिष्ट, ५ अनुपसेव्य। हां आजकल जो २२ प्रकार के भी अभक्ष किये

जाते हैं सो यथार्थ में दिगम्बर सम्प्रदाय की अपेक्षा से नहीं हैं। वह तो श्वेताम्बर सम्प्रदाय की अपेक्षा यहाँ पर चालू हो गये हैं। इस प्रकार से खयाल रखिये।

**प्रश्न**—जो जो आपने ऊपर वर्णन किया उनका स्वरूप सिद्धान्त के अनुसार क्या क्या है तो सब समझाइये ?

**उत्तर**—सुनो। आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों में मर्यादा का स्वरूप इस प्रकार मिलता है।

पहिले ऋतु का बदलना, मगसर बदी १ से फाल्गुन सुदी १५ तक शीत ऋतु कहलाती है।

ग्रीष्म ऋतु चैत्र वदी १ से आषाढ़ सुदी १५ तक होती है।

वर्षा ऋतु श्रावण वदी १ से कार्तिक शुक्ल १५ तक हुआ करती है। अब आगे पदार्थों की मर्यादा सुनिये।

## भक्ष्य पदार्थों का कथन

**शीत ऋतु में**—आटे की, बेशन, मसाला [ हलदी, धनिया, मिर्च गर्म मसाला पिसा हुआ ] की मर्यादा ७ दिन की और बूरे की मर्यादा १ मास की, मगद जिसमें आटा, घृत व बूरा डालकर बना हो की मर्यादा ७ दिवस की है।

**ग्रीष्म ऋतु में**—ऊपर लिखी हुई वस्तुओं की मर्यादा ५ दिवस की तथा बूरे की मर्यादा १५ दिन की है।

**वर्षा ऋतु में**—ऊपर जो पदार्थ बतलाये हैं उनकी मर्यादा ३ दिवस की, तथा बूरे की मर्यादा ८ दिवस की मानी है।

काष्टादिक जो पदार्थ हैं जैसे सोंठ, हरड, हलदी, पीपर,

अजमोद, अजवाईन, आदि पिसी हुई की मर्यादा शक्कर के बूरे के समान १ मास, आधा मास और ८ दिन की है।

## अष्ट प्रहर की मर्यादा वाले पदार्थ—

तले हुए पापड़, बेशन के बनाये हुये सेव, खोवा [ मावा ] मावे की बनाई मिठाई, लड्डू, पेड़े, उबाला हुआ दूध, जामन देने से दही, पानी डाल कर उबाली हुई दवाईये, सूखी बड़ी, मंगोड़ी तली हुई, सूकी हुई पूड़ी, या पपड़ियां, खुरमा, बेशन की या मावा की चक्की, खोपरे की चक्की, मोतीपाक, बूंदी (मोतीचूर) तथा तली हुई दाल, तली हुई गंवारफली, तली हुई काचरी, उबाला हुआ पानी, सकरपारे, गुलाबजांबुन, मक्खन बड़ा, इनही के समान और जो भी होवें सो सब समझ लेना।

## चार प्रहर की मर्यादा वाले पदार्थ—

रोटी, पूड़ी, अचार, पापड़, सीरा ( हलवा ), बड़ा, बड़ी, भुजिया, चीलड़ा, परामठा, [ टीकड़ा ] गरम किया हुआ दुग्ध, गरम किये हुए पानी से मिल रही हुई दुग्ध की खीर, भुजिये का रायता, विना शक्कर की बूंदी, बिना पानी की बगारी हुई साग, वांटी हुई चटनी, बिना पानी के बेशन के पितोड़, घूघरी, खिचड़ा, खीचला, बांसुदी, मालपुआ, पुआ, मुरब्बा केसरिया भात, आटे के लड्डू और बाटी।

## दो प्रहर की मर्यादा वाले पदार्थ—

तिक्त द्रव्य डाल करके प्रथक् किया हुआ पानी, कड़ी, खीचड़ी, पतली दाल, भात, पानी रहा हुआ साग, शब्जी का निकाला हुआ रस, श्रीखंड इमली, अमचूर, नीबू के रस के बड़े यानी रायता।

## दो घड़ी की मर्यादा वाले पदार्थ

छना हुआ पानी, थनों से दोया हुआ दूध, पिसा हुआ नमक, छाछ [मठा' से निकाला हुआ नेनु तपाने के वास्ते, दही मीठा डालकर खाना।

दूध का स्वरूप—पशु का थन धोकर दूध दोहना, बिना धोया थन का दूध अभक्ष है। दोघड़ी में छानकर गर्म करें, जिसपर साड़ी आजावे ऐसा उबल जावे तब दूध की मर्यादा अष्ट प्रहर की है।

अष्ट प्रहर की मर्यादा के अन्दर ही दही जमाया जावे जैसे दाख से, अमचूर से, नीबू के रस से, आमली से, खोपरा से, मलाई में लकड़ी की जरा सी राख मिला कर भी जामन दे सकते हैं तथा चाँदी को तपाकर भी जमा सकते हैं। इस प्रकार से जमाया हुआ दही भक्ष है। इसकी मर्यादा जामन दी हुई टाइम से अष्ट प्रहर की है। उपरान्त दूध हो या दही हो अभक्ष है।

इस प्रकार के दही को मर्यादा के अन्दर ही भाकरके [ बिलोकर ] नेनू निकाल कर दोघड़ी के अन्दर तपाकर छान कर तैयार किया हुआ घी जब तक खुशबू नहीं आवे तब तक भक्ष है।

**तेल की मर्यादा**—जिस पदार्थ का तेल निकाला जावे उस पदार्थ को अच्छी तरह शोधन करके घानी को धुपा करके दिवस में तेल शुद्ध बर्तन में निकलवाकर छान करके तपाकर बर्तन में मुंह बाँधकर हिफाजत से रखे जिससे उसमें जीव नहीं गिरे। जबतक वह तेल जाड़ा [ गाढ़ा ] न पड़े और फिर उसमें बदबू न आवे तब तक वह तेल शुद्ध है।

# जल छान कर पीना निरोग्यता की दवा

आजकल साइन्स वालों ने एक बिन्दू पानी में कितने ज मावित कर दिये (३६४५०) परन्तु जैन धर्म तो इस बात को हमे ही पुकार २ कर कह रहा है। कि पानी छान कर पीने से दो एक जीवो की दया दूसरे निरोग्यता और महान पुण्य। इसको करने की ससार मे प्रशंसा होती है।

चौपाई

एक बून्द जिल छानी मांहि, जीव असंख जिनेन्द्रबतांहिं।
जो होवे कापोत समान, भरेजम्बू भाखे भगवान ॥१॥

गाथा

एगम्मि उदग बिन्दु, मज्जे जीवा जिण वरेहि पगणता।
ते जइ सरिस्सव मित्ता, जम्बूदीवे नमायंति ॥१॥

श्लोक

एक बिन्दूद्भवाजीवा, पारा वत समायदि।
भूत्वा चरन्ति चेज्जम्बू, द्वीपोऽपि पूर्यते च ते: ॥१॥

इस प्रकार आचरण जैनियों का पहिला जैन धर्म ससार मे जाहिर जैनियों के प्रति उपदेश ऐसा ही है।

विधाय नित्य जिनदेव दर्शन, जलं हि पीत्वा पटगालित सदा।
त्यजेन्निशाया खतुभोजनं बुधा, अमूनि चिह्नानि श्रावकस्य ॥१॥

साबुदाना अभक्ष है कारण बनाया हुआ होता है। शीले सिघाड़े छाल जाड़ी होने से अभक्ष होते हैं। जिस पत्ती के साग के पत्ते जाड़े हो ( जैसे मूली के पत्ते, पालक के पत्ते, पोदीना के पत्ते, ये जाड़े होते हैं) सो सब अभक्ष हैं।

तीनों प्रकार की गोबी अभक्ष है, असेव्य है। अरंडककड़ी ( पपीता ) बहुबीजा है अतः अभक्ष है। दुग्ध, दही, छाछ ( मट्ठा ) इनके साथ जिन पदार्थों के दो फाड़ हो जावे अनाज हो या काष्ठादिक जिह्वा पर रखते ही द्विदल का दोष होता है। किसी को विश्वास न हो तो, संयमप्रकाश ग्रन्थ, सद्बोधमार्तण्ड ग्रन्थ या अभक्ष विचार मार्तण्ड देखे।

पीतल की कटोरी में घी धर दिया जावे और वो हरा हो जावे तो उसी वक्त वह अभक्ष हो जाता है।

पानी दुहरे छन्ने से छानना चाहिये और फिर उसकी बिलछन ठिकाने पर पहुंचा देना चाहिये। इस प्रकार के छाने हुए पानी की दो घड़ी यानि ४८ मिनिट की मर्यादा शास्त्रों में बतलाई है।

नमक को पीसने पर ४८ मिनिट तक कार्य मे ले सकते हो ज्यादा नहीं, अगर ज्यादा समय लेना चाहते तो उसमे हल्दी बांटकर मिला दो तब उसकी मर्यादा छः घन्टे की हो जावेगी। अन्यथा अभक्ष हो जावेगा। इस मर्यादा बाहर काम का नहीं है।

काला नमक तथा कत्था व साजी पापड़ खार ( संचोरा ) अभक्ष है।

**प्रश्न**—साजी पापड़ खार ( संचोरा ) अभक्ष है तो फिर पापड़ किससे बनाबे जावेंगे ?

उत्तर—पापड़ बनाने के वास्ते मर्यादित पुरुषों के लिये आँकड़े की लकड़ी की राख ( भस्मी ) तथा तिली के झाड़ की लकड़ी की राख ( भस्मी ) मक्की के भुट्टे से अनाज निकाले पीछे जो मिडे ( ढूंडिये ) रहते हैं उनको जलाकर की गई राख ( भस्मी ) का पानी बनाकर थोड़ी देर उसको मथकर पानी (जल) को नितार लो उससे पापड़ के आटे को ओसनकर पापड़ बनाओ बहुत बढ़िया स्वार ( स्वादिष्ट ) पापड़ बनेंगे। मर्यादित खाने वाले लोगों के यहाँ ( श्रावक लोगों के यहाँ ) आज हिंदुस्थान में इस ही प्रकार से बनता है।

समझो, २२ अभक्ष्यों में सबसे ज्यादे प्रवृत्ति द्विदल की आप लोगों ने बिगाड़ रक्खी है जो सर्वथा अभक्ष्य है। खयाल करो और हमारा बनाया हुआ ग्रन्थ जिसका नाम अभक्ष्य विचार मार्तण्ड है, देखो। द्विदल गोरस से माना है सो आज लोगों ने गोरस के बजाय दही और छाछ (मट्ठा) पकड़ लिया और दुग्ध को सर्वथा छोड़ दिया।

कुछ लोग जिव्हा इन्द्रिय के लोभी तो आजकल ऐसा ही करने लग गये है, जैसे दही और मट्ठा को अलग गर्म कर तथा बेशन को अलग गर्म कर उसकी कढ़ी बनाकर खाने लग गये सो ये बात सिद्धान्त से बिल्कुल विरुद्ध है, परन्तु क्या किया जावे ? वाह रे कलिकाल तेरी कृपा जो खाने को दहीवड़ा मिल जावे। खोवा, खोवा की मिठाई से भी द्विदल होता है।

खयाल करो खीर पदार्थ मे भी द्विदल रूप पदार्थ अनाज हो या काष्ठादिक हो द्विदल हो ही जावेगा, सिर्फ मेवा को छोड़कर। जैसे बादाम, चिरोंजी, काजू, मूंगफली, पिस्ता, धनिया आदि, कारण इनमे तेल निकलता है इसलिये इनसे द्विदल नहीं

माना है। विशेष अभक्ष विचार मार्तण्ड ग्रन्थ से निरीक्षण करना चाहिये।

गोंद अभक्ष होता है, हींग हींगड़ो भी वृक्ष का गोंद है सो ये भी अभक्ष है।

बरसात समय मात्र पत्ती का साग सर्वथा छोड़ देने योग्य है। कारण उस समय उसमे जीवों की हिंसा ज्यादा होती है।

**प्रश्न**—पत्ती के साग तो श्रावकाचारों में भक्ष बताये है फिर सर्वथा अभक्ष क्यों कहते हो ?

**उत्तर**—हाँ तुम्हारा कहना समय के परिवर्तन से ठीक जचता है वो ऐसे है कि जब वर्षा ऋतु न हो तब ऐसा विचारना चाहिये कि जिन पत्र के साग की पत्ती जाड़ी (मोटी) जैसे पौदीना का पत्ता, मूली का पत्ता, पालक के साग का पत्ता, लुणवा का पत्ता, मोटा थूवर का पत्ता, इस प्रकार के जिन वनस्पति के पत्ते हों सो सब अभक्ष है। जैसे पत्ते गाठ गोभी भी इसही में समझनी चाहिये।

इसके अलावा जैसे मेथी की पत्ती, बथवा की पत्ती, चवलाई, धनिया, चने की पत्ती जिनका पत्ता पतला हो वह साग गृहस्थ लोग काम मे लाते है यानि व्यवहार मे लिया करते है।

**प्रश्न**—यहां पर बड़ा फल जैसे कौहला (काशीफल) पेठा, मतीरा, (तरबूज, कलींदा) ये बड़े फल है सो ये तो अभक्ष ही है न ? सिद्धान्त में क्या बात बतलाई है ?

**उत्तर**—काशीफल कोहला, कुहदा, व.ह सब इसी के हो नाम है। ये पदार्थ गम बहुत हैं, स्वादिष्ट ज्यादे है और कम

कीमती हैं इसलिये इसको लोग ज्यादा काम में लेते हैं। वास्तविक ये पदार्थ गर्म है इसे रोजाना १ सप्ताह तक लगातार खावे तो कोढ़ हो जावे इसलिये इसको अभक्ष कहना ही ठीक है। इसके उपरान्त ये बड़ा भी फल है इसको कहाँ तक खावे यह बंधा हुआ घर में धरा रहे तो इसमें जीव पड़ जावे इससे भी इसे अभक्ष माना है, वास्तविक रूप से विचारा जावे तो इसको खटाई डालकर बनावे तो यह पदार्थ नुकसान दायक नहीं होता। अगर बहुत आदमी हों तो इसको आज के आज ही खा जाते हैं उनके लिये अभक्ष व विकारी नहीं है।

ऐसे ही जिसको पेठा कहते है उससे तो मनुष्यों का रोग नाश होना वैद्यक आचार्यों ने माना है। पेठे की अजवाईन या कलाकन्द या मिठाइये कई प्रकार की बनती है।

रहा मतीरा (तरबूज, कलींदा) सो वह दो तरह का होता है १ लाल २ सफेद। सो लाल को तो देखते ही फरफराही आ ही जाती है कारण उसका रंग बुरा मांस जैसा है। इस प्रकार का विकल्प ही अभक्ष हो सकता है। रहा सफेद, सो पंडित आशाधर जी ने तथा औरों ने भी इसको अभक्ष बताया है और गोम्मटसार में भी ऐसे पदार्थ को अभक्ष कहा है।

**प्रश्न**—फूल गोभी तो अभक्ष ही है न ?

**उत्तर**—बहुत ठीक ये तो अभक्ष ही है कारण प्रत्यक्ष कर ही देख लो इसके फूल मे हजारों की तादाद में फूल जैसे रंग की लटें मौजूद है, झड़कारने से मालूम हो जाती हैं। इस प्रकार ही जलेबी भी हुआ करती है उसके बनाने के लिये मैदा सड़ाई (खट्टापन लाया) जाती है बिना खट्टापन लाए जलेबी बनती ही

नहीं इसका नाम जलेबीर है। उस मैदा के जीवों का दृष्टान्त इस प्रकार ही दिया जाता है। व्रती को निम्न अतिचार भी टालने चाहिये।

## मद्य त्याग के अतिचार

संधानकं त्यजेत्सर्वं दधितक्रं द्व्यहोषितं।
कांजिकं पुष्पितमपि मद्यव्रतमलोऽन्यथा ॥११॥

अर्थ—दार्शनिक श्रावक सब तरह के अचार, मुरब्बा, मर्यादा से बाहर का दही, मट्ठा, कांजी और फूल का त्याग करे अन्यथा मद्यत्याग व्रत के अतिचार हो जायेंगे। कहा है।

जायंतेऽनंतशो यत्र प्राणिनो रसकायिकाः।
संधानानि न वल्भ्यंते तानि सर्वाणि भक्तिकाः॥१२॥

अर्थ—भक्तलोग जिसमें रस कायिक के अनंत जीव उत्पन्न होते रहते हैं ऐसे संधानादिक पदार्थों को भक्षण नहीं करते, इसी तरह अष्ट प्रहर बीत चुके ऐसे दही छाछ का भी त्याग होना चाहिये। तथा जिसके ऊपर सफेद सफेद फूल से आ गये हों ऐसे पदार्थों का शीघ्र त्याग कर देना ही व्रतियों का लक्षण है।

मांसत्याग व्रत के अतिचार—

चर्मस्थमंभः स्नेहश्च हिंग्वसंहृतचर्म च।
सर्वं च भोज्यं व्यापन्नं दोषः स्यादामिषव्रते॥

अर्थ—मांस का त्यागी चमड़े के बर्तन में रक्खा जल, घी, तेल दुग्धादि तथा हींगादि पदार्थ नहीं खावे तथा चलित रस हुआ पदार्थ भी भक्षण नहीं करे।

## मधुत्याग व्रत के अतिचार

प्रायः पुष्पाणि नाश्नीयान्मधुव्रतविशुद्धये ।
वस्त्यादिष्वपिमध्वादि प्रयोगं नार्हति व्रती ॥१३॥

सागारधर्मामृत

**अर्थ**— दार्शनिक श्रावक किसी प्रकार के पुष्प यानि मोगरा, गुलाब, जुही, चमेली, गुलाब, केवड़ादि के पुष्प कदापि सेवन नहीं करे ।असाध्य भयकर रोग कइ प्रकार होते हैं जिनमें शहद का उपयोग करते हैं उसका सेवन नहीं करना चाहिये ।

## पंचोदम्बर फलों के अतिचार

सर्वं फलमविज्ञातं वार्ताकादि त्वदारितं ।
तद्वद्भल्लादिसिंबीश्च खादेन्नोदुंबरव्रती ॥१४॥

सागारधर्मामृत

**अर्थ**—पीपल फल आदि उदंबर फलों के त्यागी श्रावकों को अजानफल को नहीं खाना चाहिये तथा ककड़ी कचरिया सुपारी, बदामादि रवांस मटर मूगफली आदिक पदार्थों को बिना विदारे बिना शोधे हरगिज भी नही खाना चाहिये । ये उदंबर फल के अतिचार है ।

## रात्रिभोजन त्याग व्रत के अतिचार

मुहूर्तेऽन्त्ये तथाद्येऽह्नो वल्भाऽनस्तमिताशिनः ।
गदच्छिदेऽप्याम्रघृताद्युपयोगश्च दुष्यति ॥१५॥

सागारधर्मामृत

अर्थ—जिसको सूर्य अस्त होने से पहिले भोजन करने की प्रतिज्ञा है उस श्रावक को दिन के पहिले और अन्त के मुहूर्त में अर्थात् सूर्य से दो घड़ी दिन चढ़े पहिले तथा सूर्य अस्त होने में जो दो घड़ी शेष रही उनमें भोजन नहीं करना चाहिये। यहां पर रात्रि भोजन त्यागी को भोजन जो चार प्रकार का होता है जैसे १ खाद्य २ स्वाद्य ३ लेह्य ४ पेय इनका सर्वथा त्याग हो अन्यथा सिद्धान्तों मे रात्रि भोजन अतिचार माना गया है।

## जलगालन व्रत के अतिचार

मुहूर्तयुग्मोर्ध्वमगालनं वा दुर्वाससा गालनमंबुना वा
अन्यत्र वा गालितशेषितस्य न्यासोनिपानेऽस्य न तद्व्रतेर्च्यः

सागारधर्मामृत

अर्थ—छने हुए पानी की मर्यादा एक मुहूर्त यानि दो घड़ी के पश्चात नहीं छानना, छोटे२ छेद वाले मैले कुचैले तथा पुराने छन्ने से (कपड़े से) पानी छानना, छाने पश्चात् बिलछानी को अन्य स्थान मे डालना जल छानन के अतिचार माने गये है। अब द्यूतादि सप्त व्यसनों के अतिचार पृथक२ बतलाते हैं—

## द्यूत व्यसन के अतिचार

दोषो होड़ाद्यपि मनोविनोदार्थं पणोज्झिनः
हर्षामर्षो दयांगत्वात्कषायो ह्यंहसेऽजसा ॥१६॥

सागारधर्मामृत

अर्थ—जिस व्यक्ति के जुये का त्याग है वह मनोविनोद के लिये शर्त आदि भी न लगावे। क्योंकि शर्त होड़ वगैरह

का लगाना हर्ष और विषाद का कारण होता है। अर्थात् कषाय को उत्पन्न करता है और कषाय की उत्पत्ति नियम से पापास्रव कराने वाली होती है।

## वेश्या सेवन त्याग व्रत के अतिचार—

त्यक्तौर्य भिकासक्ति वृथाम्यांसिङ्गसंगति ।
नित्य पण्यांगना त्यागी तद्ग्रहे गमनादि च ॥

अर्थ—जिस व्रति के वेश्या सेवन का त्याग है वह गीत नृत्य व वादित्र इन तीनों को आसक्ति पूर्वक नहीं सुने तथा विट (व्यभिचारी) स्त्री पुरुषों की संगति का त्याग रखना चाहिये। ऐसे व्यक्तियों के घर पर आना जाना भी नहीं चाहिये, न उनसे सम्पर्क रखना, न बातचीत ही करना और न ऐसे व्यक्तियों का आदर सत्कार ही करना चाहिये।

## चौर्य व्यसन त्याग व्रत के अतिचार

दायादाज्जीवतो राजवर्चसाद् गृह्णतोधनं ।
दायं वापन्हुवानस्य क्वाचौर्यव्यसनं शुचि ॥१॥

अर्थ—जो अपनी सम्पत्ति में से विभाग करने वाले जैसे काका भाइ भतीजे कुटम्बो लोगों को दायद कहते हैं। इन लोगों के जीवित रहते हुए भी तथा राजा के प्रताप को न समझ कर गांव व सुवर्ण आदि द्रव्य को छिपाकर उनको विभाग नहीं देना चौर्य व्यसन त्याग का अतिचार होता है।

## शिकार व्यसन त्याग के अतिचार

वस्त्रनाणकपुस्तादिन्यस्तजीवच्छिदादिक ।
न कुर्यात्त्यक्तपापर्द्धिस्तद्धिलोकेऽपि गर्हितं ॥

अर्थ—पंचरंगे वस्त्र, रुपया, पैसा और भी जैसे मुहर मुद्रा, पुस्तक, काष्ठ, पाषाण, धातु, दांत आदि मे नाम निक्षेप से अथवा ये वोही हैं इस प्रकार की स्थापना से स्थापन है जैसे हाथी घोड़े ऊंट आदि बादशाह बीरबल वाले का छेदन भेदन करना। तथा आटे का शक्कर का या चित्रामका चित्रों का विनाश करने वाले खटमल कीड़ी कीड़ा और भी कई प्रकार से जीवों का हनन करने वालों के शिकार त्याग व्यसन का अतिचार होता है।

## परस्त्री व्यसन त्याग के अतिचार

कन्यादूषणगांधर्वविवाहादि विवर्जयेत् ।
परस्त्रीव्यसनत्यागव्रतशुद्धिविधित्सया ॥२३॥

अर्थ—परस्त्री त्याग व्यसन वाले व्यक्ति को चाहिये कि कुमारिका ( बालिका ) के साथ विषय सेवन नही करे। इसकी शादि विवाह मेरे साथ हो न किसी कन्या के दोष प्रगट करे न किसी कन्या से गांधर्व विवाह करना चाहिये। न किसी कन्या का हरण करना चाहिये। कन्या के माता पिता भाई की आज्ञा के बिना जो विवाह किया जाता है उसे गांधर्व विवाह कहते हैं। इस प्रकार के कर्तव्य से परस्त्री व्यसन के अतिचार माने हैं।

**नोट**—४५ दिन के बच्चे से लेकर ८ वर्ष तक के बच्चे के ११ गुणों की रक्षा का भारमाता पिता का होता है ८ वर्ष के बाद माता पिता उसे व्रत समझा देवें तब बालक ३४ प्रकार के व्रतों का पालन करने लग जाता है ; इसे मध्यम पाक्षिक कहते हैं।

उत्कृष्ट पाक्षिक होने पर अभक्ष्य का सर्वथा त्यागी हो जाता है।

यहां तक पाक्षिक श्रावक के ४६ गुण कहे। उनके मूल भेद ३ तीन हैं। १ मिथ्यात्व २ अन्याय और ३रा अभक्ष, अब यहाँ तीनों के अतिचार बतलाते हैं—

## मिथ्यात्व के ५ अतिचार

१ परधर्म, जहाँ पर हिंसा हो उस पर विश्वास करना।
२ हिंसक धर्म की प्रशंसा करना और अच्छा मानना।
३ परधर्म रूप आचरण करना, अहिंसा का ख्याल नहीं करना
४ परधर्म सेवियों से प्रेम रखना।
५ परधर्म पर दृढ़ रहने का लोगों को उपदेश देना।

## अन्याय के ५ अतिचार

१ गुरू आज्ञा का पालन नहीं करना।
२ राज आज्ञा का भंग कर देना।
३ माता पिता का अनादर करना।
४ धर्म की और कुल की मर्यादा पर खयाल नहीं करना।
५ भ्रष्टाचरण मे अग्रसर बनना।

## अभक्ष के ५ अतिचार

१ बींधा सुला अनाज खाना।
२ आचरण मे शिथिल रहना।
३ रात्रि में भोजन बनवाना व खाना।
४ रात्रि मे खाने वालों को मदद करना।
५ जाति कुल धर्म की परवाह नहीं करना।

इस प्रकार यहां तक पाक्षिकाचार का वर्णन किया। पंचाध्यायी मे इस प्रकार बतलाया है—

**एतावता विनाऽप्येष श्रावको नास्ति नामतः**
**किं पुनः पाक्षिको गूढो, नैष्ठिकः साधकोऽथवा ।**

अर्थ—जो ऊपर बतलाये गये अष्टमूलगुण है उनके बिना जब यह जीव नाम से भी श्रावक नहीं होता तब फिर पाक्षिक, गूढ़, नैष्ठिक और साधक कैसे हो सक्ता है।

इनके ही ग्यारह भेद हैं सो रत्नकरंड श्रावकाचार में बतलाते हैं—

**श्रावकपदानि देवैरेकादश देशितानि येषु खलु ।**
**स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥ १३५ ॥**

अर्थ—श्रावक के तीन भेद कहे है जैसे पाक्षिक और गूढ़ नैष्ठिक तथा साधक, इनमें पाक्षिक का स्वरूप ऊपर बतला दिया अब रहा गूढ़ नैष्ठिक सो नैष्ठिक के ग्यारह भेद होते हैं।

१ दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा, ३ सामायिक प्रतिमा, ४ प्रोषधोपवास, ५ सचित्तत्याग प्रतिमा, ६ रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा, ७ ब्रह्मचर्य प्रतिमा, ८ आरंभ त्याग प्रतिमा, ९ परिग्रहत्याग प्रतिमा, १० अनुमति त्याग प्रतिमा, ११ उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

इस प्रकार नैष्ठिक श्रावक के दर्जे बतलाये हैं। इनका पालन करना ही श्रावक धर्म कहलाता है। इन ही दर्जों का इस ग्रन्थ में प्रथक पृथक् वर्णन होगा।

## अथद्वितीयोऽधिकारः प्रारभ्यते

आगे नैष्टिक श्रावकाचार का कथन करते हैं आगे दूसरा नैष्ठिकाधिकार हैं उसका स्वरूप इस प्रकार है कि प्रथम प्रतिमा से लगाकर छट्ठी प्रतिमा तक जघन्य नैष्ठिक तथा सप्तम,

व्रत कहते है। इस प्रकार से सत्याणुव्रतधारी महापुरुष को इस व्रत को मजबूत बनाने के लिये इस व्रत की ५ भावनायें पालनी चाहिये।

### सत्यव्रत की ५ भावनाएं—

**क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च॥** तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ७, सूत्र ५।

**अर्थ**- क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भय का त्याग, हास्य का त्याग और अनुवीचि भाषण इस प्रकार जो ये पांचों भावना बतलाई है वे इस अणुव्रत की पूर्णता को प्राप्त करने में समर्थ है,। ऐसा आचार्य देव कहते है। इनका पृथक् २ खुलासा इस प्रकार है—

**१—क्रोध नहीं करना**—देखो क्रोध महा निंद पदार्थ है इस को सिद्धान्तों में चाण्डाल बतलाया है। इसके करने से आत्मा में महानिंद कर्म बंध होते है और वो संसार में नीची दृष्टि से देखा जाता है, जिससे आर्त परिणामो के द्वारा जन्म मरण का पात्र होकर पंचपरावर्तन रूप संसार में चक्कर ही लगाता है।

**२—लोभ नहीं करना**—हे आत्मन् लोभ सब पापों का बाप बतलाया है। इस पाप के द्वारा ही संसार में यह परमात्मा समान आत्मा शूकर और कूकर का जन्म लेकर महान आपत्तियां उठाता है इसलिये सबसे पहले इसका त्याग करो।

**३—भीरुता का त्याग**—( डरपोकपणा ) खयाल करो ये आत्मा चैतन्य चमत्कारवाली अनादि निधन सदा शाश्वत रहने वाली है यह कदापि मर ही नही सकती फिर क्यों डर

रखना। ये कार्य आत्मार्थी पुरुषों का नहीं इसलिये निर्भय बन जाओ।

**४—हास्य का त्याग**—संसार में प्राणी कर्म बन्धन सहित हैं खयाल करो किसकी हास्य करना ? न मालूम किस समय पर क्या होने वाला है आज हम दूसरों को उस व्यथा से देखते है कल कोई व्यथा हमारे हो जावे इसलिये हे जीव अन्य को देखकर हास्य मत करो।

**५—अनुवीचिभाषण**—खोटी वाणी बोलने की हरगिज भी आदत न डालो कारण बचन से ऐसे उत्पात होते देखे जाते है जिससे यह परमात्मा समान जीव हजारों प्रकार की आपत्तियों का भागी बनकर दर दर भटकता फिरता है इसको कोई भी नही पूछता और न कदर करता है।

## सत्याणुव्रत के ५ अतिचार—

परिवादरहोभ्याख्यापैशून्यं कूटलेखकरणं च।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमा पंच सत्यस्य ॥ ५६ ॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—हे जीव १ मिथ्या उपदेश देना यानि और का और स्वरूप बताना, २ किसी व्यक्ति की आकृति देखकर उसका अभिप्राय प्रकट करना, ३ जो था ही नहीं इस प्रकार का झूठा लेख लिखकर जाहिर करना जो निराधार हो, ४ किसी के अभिप्राय का उलटा अर्थ निकालकर जाहिर करना ५ अन्य की धरोहर को हड़प जाना चाहिये ऐसा जिसका अभिप्राय हो वह व्यक्ति ससार मे महान दुःख का पात्र होकर पूर्ण आपत्ति उठाता है। अतः इनका त्याग करना चाहिये।

### अचौर्याणुव्रत का लक्षण—

**निहितं वा पतितं वा, सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टम् ।**
**न हरति यन्न च दत्ते, तदकृशचौर्य्यादुपारमणम् ॥५७॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

**अर्थ**—जो रखी हुई व गिरी हुई व भूली हुई पराये व्यक्ति की वस्तु को बिना दी हुई नहीं लेता है और न दूसरों को देता है उसकी वह क्रिया स्थूल चोरी से विरक्त होना अचौर्य्याणु व्रत कहलाती है।

इस प्रकार अचौर्य्याणुव्रतधारी पुरुष को चाहिये कि वह इस व्रत को पुष्ट करने वाली जो पॉच भावना हैं वे इस व्रत को महाव्रत होने रूप शिक्षा प्रदान करती है अतः उसकी भावना इस प्रकार करके अपना मनोरथ सिद्ध करे।

### अचौर्य्याणुव्रत की ५ भावनाऐं—

**शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य शुद्धि-सधर्म्माविसंवादा पञ्च ॥** तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ७ सूत्र ८॥

जो ये ५ प्रकार की भावना बतलाई है उनका खुलासा इस प्रकार है—

१—**शून्यागार**—व्रीत लोगों को चाहिये कि घरत्यागी हो उनको चाहिये कि गृहस्थ लोगो से शून्य गार हो जिस मकान मे गृहस्थ नहीं रहते हों ऐसे जनशून्य स्थान मे रहना।

२—**विमोचितावास**—जो स्थान गृहस्थ लोगों ने छोड़ दिया हो उसे विमोचित कहते हैं उसमे रहे।

३—**परोपरोधाकरण**—जिस मकान मे आप ठहरे उसमे अन्य कोई आकर ठहरे तो उसको मनाई नहीं

करे तथा जिस मकान में अन्य कोई रहता हो और वह व्यक्ति मनाई करे (रोके) तो उस स्थान पर नहीं रहे।

४—भिक्षा की शुद्धि—सिद्धान्तके अनुकूल और आप के पद के योग्य तीन घड़ी दिन चढ़े बाद व तीन घड़ी दिन रहे उसके पहिले स्वच्छ प्रकाश में (उजाले में) होने पर भी देख शोध कर लेना।

५ सधर्माविसंवाद—त्रिकाल में भी साधर्मियों से विसंवाद नहीं करना, सामने वाले की गलती अपने दिल में जच जावे तो उनसे एकान्त में पूछ कर संतोष करे और अपवाद नहीं करे।

## अचौर्य्याणुव्रत के ५ अतिचार

**चौरप्रयोगचौरार्थादानविलोपसदृशसन्मिश्राः।**
**हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥५८॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—१—चोरीकी प्रेरणा कर उसकी अनुमोदना करना, २—चोरी के पदार्थ खरीदना, ३—राजा की आज्ञा का उलंघन करना, ( कानून तोडना ) अनुचित प्रयोग से धनग्रहण करना। ४ अधिक कीमत वाली वस्तु में कम कीमत वाली वस्तु मिलाकर अधिक भाव में बेचना ५ नापने तोलने के बाट पायली गजादिक हीनाधिक रखना। इस प्रकार ये अतिचार नहीं लगाना चाहिये यही जैनियों का जिनधर्म है। इन कामों को करने वाले व्यक्ति को न कदर है न मान है न इज्जत है वह सब जगह दुतकारा जाता, अनादर पाता और राजदंड पाता है।

### स्वदारसंतोष यानि ब्रह्मचर्याणुव्रत का स्वरूप—

न तु परदारान् गच्छति न परान्गमयति च पापभीतेर्यत् ।
सा परदारनिवृत्तिःस्वदारसन्तोषनामापि ॥५९॥

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—जो महापुरुष पाप रूपी पंकज से डरकर न तो पर स्त्री स्वयं भोगता है और न दूसरों को भोगवाता है उसकी इस क्रियाका नाम पर स्त्री त्याग तथा स्वदारसंतोष नामक अणुव्रत है। इस व्रत के निभाने वास्ते उस व्रीत को इस व्रत की जो ५ भावना बतलाई है उनका हमेशा चिन्तवन करना चाहिये। वे भावना इस प्रकार है—

### ब्रह्मचर्य अणुव्रत की ५ भावनाएं—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ।

तत्वार्थसूत्र अध्याय ७ सूत्र ६

अर्थ—स्त्रियों मे राग न करे न उनके मिष्ठ वचनों से प्रेम करे और न उनका गाना सुने, २ स्त्रियोंके मनोहर या गुप्त अंग देखने की चेष्टा न करे अगर दीख जावे तो विचार पूर्वक मनको रोके, ३ पूर्व भोगो का सम्बन्ध हुआ हो अथवा न हुआ हो भोगों की याद (स्मरण) नहीं करे, ४ पुष्टरस युक्त आहार (गरिष्ठाहार) जिससे व्रतों में दूषण लगे न करे, और ५ अपने शरीर को इस रूप से थाम रखे जो न तो आप को और न देखने वाले को किसी प्रकार का विकार पैदा हो, ये ही इन भावनाओं का फल है।

## ब्रह्मचर्याणुव्रत के ५ अतिचार

**अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीड़ाविटत्वविपुलतृषः ।**
**इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः ॥६०॥**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

अर्थ—इस व्रत वाला व्रती दूसरों के विवाह कार्य में हरगिज भाग नहीं लेता, २ अन्य अंगों से काम सेवन की कुचेष्टा नहीं करता, ३ गाली गलोज भंड वचन रूप कार्य से हर तरह से सदा बचता है, ४ कर्म के उदय जनित बात दूसरी है परन्तु ज्यादातर काम सेवन की इच्छा नहीं करता और ५ व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहां या व्यभिचारी पुरुष के यहां आने जाने का सम्बन्ध भी नहीं रखता । इस प्रकार इस व्रतधारी का आचरण होता है ।

## परिग्रहप्रमाणाणुव्रत का लक्षण

**धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निस्पृहता ।**
**परिमितपरिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥६१॥**

अर्थ—जो १० प्रकार के बाह्य परिग्रह माने है जैसे १ क्षेत्र २ वास्तु ३ हिरण्य ४ सुवर्ण ५ धन ६ धान्य ७ दासी ८ दास ६ कुप्य (वस्त्र) १० भाण्ड इन दस प्रकार के पदार्थों में अपने पद के योग्य योग्यता पूर्वक रखकर शेष की इच्छा का त्याग, परिग्रह परिमाण व्रत है। इस व्रत का नाम इच्छा परिणाम भी है ।

अब इस व्रत को मजबूत (पुष्ट) बनाने वाली जो ५ भावना हैं उनका लक्षण बतलाते हैं:—

## परिग्रहाणुव्रत की ५ भावनाएं—

**मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च ।**

तत्वार्थसूत्र अध्याय ७ सूत्र १०

अर्थ—हे प्राणियों इस व्रत का धारी पुरुष पांचों इन्द्रियों १ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ४ चक्षु ५ श्रोत्र के विषय मनोज्ञ हों तो कुछ नहीं अगर अमनोज्ञ हों तो कुछ नहीं इनके विषयों मे सदा उदास यानि रागद्वेष से रहित प्रसन्न चित्त सदा रहता है ।

## परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के ५ अतिचार

**अतिवाहनातिसंग्रह विस्मयलोभातिभारवहनानि ।**
**परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपा पंच लक्ष्यन्ते ॥६२॥**

अर्थ—१ अपनी आवश्यकता से अधिक सवारियों को रखना, २ घर में जितनी वस्तुएं चाहिये उनसे अधिक इकट्ठी करना, ३ दूसरों का वैभव देखकर शोच करना (हिंजरना) ४ सब पापों का बाप लोभी चद जी का लोभ करना और ५ पशुओं पर मर्यादा से अधिक भारवाही कराना । इस प्रकार ये अतिचार नहीं लगाना चाहिये ।

## रात्रिभोजन त्याग नामा छटा व्रत

**रागजीववधापाय-भूयस्त्वात्तद्वदुत्सृजेत् ।**
**रात्रिभक्तं तथा युंज्यान्न पानीयमगालितं ॥**

अर्थ—धर्मात्मा जन जैसे मद्य मास मधु का त्याग करते उसी प्रकार रात्रि मे भोजन बना हो या दिन में भोजन

बना हो उसको देख शोधकर भी दिन में जहाँ पर अंधेरा है नहीं खाते तब रात्रि में दिन के बने भोजन को हरगिज रात्रि में कदापि भक्षण नहीं करे। इस ही प्रकार बिना छना पानी भी विवेकी पुरुषों को भूलकर भी इस्तेमाल में नहीं लेना ही अहिंसक जीवों का कर्त्तव्य है।

रात्रि भोजन करने में महान दूषण प्रत्यक्ष होते हैं।

## कवित्त

काड़ा बुद्धिबल हरे, कम्पगद करे कसारी।
मकरी कारण पाय कोढ़ उपजे अतिभारी॥
जुआ जलोदर करे, माम गल व्यथा बढ़ावे।
बाल करे स्वरभंग, बमन मक्षी उपजावे॥
बिच्छु भक्त तालुवे छिद्र, और व्याधि बहुकरहिं थल
ये प्रगट दोष निशिअसनमें, परभवदोष परोक्ष फल।१

कवि लोग रात्रि भोजन में इस तरह कई प्रकार के दोष प्रत्यक्ष दिखाते है और है ही, याते त्याग करना ही श्रेष्ठ है।

## रात्रिभोजन त्याग व्रत के अतिचार

मुहूर्तेऽन्त्ये तथाद्येऽह्नो वल्भानस्तमिताशिनः।
गदच्छिदेऽप्याम्रघृताद्युपयोगश्च दुष्यति ॥१॥

सागारधर्मामृत

जिस श्रावक के रात्रि भोजन का त्याग है वह सूर्य अस्त से पहिले अन्तर्मुहूर्त तथा सूर्य उदय से अन्तर्मुहूर्त पश्चात अर्थात्

दो घड़ी पहिले और पीछे भोजन को त्याग दे। रोग दूर करने के लिये भी रात्रि में किसी प्रकार का भोजन नहीं करे। न मेवा न सब्जी न रसादिक सर्व प्रकार के भोजन यानि खाद्य स्वाद्य लेह्य और पेय का त्याग होगा तब ही अतिचार रहित पना होगा। आगे रात्रि भोजन के अन्य मतानुसार और भी दूषण दिखाते है।

वैष्णव सम्प्रदाय वाले श्री मारकण्डेय ऋषि कहते है—

**अस्तंगते दिवानाथे आपो रुधिरमुच्यते।**
**अन्नंमासं समं प्रोक्तं मार्कण्डेन महर्षिणा॥**

**अर्थ**—मार्कण्ड महर्षि कहते है कि सूर्य के अस्त हो जाने पर जल पीना मानो रुधिर पीना है। और अन्न का खाना ( भक्षण करना ) मांस के खाने के समान होता है। अतः रात्रि भोजन का त्याग करना ही चाहिये।

वैष्णव सम्प्रदाय के कूर्मपुराण अ० २७ पृष्ठ ६४५ पर लिखा है—

**नद्रुह्येत् सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्।**
**न नक्तं चैवमश्नीयात्रात्रौध्यानपरो भवेत्॥**

**अर्थ**—मनुष्य सब प्राणियों पर द्रोह रहित रहे, निर्द्वन्द्व और निर्भय रहे तथा रात्रि को भोजन न करे और ध्यान में तत्पर रहे।

कूर्मपुराण पान ६५३ पर लिखा है—

**आदित्यदर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुखेनरः॥१॥**

**अर्थ**—आदित्य यानि सूर्य जब नहीं दीखता हो तब मनुष्यों को चाहिये कि अन्न को हरगिज भी मुख में नहीं देवें। अर्थात् रात्रि में भोजन न करे।

महाभारत मे कहते हैं कि—

**नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठरम्।**
**तपस्विनां विशेषेण गृहिणां च विवेकिनाम् ॥१॥**

**अर्थ**—तपस्वियों को मुख्यतया रात्रि मे पानी भी नहीं पीना चाहिये और विवेकी गृहस्थ को भी इसका त्याग करना चाहिये।

और भी वैष्णव सम्प्रदायियों का कथन है—

**दिवसस्याष्टमेभागे मन्दीभूते दिवाकरे।**
**एतदनक्तं विजानीयात् न नक्तं निशिभोजनम् ॥१॥**
**मुहूर्तेन दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः।**
**नक्षत्रदर्शनान्नक्तं नाहं मन्ये गणाधिप ॥ २ ॥**

**अर्थ**—दिन के आठवें भाग को प्राप्त समय पर दिवाकर (सूर्य) मंद हो जाता है (रात्रि होने के दो घड़ी पहिले के समय को नक्त कहते हैं) नक्त नक्त व्रत का अर्थ रात्रि भोजन नहीं है हे गणाधिप बुद्धिमान लोग उस समय को नक्त बताते हैं, जिस समय एक मुहूर्त दो घड़ी दिन अवशेष रहता है। मैं नक्षत्र दर्शन समय को नक्त नहीं मानता हूँ परन्तु ऐसे समय

पर भोजन करना सिद्धान्त, स्वास्थ्य व वैदिक आचार से भी मना है। फिर नक्त वगैरह की क्या बात है। आगे और भी बताते हैं—

अम्भोदपटलच्छन्ने नाश्नन्ति रविमण्डले।
अस्तंगतेतु भुञ्जानां अहो ? भानो सुसेवकाः ॥१॥

ये रात्रौ सर्वदाऽहारं वर्जयन्ति सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य फलं मासेन जायते ॥२॥

मृते स्वजनमात्रेऽपि सूतकं जायते किल।
अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथं ॥३॥

अर्थ—यह बात कैसी आश्चर्यकारी है कि सूर्य भक्त लोग जब सूर्य मेघों से ढक जाता है तब वे कदापि काल भोजन नहीं करते ( यानि भोजन का त्याग कर देते है ) परन्तु वही सूर्य जब अस्त हो जाता है तब वे भोजन कर लेते है ॥ १ ॥

जो महापुरुष रात्रि में भोजन नहीं करते हैं वे एक मास में एक पक्ष के (पन्द्रह दिन के) उपवास का फल पाते है। क्योंकि रात्रि के चार प्रहर वे सदैव अनाहार रहते है ।। २ ॥

मनुष्यों के स्वजनमात्र के [अपने कुटुम्ब में से किसी के] मर जाने पर भी जब लोग सूतक पालते हैं यानि उस दशा में अनाहार रहते हैं। तब दिवानाथ (सूर्य) अस्त हो जाने के बाद तो भोजन किया ही कैसे जा सकता है ? अर्थात् नहीं किया जासकता ।

आगे और भी खुलासा करते हैं—

देवैस्तुभुक्तं पूर्वाह्णे मध्यान्हे ऋषिभिस्तथा ।
अपराह्णे च पितृभिः सायान्हे दैत्यदानवैः ॥१॥

सन्ध्यायां यक्षरक्षोभिः सदा भुक्तं कुलोद्वह ।
सर्ववेलामतिक्रम्य रात्रौभुक्तमभोजनम् ॥२॥

अर्थ—इन दोनों श्लोकों में युधिष्ठर से कहा गया है कि हे युधिष्ठर ! दिन के पूर्व भाग मे देवता, मध्याह्न काल में ऋषिगण तीसरे प्रहर में पितृगण, सायंकाल मे दैत्यदानव और सन्ध्या समय में यक्ष राक्षस भोजन करते है। इन समयों को छोड़ कर जो भोजन करते है [यानि किया जाता है] वह भोजन दुष्ट यानि अखाद्य भोजन है ॥ २ ॥

रात्रि मे छः कार्य करने वर्जित हैं, उनमें रात्रि भोजन भी हैं। यह रात्रि भोजन निषेध के कथन की पुष्टि करता है।

नैवाहुतिर्न च स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनम् ।
दानं वा विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषता ॥१॥

अर्थ—आहुति, स्नान, श्राद्ध, देवपूजन, दान और खास करके रात्रि मे भोजन हरगिज नहीं करना चाहिये। इस विषय मे आयुर्वेद का मुद्र लेख ग्रन्थ क्या कहता है—

हृदाभिपद्मसंकोचश्चण्डरोचि इयायतः ।
अतानक्तं न भोक्तव्यं सूक्ष्मजीवादनादपि ॥१॥

अर्थ—सूर्य छिप जाने के बाद हृदयकमल और नाभिकमल दोनों संकुचित हो जाते हैं और उस समय सूक्ष्म जीवों का

भी भोजन के साथ भक्षण हो जाता है जिससे अनेक भयंकर रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। इसलिए रात्रि मे भोजन करने का सर्वथा निषेध किया गया है। रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए।

आगे रामायण के सुन्दरकाण्ड मे गोसाईं तुलसीदास जी भी इसी प्रकार से कहते हैं—

चौपाई

**लंका निश्चरनिकर निवासा। यहां कहां सज्जनकरवासा।**

**अर्थ**—तात्पर्य यह है कि लंका में रहने वाले राक्षसों का ही वास है सो राक्षस रात्रि में खाने वाले ही होते हैं सोई समझाया गया है जैसे—

निश्चर यानि निशि कहिये रात्रि और चर मायने खाना जो रात्रि में खाते हैं सो सब राक्षस कहलाते हैं यातें रात्रि का खाना महापाप का मूल कारण है।

रात्रि भोजन के बारे में सागारधर्मामृत में कहा है—

**अहिंसाव्रतरक्षार्थं मूलव्रतविशुद्धये।**
**नक्तं भुक्तिं चतुर्धापि सदा धीरस्त्रिधात्यजेत् ॥२॥**

**अर्थ**—अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए तथा मूल व्रतों की शुद्धि के निमित्त श्रावक को चाहिए कि मन, वचन और काय से रोटी, दाल, भात आदि, पान दुग्ध, शर्वत, पानी, अर्क आदि खाद्य पेड़े, बरफी, कलाकंद, लड्डू आदि, लेह्य चाटने योग्य पदार्थ तथा चाय, और पान सुपारी इलायची आदि छोड़ना चाहिये। रात्रि भोजन त्यागी श्रावक का यह पहिला धर्म है।

रात्रौ भुंजनानां यस्मादनिवारिताः भवति हिंसा।
हिंसाविरत्यै यस्मात्यक्तव्या रात्रिभुक्तिरपि ॥ १ ॥

अर्थ—हिंसा से डरने वाले प्राणियों को सदा रात्रि भोजन से बचते रहना चाहिये। क्योंकि रात्रि भोजन करने वाला प्राणी हिंसा के पाप से नहीं बच सकता। रात्रि में नियम से त्रस जीव मरते हैं और उसका पाप रात्रि भोजन करने वालों को लगता ही है। आगे और कहते हैं—

रात्रि माहिं बनाकर खाना, दिन में जो भोजन पकवान।
दिनका बना रात्रि में खाना, दोनों भोजन एक समान।
जिस थानक पर भोजन बनता, चंदवा जो नहिं वहां रहान।
चंदवा बिन भोजन नहीं खाना, प्राणी हिंसा होय निदान।
जिस वस्तु से घिन आजावे, उसका तुरत ही त्याग करान।
अतीचार रात्रि भोजन के, जो पाये नर चतुर सुजान ॥

अर्थ—रात्रि को बनाकर दिन में खाना या दिन में बनाकर रात्रि में खाना या भोजन के लिए और भी ऐसा ही आरम्भ करना जिससे हिंसा हो सके। दिवस में भी ऐसे स्थान पर भोजन करना जहाँ पर अन्धकार हो एवं बिना देखा शोधा भोजन करना ये रात्रि भोजन त्याग व्रत के अतिचार हैं इसमें हिंसा टल नहीं सकती। मांस भक्षण का दूषण लगता ही है।

जिस स्थान पर भोजन बनाया जावे वह स्थान अत्यन्त प्रकाशमय एवं चंदोवा सहित होना चाहिये और जहाँ भोजन रखा जावे अथवा भोजन किया जावे वहाँ भी चंदोवा होना चाहिये।

जिस पदार्थ को देखकर घिन आजावे उस पदार्थ को भक्षण नहीं करना चाहिए। स्थावर जीवों की रक्षा करने के हेतु भी रात्रिभोजन अवश्य त्याग देना चाहिये। भोजन की शुद्धि करना श्रावकों के लिए आवश्यक है। रात्रि भोजन के त्याग से पांचों व्रतों में अवश्य निर्मलता होती है यानि आ ही जाती है। एवं मुख्य जो अहिंसा व्रत है उसका पालन हो जाता है। इसलिए जैन धर्मी मात्र को रात्रि में हरगिज भोजन नहीं करना चाहिये।

वैष्णव सम्प्रदाय के ऋषीश्वर महाभारत में इस प्रकार बतलाते हैं—

**मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणम्।**
**ये कुर्वन्ति वृथास्तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥१॥**
**वृथा एकादशीप्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः**
**वृथा च पौष्करी यात्रा, कृत्स्नं चान्द्रायणं वृथा ॥२॥**
**चातुर्मासे तु सम्प्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः।**
**तस्य शुद्धिर्न विद्येत चान्द्रायणशतैरपि ॥३॥**

अर्थ—इन श्लोकों मे बतलाया गया है जो पुरुष रात्रि में भोजन करता है उनके हजारों बार चान्द्रायण व्रत करना वृथा हैं। क्योंकि रात्रि भोजन में मांस खाने का दूषण होता है सो उत्तम कुल के योग्य नहीं। ऐसा वैष्णव सम्प्रदाय मे बतलाया है। हे जैनी भाइयो! जिनको तुम मिथ्यादृष्टि मानते हो वो लोग भी रात्रि भोजन को बुरा मानते हैं, तब तुम तो बहुत उत्तम धर्म वाले हो इसलिए आपके तो रात्रि भोजन का सर्वथा त्याग होना ही चाहिये।

## रात्रिभोजन त्याग के ५ अतिचार

१ रात्रि का बना हुआ दिन में खाना, २ दिन का बना हुआ रात्रि में खाना, ३ बिना देखा हुआ बिना सोधा हुआ खाना, ४ दिन में भी अन्धेरे में बैठकर खाना, ५ प्रमाद व ग्लानि सहित हो करके खाना इन अतिचारों से बचना चाहिए। इस प्रकार निर्ममत्व विवेक सिद्धान्त और अनुभव सहित अपनी शक्ति को न छिपाकर शुद्ध मन से अपने कल्याण के लिये आचरण करे उसे पहिली प्रतिमा कहते हैं।

सारांश यह है कि आत्मकल्याणार्थी (प्रमाद विडारने को) पाक्षिक के ४६ गुण जैसे जघन्य पाक्षिक ४५ दिन का बच्चा उसके तो ११, मध्यम पाक्षिक के ३४ हैं और उत्तम पाक्षिक का १ सिर्फ मर्यादित भोजन इस तरह ४६; इनके उपरान्त पंचाणुव्रत सातिचार पालन करना पहिली प्रतिमा कहलाती है। सम्यक् दर्शनपूर्वक यह पुरुष गृहस्थी के सिद्धान्त अनुकूल सर्व कार्य कर सकता है सिर्फ जाति की जीमनवार में नहीं जीम सकता, किन्तु राजपाट तक कर सकता है।

**प्रश्न**—प्रतिमाधारी राजपाट कैसे करेगा ? क्यों कि राज में तो महा अन्याय होता है ?

**उत्तर**—इसका उत्तर हम इस ग्रन्थ में आगे चल कर देवेंगे यह कथन प्रतिमा के वर्णन में देखो, तुम्हारा समाधान होगा।

जैनधर्म के स्वरूप को न समझकर इसको हव्वा बना दिया जैनधर्म किसी जीव की बपौती नहीं है। यह धर्म विश्व धर्म है

इसको सर्व प्राणी अपने अपने पदस्थ की मर्यादा के अनुकूल पाल सकते हैं।

### व्रत प्रतिमा का स्वरूप

**निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि।**
**धारयते निःशल्योऽसौ व्रतिनामतो व्रतिकाः ॥१३७॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—दूसरी जो व्रत प्रतिमा है उसमें पंचाणुव्रतों का तो अतिचार रहित पालन रहे, सप्तशील (तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत) का भी अतिचार रहित पालन हो। इनके अतिचार आगे की प्रतिमा मे यथायोग से छोड़ना होते हैं।

इस प्रतिमा का नाम व्रतप्रतिमा यानि बारह व्रतों का पालन करना। जिसमे पंच अणुव्रतों का तो ऊपर कथन कर चुके। रहे सप्तशील, जिनका व्याख्यान यहाँ पर किया जाता है।

**पंचाणुव्रतरक्षार्थं पाल्यते शीलसप्तकम्।**
**शालिवत्क्षेत्रवृद्धयर्थं क्रियते महती व्रति ॥१॥७**

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

अर्थ—अहिंसा आदि पंचाणुव्रतों की ठीक ठीक रक्षा के लिये तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे सात शील पालन किये जाते है। जैसे धान्य युक्त खेत की रक्षा व वृद्धि के लिये उसके चारों तरफ कांटों की बाड़ लगाई जाती है जिससे जंगली जानवर उस खेत के पदार्थ को न खावें उसकी रक्षा की जावे इसी प्रकार इन पांच अहिंसादि अणुव्रतों की इन सात प्रकार के शीलों से रक्षा होती है।

### शीलव्रत के भेद

**दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोग परिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च ।**

**अर्थ**—१ दिग्व्रत, २ देशव्रत, ३ अनर्थदण्डव्रत ये तीन तो गुणव्रत कहलाते हैं।

१ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ उपभोगपरिभोग परिमाण, ४ अतिथि संविभाग ये चार शिक्षाव्रत हैं। ये सात शील तथा पूर्वोक्त पंचाणुव्रत इस प्रकार बारह व्रत का धारी व्रत प्रतिमा वाला श्रावक कहलाता है। कोई आचार्य देशव्रत को गुणव्रतों मे तथा कोई आचार्य इसको शिक्षाव्रत में ग्रहण करते हैं सो यह सब मात्र कथन शैली मे भेद है तत्त्व में भेद नहीं है।

**प्रश्न**—जैसे पंचाणुव्रत के लिये भावना बतलाई हैं वैसे इन गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों के वास्ते भी बतलाई हैं क्या ?

**उत्तर**—एक एक अणुव्रतों के वास्ते जो पांच २ भावना बतलाई हैं वैसे गुणव्रतों और शिक्षाव्रतों के वास्ते नहीं बतलाई। इनके तो सिर्फ पांच पाच अतिचार बतलाये है।

**प्रश्न**—गुणव्रत और शिक्षाव्रतों को कहने का क्या तात्पर्य है ? समझाइये।

**उत्तर**—ये गुणव्रत तीन और शिक्षाव्रत चार हैं, सो ये अणुव्रतों को महाव्रत रूप होने में सहायक होते हैं। इन्हें सप्त शील भी कहते है।

**प्रश्न**—इनका नाम शील क्यों कहा ?

**उत्तर**—शील उसे कहते हैं जो यथार्थ में अपने स्वरूप में ही रमण करे। सो ये सात शील इन अणुव्रतों को महाव्रत रूप शिक्षा करते हैं। जब ये अणुव्रत महाव्रत रूप परिणमेंगे तब ही ये आत्मा अपने निजस्वरूप चैतन्यता को पहिचानेगा उसी का नाम यथार्थ शील है।

**प्रश्न**—अच्छा तो अब इन गुणव्रतों का और शिक्षाव्रतों का स्वरूप समझाइये ?

**उत्तर**—सुनिये ! पहिले गुणव्रतों का वर्णन किया जाता है।

गुणव्रत तीन हैं १ दिग्व्रत, २ देशव्रत और ३ अनर्थ दण्डव्रत। अब इनका प्रथक् २ स्वरूप बतलाते हैं।

दिग्व्रत गुणव्रत का स्वरूप

**दशदिक्ष्वपि संख्यानं कृत्वा यास्यामि नो बहिः।**
**तिष्ठेदित्यामृते यत्र तत्स्याद्दिग्विरतिव्रतम् ॥५३॥७**

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

**अर्थ**—दशों दिशाओं का जन्म पर्यन्त के लिये परिमाण करना कि इससे बाहर नहीं जाऊंगा इसप्रकार को मर्यादा के भीतर रहना सो दिग्व्रत है। अर्थात् पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऊपर और नीचे इन दस दिशाओं मे जाने की मर्यादा करना कि अमुक दिशा में इतने

दूर तक रखता हूँ ऐसी प्रतिज्ञा कर उसमें दृढ़ रहे हरगिज भी ज्यादा नहीं करे इसका नाम दिग्व्रत है।

दिग्व्रत के पाच अतिचार

**सीमविस्मृतिरूर्ध्वाधस्तिर्यग्भागव्यतिक्रमाः।**
**अज्ञानतः प्रमादाद्वा, क्षेत्रवृद्धिश्च तन्मलाः॥**

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

**अर्थ**—१ की हुई सीमा को भूल जाना, २ ऊर्ध्वभाग व्यतिक्रम, ३ अधोभागव्यतिक्रम, ४ तिर्यग्भागव्यतिक्रम, और ५ क्षेत्रवृद्धि इस तरह दिग्व्रत के पांच अतिचार होते हैं।

**१ सीमा की विस्मृति**—मंद बुद्धि अथवा कोई संदेह आदि का हो जाना अज्ञान कहलाता है। तथा अत्यंत व्याकुल हो जाना अथवा चित्त की वृत्ति का दूसरी ओर लग जाना प्रमाद कहलाता है। इस प्रकार प्रमाद से या अज्ञान मे नियमित की हुई मर्यादा को भूल जाना सो सीमा की विस्मृति है।

**२ ऊर्ध्वभाग व्यतिक्रम**—पर्वतादिक के ऊपर चढ़ने की की हुई मर्यादा का उल्लंघन करना।

**३ अधोभाग व्यतिक्रम**—तलघर, कूप, बावड़ी, खदान खदान मे उतरने की मर्यादा को भूलकर ज्यादा उतर जाना।

**४ तिर्यग्भाग व्यतिक्रम**—पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, आग्नेय आदि दिशा विदिशा की मर्यादा को भूल जाना या उल्लघन करना।

५ क्षेत्र वृद्धि—दिग्व्रत में की हुई मर्यादा में पूर्व की कमती कर लेना, पश्चिम की बढ़ा लेना ये लोभ बस कार्य होता है ये व्रत भंग का कार्य है। पूर्ण मर्यादा का भंग नहीं किया इसलिये ये कार्य भंगाभंग है सो अतिचार है।

देशव्रत का स्वरूप

अद्यरात्रिदिवा वापि पक्षो मासस्तथाऋतु।
अयनं वत्सरः कालावधिमाहुस्तपोधना ॥२५॥७

धर्मसंग्रहश्रावकाचार

अर्थ—दिग्व्रत में की हुई मर्यादा के भीतर भी घटाकर नियम करना देशव्रत कहलाता है उसका समय एक दिन, एक रात्रि, एक पक्ष, एक मास, एक ऋतु, छः महीने, एक वर्ष, आदि द्वारा मर्यादा का करना देशव्रत कहलाता है।

देशव्रत के ५ अतिचार

पुद्गलक्षेपणं शब्दश्रावणं स्वांगदर्शनम्।
प्रेषं सीमबहिर्देशे ततश्चानयनं त्यजेत् ।२७।५

सागारधर्मामृत

अर्थ—१ सीमा के बाहर ढेले आदि फेंकना, २ शब्द सुनाना, ३ अपना शरीर दिखाना, ४ किसी अन्य को भेजना, ५ सीमा के बाहर से कुछ मंगाना। इस प्रकार अतिचारों को त्यागना चाहिये।

१ पुद्गलक्षेपण—नियत की हुई सीमा के बाहर स्वयं

न जाकर अपने अभिप्राय को जतलाने के लिये अन्य पुरुष को ढेले पत्थर फेंक कर बतलाना पुद्गलक्षेपण है।

२ **शब्दश्रावण**—मर्यादा के बाहर के पुरुष को या स्त्री को अपनी मर्यादा में बुलाने वास्ते चुटकी बजा देना, सीटी लगा देना, आवाज कर देना जिससे वो आ जावे। यानि ताली पीट देना या खकार देना ये सब इसारे हैं।

३ **स्वांगदर्शन**—अपनी सीमा मे किसी को बुलाने वास्ते शब्द उच्चारण नहीं करके अपना शरीर बताकर अपना अभिप्राय पूरा कर लेना सो स्वांगदर्शन है।

४ **प्रेषण**—स्वयं मर्यादित स्थान पर रहकर अपना कार्य साधने वास्ते मर्यादा से बाहर आप न जाकर सेवकादिकों को भेजना।

५ **आनयन**—अपने किसी इष्ट पदार्थ को अपनी सीमा के बाहर से उसे सीमा के अन्दर मंगाने को आनयन कहते है। ऐसे अतिचारों का सर्वथा त्याग होना चाहिये।

अनर्थदण्डव्रत का स्वरूप

**पीडापापोपदेशाद्यैर्देहाद्यर्थाद्विनांगिनाम्।**
**अनर्थदण्डस्तत्यागोऽनर्थदण्डव्रतं मतम् ॥**

सागार धर्मामृत अध्याय ५ श्लोक ६

**अर्थ**—अपने वास्ते या अपने आस पास रहने वाले मनुष्यों के शरीर या वचन या मन के प्रयोजन के बिना १ पापोपदेश, २ हिंसादान, ३ दुश्रुति, ४ अपध्यान, ५ प्रमा-

दुचर्या इन पांच निरर्थक व्यापार से त्रस तथा स्थावर जीवों को पीड़ा देना अनर्थदण्ड व्यापार है। इसका त्याग करना जरूरी है। इस प्रकार के अनर्थदण्ड के पाँच भेद बतलाये हैं उनका खुलाशा इसप्रकार है।

पापोपदेश नामा अनर्थदण्ड का स्वरूप

**तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारंभप्रलंभनादीनाम् ।**
**कथाप्रसंगप्रसवः स्मर्तव्यः पाप उपदेशः ॥७६॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

**अर्थ**—जिमसे तिर्यंचों को क्लेश उपजे ऐसे वाणिज्य हिंसा आरभ ठगाई की कथा को उपजाना सब पापोपदेश नामा अनर्थदण्ड है।

हिंसादान अनर्थदण्ड का स्वरूप

**परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधशृंगशृंखलादीनाम् ।**
**बधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥७७॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

**अर्थ**—फरसा, तलवार, खनित्र, [ फावड़ा, गेंति, सब्बल ] अग्नि, बरछी, भाला, चाकू, सींगी, सांकल, आगपेटी, कुराड़ा, आदिक हिंसा के उपकरणों को किसी को मांगे देने में महान पाप होता है क्योंकि इनको लेजाकर वो जो कार्य करेगा उसमें हिंसा होगी सो सब पाप देने वाले को होगा। इसलिये ऐसे उपकरण नहीं देना चाहिये। हिंसाजनक आयुधों में हल, बक्खर, गाड़ी, घोड़ा, मोटर, पानी का पम्प

ऊँट, गधा, बैल, किराये से देना और अग्नि का कार्य कराना आदि १५ खरकर्म का आगे व्याख्यान किया जायगा।

अपध्यान नामा अनर्थदण्ड का स्वरूप

**वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः।**
**आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥७८॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—जिन शासन में जो पंडित हैं वह इसप्रकार के कर्तव्य जैसे रागद्वेष से दूसरों को हानि पहुँचाना या वध बन्धन करा देना, अपने चित्त में किसी को हानि पहुंचाना, किसी स्थान पर अच्छा समुदाय होवे वहाँ के लोगों को उल्टा समझाकर फूट करा देना या किसी स्त्री को और प्रकार समझाकर उसकी हँसी उड़ाना, दूसरों को नीचा दिखाकर आप आनंद मानना सब अपध्यान है।

दुःश्रुति नामा अनर्थदण्ड

**आरंभसंगसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः।**
**चेतः कलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥७९॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—चित्त को रागद्वेष से कलुषित करने वाले, काम को जाग्रत करने वाले, मिथ्यात्व का आश्रय बढ़ाने वाले, आरंभ परिग्रह को बढ़ाने वाले, पापों में प्रवृति कराने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, को जाग्रत करने वाले या बढ़ाने वाले, जीवों को महाक्लेश पहुंचाने वाले, आरंभ परिग्रह साहस मिथ्यात्व राग द्वेष मद मदन इत्यादिक की वृत्ति रूप शास्त्रों को

या कथाओं को सुनना सुनाना पाप प्रवृति का बीज भूत दुश्रुतिनामा अनर्थदण्ड है।

प्रमादचर्यानामा अनर्थदण्ड का स्वरूप

**क्षितिसलिलदहनपवनारंभं, विफलं वनस्पतिच्छेदम्।**
**सरणं सारणमपि च प्रमादचर्यां प्रभाषन्ते ॥८०॥**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

**अर्थ**—बिना प्रयोजन चलना फिरना, वकवाद करना, दौड़ना, दौड़ाना, पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन का आरंभ करना, वनस्पति का छेदना, छिद्वाना, तोड़ना, तुड़वाना इत्यादि कार्य बिना प्रयोजन करना सो सब सावद्य कार्य हैं, इन्हीं को महापुरुष प्रमादचर्या कहते है।

इस अनर्थदण्डव्रत में ही जो १५ प्रकार के खर कर्म हैं सो भी गृहस्थों को त्याग करने योग्य हैं, उनको बतलाते हैं।

**व्रतयेत्खरकर्मात्र, मलान्पंचदशत्यजेत्।**
**वृत्तिंवनग्न्यनस्फोटभाटकैर्यन्त्रपीडनं ॥२१॥**
**निर्लांछना सतीपोषौ सरः शोषं दवप्रदां।**
**विषलाक्षादन्तकेशरस वाणिज्यमंगिरुक् ॥२२॥**
**इति केचिन्न तच्चारु लोके सावद्यकर्मणां।**
**अगण्यत्वात्प्रणेयं वा तदप्यति जड़ान्प्रति ॥२३॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—इस प्रकार यहां पर कहे हुए व्यापार अव्रति श्रावकों के योग्य नहीं। ये कार्य महा पाप की खान हैं। सो नहीं करने चाहिये उनका यहां थोड़ा दिग्दर्शन कराया जाता है।

१ वनजीविका, २ अग्निजीविका, ३ अनोजीविका, ४ स्फोटजीविका, ५ भाटकजीविका, ६ यन्त्र पीड़न ७ निर्लाछन, ८ असतीपोष, ९ सर शोष, १० दवप्रद, ११ विषवाणिज्य, १२ लाक्षावाणिज्य, १३ दन्तवाणिज्य, १४ केशवाणिज्य और १५ रसवाणिज्य ये खर कर्म हैं।

**१ वन जीविका**—टूटे हुए अथवा बिना टूटे वृक्षों को बेचना अथवा खरीदना, गेहूं चना आदि धान्यों को चक्की से पीसना या दलना पिसाना दलाना।

**२ अग्नि जीविका**—छहों काय के जीवों की विराधना करने वाले ऐसे अगारे बनाना, कोयले बनाना, भट्टा लगवा कर ईंटें पकवाना, चूना पकाना व पकवाना।

**३ अनोजीविका**—गाड़ी, रथ, तांगा, बग्घी या इनके पहिये, बनवाकर या बनाकर, अथवा भारवाही करना अथवा दूसरों से करवाना या बेचना, खरीदना अथवा हाथी, ऊंट, घोड़ा, बलध, गाय, भैंस, बकरी आदि को खरीदना बेचना ये सब महा पाप के व्यापार हैं।

**४ स्फोट जीविका**—जिससे पृथ्वी कायिक आदि जीवों का घात हो ऐसे फटाके, आतिशबाजी, बारूद के कार्यों को करना कराना, बेचना, बिकाना।

**५ भाटकजीविका**—गाड़ी, घोड़े आदि को किराये पर देना।

**६ यंत्र पीड़न जीविका**—तिल, सरसों, मूंगफली, आदि पदार्थ कोल्हु में पेलना, पिलवा कर व्यापार करना इनमें

रहने वाले अनेक जीवों का घात होता है, पीड़ा होती है। या ये पदार्थ बदले में देकर तेल खरीदना आदि।

७ **निर्लांछन**—जैसे पशुओं की नाक छेदना, बदिया करना ये महा पाप के और कर्म बंध के तथा दु:ख के कारण हैं।

८ **असतीपोष**—दूसरे जीवों के घात करने वाले जो जीव है उनको पालना, उनको रखकर लड़ना, हर्ष मानना।

९ **सर:शोष**—धान्य बोना, खेतों में पानी देना, जैसे कूएं बावड़ी, तालाब, नदी आदि जलाशयों से नल निकालकर व्यापार करना, इनमे रहने वाले लाखों मछलियों आदि जीवों का नियम कर घात होता है सो वर्जनीक है।

१० **दव प्रद**—घास पूस तृणादिक जलाना, जलवाना या खेतों में अग्नि लगवाना।

११ **विष वाणिज्य**—अनेक जीवों को दुखदाई ऐसा विष बेचना बिकवाना।

१२ **लाक्षादि वाणिज्य**—लाख, गोंद, मनसील, नील आदि पदार्थों को तोड़ना तुड़वाना, इनका ठेका लेना या देना, इनकी खेती व्यापार करना या टंकण खार आदि का व्यापार करना।

१३ **दंत वाणिज्य**—जैसे हाथी, सांभर, सिंह आदि जानवरों की हड्डी निकालना या निकलवाना फिर इन के उपकरण बनवाना। इनका व्यापार निंदनीय है क्योंकि नीच लोग भील, चमार, सहरीया, चाँडाल, इन जीवों को कोई जीते

लोभ के बस होकर मार डालते हैं सो ये सब महा पाप करना और कराना है।

१४ केश वाणिज्य—दासी दास पशु आदिक बेचने से परतन्त्रता या बध बन्धन जीवों के लिये प्राप्त होता है वहां पर भूख प्यास जीवों को भोगना पड़ती है। अतएव महा दुःख उठाना पड़ता है।

१५ रस वाणिज्य—जैसे मक्खन, सहद, बेचने वालों को महान पाप बंध होता है इन पदार्थों में हमेशा ही जीवों की उत्पत्ति और विनाश बना ही रहता है। तथा ऐसा मद्य (शराब) भी जीवों को उन्माद पैदा करता है। अतः पाप भीरुओं को चाहिये कि ऐसे व्यापारों को हमेशा के लिये अर्थात् आजन्म त्याग करें।

इस प्रकार ग्रहस्थों को चाहिये कि अपने संसार में रहने की जीविका इस प्रकार के खर कर्मों से रहित शुद्ध रक्खे जिस से पतन होने से बचकर कर्म बंध न हो।

अनर्थदण्डव्रत के ५ अतिचार

**कंदर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पंच।**
**असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदंडकृद्विरतेः ।८१।।**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

**अर्थ**—१ कंदर्प, २ कौत्कुच्य, ३ मौखर्य, ४ अतिप्रसाधन और ५ असमीक्ष्याधिकरण, ये अनर्थदंडव्रत के ५ अतिचार हैं, इनको त्यागना चाहिये।

१ कंदर्प—रागभाव के उद्रेक से हास्य मिश्रित अशिष्ट

बचन बोलना, अथवा काम भोग उत्पन्न करने वाले बचन बोलना सो सब कंदर्प नामा अतिचार है।

२ **कौत्कुच्य**—हास्य और भंड बचन सहित भौंह, नेत्र ओष्ठ, हाथ, पैर, नाक, मुख आदि की कुत्सित चेष्टा करना, यानि विकारों को धारण करना। ये कौत्कुच्य नामा अतिचार है। ये दोनों अतिचार प्रमादचर्या नामाअनर्थ दण्डव्रत के अतिचार हैं।

३ **मौखर्य**—धृष्टतांपूर्वक, विचार और सम्बन्ध रहित तथा असत्य बकवाद करना मौखर्य नामा अतिचार है।

४ **अतिप्रसाधन**—प्रयोजन से अधिक आरंभ व संग्रह करना। जैसे किसी को कोई कार्य करने के लिए कहना कि तू यह कार्य कर हम इस कार्य मे तेरी मदद करेंगे और अन्य से भी मदद करावेंगे और तुझे खूब फायदा उठवावेगें, इत्यादि कहकर बिना विचारे उन हिंसा के कार्य करने वालों को उत्साह करना और हिंसा करना। इसी प्रकार लकड़ी काटने वालों, ईंट पकाने वालों, भट्टा लगाने वालों से आरंभादि कराकर वहुत हिंसा करना अतिचार है।

५ **असमीक्ष्याधिकरण**—हिंसा के उपकरणों को अपने समीप रखना। जैसे ओखली के साथ मूसल, हल के साथ उसका फाला, गाड़ी के साथ धुरा, धनुष के साथ बाण, क्योंकि जब हिंसा के उपकरण पास होंगे तो हर कोई मनुष्य हर प्रकार से हिंसा कर सकता है सों ही अतिचार है ॥५॥

भोगोपभोग में अनर्थदण्ड हो ही जाता है। जैसे सेलखड़ी मुल्तानी मिट्टी और आंवला आदि स्नान करने के साधन साथ

में लेकर नदी तालाब पर जावे वहां पर इनकी मालिस कर स्नान करे और अपने साथ और भी मनुष्य हो तब बिना छने पानी का कोई खयाल नहीं करे और हिंसा होने की कोई परवाह नहीं करे तब कितना पाप का बंध होगा इस ही का नाम तो अनर्थ-दण्ड है। सदा ख्याल रक्खो और सावधान रहो, पाप कर्मों से बचते रहो जिससे संसार मे दुःख न उठाने पड़ें। व्रत पालने का यही माहात्म्य है।

शिक्षाव्रत के भेद

सामायिकं वा प्रोषधोपवासभोगपरिभोग्यानि।
अतिथिसंविभागव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥

अर्थ—शिक्षाव्रत उसे कहते है जो प्रथम समय मे इस जीव ने पंचाणुव्रत धारण किया था उनके एक एक व्रत की पांच पांच भावनायुत और उसके बाद तीन गुणव्रतों सहित ये शिक्षा व्रत उन अणुव्रतों को महाव्रतरूप परिणमन करने की मजबूत शिक्षा देते है। इसलिये इनका नाम शिक्षाव्रत कहलाता है। इन के चार भेद है। १ सामायिक, २ प्रोषधोपवास, ३ भोगपरि-भोग परिमाण और ४ अतिथिसंविभाग। ये चारों ही शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

सामायिक शिक्षाव्रत

आसामयमुक्तिमुक्तं, पंचाघानामशेषभावेन।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥९७॥
मूर्द्धरुह मुष्टिवासो बंधं पर्यंकबंधनं चापि।
स्थानमुपवेशनं वा, समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥९८

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—सर्वारंभ और पांचों पापों से रहित होकर मुनि की तरह अपनी आत्मा का अन्तमुहूर्तपर्यन्त चिन्तवन करना यानि धर्म ध्यान करना, धर्म में लीन होना समय है। जैसे एकान्त में, केशबंधन, मुष्टिबंधन, वस्त्रग्रन्थिबंधन आदि छूटने पर्यन्त सर्व प्रकार की भाव हिंसा तथा प्राणों के वियोगरूपी द्रव्य हिंसा आदि पांचों पापों का मन, वचन, काय से त्याग पूर्वक चिन्तवन करना सो सामायिक शिक्षाव्रत है। इसके उत्तम, मध्यम, जघन्य तीन भेद हैं, जिनका वर्णन सामायिक प्रतिमा में विशेष रूप से खुलासा करेंगे, वहां से देखकर इसका श्रद्धान करना चाहिये।

सामायिक योग्य स्थान

एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे, वनेषु वास्तुषु च।
चैत्यालयेषु वापि च, परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥६६॥

अर्थ—उपद्रव रहित एकान्त स्थान में जैसे बन में, मसान में, सूने घर में, धर्मशाला या चैत्यालय में, गिरि की गुफा या कन्दरा में या अपने घर में, प्रसन्न मन से सामायिक करना। जहां पर विशेष वायु न हो, डांस, मच्छर, सर्प, चूहे, आदि का बिल या बिच्छुओं का आवास न हो, विशेष गर्मी, सर्दी न हो, तिर्यंच, स्त्री, नपुंसकों का आवागमन न हो। गीत गान बादित्र व विवाह आदि कार्यों का स्थान न हो। मरण हुए का या जन्म हुए का स्थान न हो। मदिरा पीने वाले या वेश्या डोमियों का स्थान न हो। क्योंकि ऐसे कारणों के मिलने से परिणाम बिगड़ जाने की संभावना रहती है। अतः उपरोक्त बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

यह सामायिक शिक्षाव्रत तीसरी सामायिक प्रतिमा के लिये अभ्यासरूप है। इस शिक्षाव्रत मे दिन मे तीन बार सामायिक होना चाहिए। अगर इसप्रकार नहीं बने तो कम से कम दिन में एक बार तो अवश्य ही होना चाहिये।

सामायिक के ३२ बत्तीस दोष और पॉच अतिचार टालने से तीसरी सामायिक प्रतिमा निर्दोष होती है।

यह सामायिक पंच महाव्रतों को पूर्ण करने का कारण है इसलिये प्रतिदिन आलस्य रहित होकर एकचित्त से इस सामायिक का अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

सामायिकमे आरंभ सहित सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग हो जाता है। इस कारण उस समय पर गृहस्थ भी उपसर्ग से ओढ़े हुए कपड़े सहित मुनि की तरह उत्तम भाव को प्राप्त होता है।

सामायिक को प्राप्त होने वाले मौनधारी गृहस्थ को अचल योग सहित शीत, उष्ण, डांस, मच्छर आदि परीषह तथा उपसर्ग को सहन करना चाहिये। एव ऐसी भावना करना चाहिये कि मैं एक हूं, अशरण हूं, इस दुःखमय संसार मे कर्मों के वशीभूत होकर दु.ख उठा रहा हूं। मेरा स्वरूप तो श्री सिद्ध भगवान के समान है। सिद्ध भगवान मे और मेरे स्वरूप मे शक्ति तथा व्यक्ति का ही अन्तर है। बाकी किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। मैं निराकुल, नित्य हूँ, जिसका अनन्त काल तक कदापि भी विनाश नहीं हो सकता। परन्तु मैंने अशुभ परिणामों से जो पूर्व में कर्मोपार्जन किये है, उनसे चतुर्गतिरूप संसार मे भ्रमण कर रहा हूँ।

इसलिये अब सर्व प्रकार के भयों को छोड़कर आत्म स्वरूप में मग्न होकर नियत समय तक अडोल सामायिक से कभी चलायमान नहीं होना चाहिये।

गणधर देवों ने ग्रन्थों में इस सामायिक की ऐसी महिमा गाई है कि यह सामायिक ही आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति योग्य केवलज्ञान और चारित्र को प्राप्त कराकर चतुर्गतिरूप भ्रमण को नष्ट करता है।

**प्रश्न**—इसप्रकार की सामायिक तो अत्यन्त दुःसाध्य है, इसका पालन गृहस्थ अवस्था में कैसे हो सकता है?

**उत्तर**—इसप्रकार की सामायिक दुःसाध्य होते हुए भी अभ्यास के प्रभाव से सरल हो जाती है। जैसे जल भरने वाली स्त्रियों की रस्सी कितनी नरम और कोमल होती है और उनसे कुँवे में बड़े २ पत्थरों के अन्दर खड्डे पड़ जाते हैं। क्योंकि बार २ के अभ्यास से महा दुःसाध्य कार्य भी सरल ( सहज ) हो जाते हैं। अभ्यास ऐसी ही वस्तु है।

सामायिक शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार

**पंचात्रापि मलानुज्झेरनुपस्थापनं स्मृतेः।**
**कायवाङ्मनसा दुष्टप्रणिधानान्यनादरम्॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५ श्लोक ३३

**अर्थ**—इस सामायिक शिक्षाव्रत के पाँच अतिचार छोड़ने चाहिये जैसे—१ स्मृत्यनुपस्थापन, २ कायदुष्प्रणिधान, ३ वचन दुष्प्रणिधान, ४ मनोदुष्प्रणिधान ५ अनादर। इनका पृथक् २ खुलासा इसप्रकार है—

१ **स्मृत्यनुपस्थापन**—स्मरण नहीं रखना, चित्त की एकाग्रता का नहीं होना, मैं सामायिक करूँ या नहीं करूँ, अथवा मैंने सामायिक की है अथवा नहीं। इस प्रकार से विकल्प करना, स्मृत्यनुपस्थापन नामा अतिचार है। जब प्रबल प्रमाद होता है तब ही ये अतिचार लगता है। मोक्ष-मार्ग मे जितने अनुष्ठान है उनमे स्मरण रखना सबसे पहिले मुख्य है। बिना स्मरण के कोई क्रिया भलीभाँति नहीं होती।

२ **कायदुःप्रणिधान**—काय की पापरूप प्रवृत्ति को नहीं रोकना। हाथ पैर आदि शरीर के अवयवों को निश्चल नहीं रखना। अथवा पापरूप संसारी क्रिया मे लगना।

३ **वाग्दुःप्रणिधान**—वर्णों का उच्चारण स्पष्ट रूप से नहीं रखना, शब्दों का अर्थ नहीं जानना, पाठ पढ़ने मे शीघ्रता ( चपलता ) करना।

४ **मनोदुःप्रणिधान**—क्रोध, लोभ, द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान आदि उत्पन्न होना, किसी कार्य के करने की शीघ्रता करना। अथवा क्रोधादि आवेश मे आकर बहुत देर तक सामायिक करना, परन्तु सामायिक में चित्त न लगाकर इधर उधर घुमाना।

५ **अनादर**—सामायिक करने मे उत्साह नहीं करना। नियत समय पर सामायिक नहीं करना। अथवा जिस तिस प्रकार समय पूरा कर देना। सामायिक पूर्ण करते ही सांसारिक कार्यो मे तत्काल दत्तचित्त हो जाना ही अतिचार हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत का स्वरूप

**स प्रोषधोपवासो यच्चतुष्पर्व्यां यथागमम्।**
**साम्यसंस्कारदार्ढ्याय चतुर्भुक्त्युज्झनं सदा ॥**

**उपवासाक्षमैः कार्योऽनुपवासस्तदक्षमैः ।**
**आचाम्लनिर्विकृत्यादि शक्त्या हि श्रेयसे तपः ॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५ श्लोक ३४, ३५

**अर्थ**—सामायिक के संस्कारों को दृढ़ बनाने के लिये परीषह उपसर्ग आदि के होते हुए भी समता भाव नहीं बिगड़ने पावे और अच्छी तरह उन पर विजय प्राप्ति हो। इसलिये जो श्रावक जन्म पर्यंत प्रत्येक महिने के चारों पर्वों में ( यानि दो अष्टमी और दो चतुर्दशी ) को शास्त्रानुसार चारों प्रकार के आहार का त्याग करता है उसके त्याग को प्रोषधोपवास कहते हैं।

**उत्तम उपवास विधि**—जैसे किसी को अष्टमी का प्रोषधोपवास करना है तो उसे सप्तमी के दिन एकाशन सहित व्रत स्वीकार करना चाहिये। अष्टमी को बिल्कुल निराहार रहे। नवमी को एकाशन पूर्वक पारणा करे। इस प्रकार प्रत्येक पर्व में चार-चार बार भोजन के त्याग को प्रोषधोपवास कहते है। यह उपवास की उत्तम विधि है।

मध्यम उपवास विधि

जो श्रावक इस प्रकार की विधि को पालने में असमर्थ है उनको जल के सिवा अन्य सब ही आहार को छोड़ देना चाहिये। इसको अनुपवास मध्यम प्रोषधोपवास कहते है।

जघन्य उपवास विधि

जो श्रावक अनुपवास करने में भी असमर्थ हैं उनको आचाम्ल या निर्विकृति भोजन करना चाहिये। जैसे बिना पकी हुई कांजी (खटाई) मिला कर भात खाना। यह आचाम्ल

कहलाता है। विकृति रहित भोजन को निर्विकृति कहते हैं। जैसे गर्म जल के साथ भात को जीमना। जो जिह्वा और मन मे विकार पैदा करे उसे विकृति कहते है। ऐसा भोजन चार प्रकार का होता है।

१ गोरस, २ इक्षुरस, ३ फलरस, ४ धान्यरस। इनका प्रथक् प्रथक् स्वरूप इस प्रकार है—

१ **गोरस**—दूध, दही, घी आदि पदार्थ गोरस हैं।

२ **इक्षुरस**—गुड़, खांड, मिश्री आदि पदार्थ।

३ **फलरस**—दाख, बादाम, पिस्ता, आम, ककड़ी, मौसमी, अनार अंगूर, संतरे, केले आदि पदार्थ।

४ **धान्यरस**—तैल, चावलका मांड़, गेहूँ का सत, चने का सत आदि ये सब धान्य रस कहलाते है। जो पदार्थ जिसके साथ खाया जावे और स्वादिष्ट लगे उसको विकृति कहते है। अनुपवास वाले को निर्विकृति भोजन करना चाहिए और फिर एक ही स्थान मे बैठकर भोजन करना चाहिये। दुबारा पानी नही लेना एव रसो का त्याग करना चाहिए अथवा शक्ति के अनुकूल और भी कुछ त्याग करना जरूरी है। शक्ति के अनुकूल किया हुआ तपश्चरण कल्याणकारी अर्थात् पुण्यबंध का कारण तथा मोक्षमार्ग प्राप्त करा देने वाला हुआ करता है।

प्रोषधोपवास के दिन त्यागने योग्य कार्य

**पंचानां पापानामलंक्रियारंभगंधपुष्पानाम्।**
**स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्यात् ॥१०७॥**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

अर्थ—उपवास के दिन हिंसादि पांचों पापों का तथा शृंगार, आरम्भ, पुष्प और उपलक्षणसे रागोत्पादक स्त्रियों के गीत, नृत्यादिक, स्नान, अंजन, तम्बाखू आदि सूंघने के पदार्थों का तथा नाटक, सरकश वगैरह देखने का आदि शब्द से ऐसे और भी कई प्रकार के कार्यों का भी त्याग कर देना चाहिये, जिससे रागवृद्धि की सम्भावना पैदा न हो।

भावार्थ—भगवान् समन्तभद्र स्वामी ने इस श्लोक मे गंधपुष्पाना तथा स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे—इस प्रकार पद दिया है। इसका आशय ऐसा समझ मे आता है कि जब उपवास हो तब नाक से पुष्प तथा तम्बाकू नहीं सूंघना तथा आँख मे अजन भी नहीं लगाना, कारण कि नाक से पुष्प सूंघने से और आँख मे अजन लगाने से उपवास भ्रष्ट हो जाता है। अत आचार्य महाराज ने ऐसा लिख दिया है। फिर उपवास मे कुरला करना कहाँ तक संगत हो सकता है। उपवास मे कुल्ला करना उपवास का नाश करना है। विज्ञजन इस पर पूरा विचार करें।

पुष्प सूंघने और अंजन लगाने में विपरीतता नहीं होती तो आचार्य कदापि नहीं रोकते। इसलिए यह सिद्ध होता है कि जब नासिका से पुष्प सूंघना और आँखों में अंजन लगाना भी रोका जाता है तब मुँह मे दतोन करना या कुल्ला करना उपवास मे कैसे सगत हो सकता है। कई ग्रन्थों मे इस बात का निषेध मिलता है सो ही इस ग्रन्थ में आगे बतावेगे।

शास्त्रों में दतोन, कुरला करने का निषेध है सो यहाँ बतलाया जाता है—

इन्द्रनंदी भट्टारक संहिता में लिखा है—

**पव्वदिणेसुवपसुवि णदन्तकट्ठं ण आचमं तप्पं ।**
**पदाणं जणणस्साणं परिहरणं वत्थसएणोउ ॥१॥**

इस गाथा से यह स्पष्ट है कि उपवास या एकाशन मे दतोन या कुरला नहीं करना चाहिए।

त्रिवर्णाचार अध्याय २ श्लोक नं० ६८ में लिखा है—

**द्वितीया पंचमी चैव ह्यष्टम्येकादशी तथा ।**
**चतुर्दशी तथैतासु दन्तधावं च नाचरेत् ॥**

अर्थ—द्वितीया, पचमी, अष्टमी, ग्यारस और चतुर्दशी के दिन दतोन कुल्ला श्रावकों को नहीं करना चाहिए।

यशस्तिलकचम्पू पत्र ३७३ अध्याय ८ में लिखा है—

दन्तधावनशुद्धास्योमुखवासो चितानन: ।
असंजातान्यसंसर्ग: सुधीर्देवानुपचरेत् ॥

पहिले रत्नकरण्डश्रावकाचार का श्लोक ऊपर बता ही दिया गया आगे और देखिए—

**उपवासे तथा व्रतैः नकुर्याद्दन्तधावनं ।**
**दन्तानां काष्ठसयोगे, हन्ति स्वप्नकुलानि वै ॥**

इस श्लोक का भी वही अर्थ होता है।

वैष्णव सम्प्रदाय के सांख्य स्मृति ग्रन्थ में भी लिखा है—

**प्रतिपद्दशम्यष्टम्य मध्यन्हि नवमी तिथौ ।**
**संक्रांतास्त्वर्कवारे च न कुर्याद्दन्तधावनं ॥१॥**

**वनस्पतिगते सोमे न कुर्याद् दन्तधोवनं ।**

**चन्द्रमा भक्ति तस्येन पितृवंशस्यघातकं ॥२॥**

इन जैनतर ग्रन्थों में भी इन तिथियों को दन्त धोना तथा कुरला करना सर्वथा मना किया है, तो जैनधर्म तो सबसे पहिले त्याग ही है जीवन जिसका, इसको क्या कोई उपदेश देकर रास्ते पर लावेगा। यह तो पहिले ही सुधरा हुआ है। यहाँ पर उपवास व्रत में हरगिज भी दतोन कुरला नहीं करते और जो करते भी होंगे वे इन प्रमाणों से हरगिज भी नहीं करेंगे। कारण जैनी लोग आगम सेवी हैं न कि रूढ़िवादी। जैनी लोग परीक्षा प्रधानी महागुणग्राही होते है।

उपवास के दिन करने योग्य कार्य

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा तथा और भी अनेक ग्रन्थों में उत्तम उपवास सोलह प्रहर का, मध्यम उपवास चौदह प्रहर का, तथा जघन्य उपवास बारह प्रहर का माना गया है। इस मर्यादा से कम का नहीं माना है। हाँ बीमारी की अवस्था में अपवादमार्ग की अपेक्षा आठ प्रहर का लिया गया है। वह एकासन करके भी प्रोषध माना है।

प्रोषधोपवासी को इस प्रकार और भी करना चाहिए—

**पर्वपूर्वदिनस्यार्द्धे भुक्त्वाऽतिथ्यशितोत्तरम् ।**

**लात्वोपवासं यतिवद्विविक्तवसतिं श्रितः ॥३६॥**

**धर्मध्यानपरो नीत्वा दिनं कृत्वाऽपराह्णिकम् ।**

**नियेत्त्रियामां स्वाध्यायरतः प्रासुकसंस्तरे ॥३७॥**

ततःप्राभातिकं कुर्यात्तद्वद्यामान्दशोत्तरान् ।
नीत्वाऽतिथिं भोजयित्वा भुञ्जीतालौल्यतः सकृत् ॥३८॥
पूजयोपवसन्पूज्यान्भावमय्यैव पूजयेत् ।
प्रासुकद्रव्यमय्या वा रागाङ्गं दूरमुत्सृजेत् ॥३९॥

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—प्रोषधोपवास करने वाले श्रावकों को पर्व के पहिले दिन अर्थात् सप्तमी या त्रयोदशी के दिन मध्यान्ह काल अथवा उससे कुछ पहिले मुनि, आर्यिका, ऐलक क्षुल्लक आदि को भोजन देने के पश्चात् विधि के अनुसार स्वयं भोजन करना चाहिए। पश्चात् उपवास स्वीकार करना चाहिये, जैसा कि मुनिगण कहते हैं ॥२६॥ निद्यव्यापारादि का त्याग कर देना चाहिए। और कोलाहलरहित स्थान पर धर्म-ध्यान करना चाहिए। वह ध्यान (१ आज्ञा विचय, २ अपाय विचय, ३ विपाक विचय, ४ संस्थान विचय) में लीन रहे। ध्यान से छूटे तब स्वाध्याय करे अथवा अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करे। इस प्रकार दिन व रात्रि के छः प्रहर व्यतीत करे। बीचके कर्तव्य संध्या वन्दना आदि धर्म-ध्यान को न भूले ॥३७॥ पुनः अष्टमी व चतुर्दशी के प्रभात की क्रिया संध्या वंदना देवपूजन करनी चाहिए। इस तरह दिन रात्रि नवमी पूर्णिमा दिन भर में पौर्वाह्णिक, मध्यान्हिक, अपराह्णिक की सम्पूर्ण क्रियायें करनी चाहिये ॥३८॥ उपवास करते समय पंचपरमेष्ठी, शास्त्र व गुरुओं की भाव पूजा करनी चाहिए। अगर भाव पूजा न कर सके तो द्रव्यों से भी पूजा करनी चाहिए। उपवास के दिन प्रासुक ( अचित्त ) अक्षतादि द्रव्यों से ही पूजन करे ऐसा कई आचार्यों का मन्तव्य है। हाँ भगवान् की पूजन में सचित्त द्रव्य भी काम

में ले सकते हैं न कि अभिषेक व प्रतिमा जी के संयोग में। फिर प्रथम दिवस की तरह अतिथियों को प्रासुक द्रव्य का दान देकर आप भोजन करे, सो भी एक ही बार। दुबारा पानी भी न ले। तीन दिन तक ऐसा ही करे।

आज कल के अनेक व्रती पुरुष या स्त्रियां ऐसा कहने लग गये हैं कि जिनेन्द्र भगवान की पूजा करना हो तो दतोन कुरला करके ही करो। उपवास हो या एकासन, बिना दन्त धावन किये पूजा नहीं कर सकते। सो शास्त्रों को विशेष नहीं जानने वाले भोले पुरुष या स्त्रियें श्रावक लोग उनके कथन को सुन और पापयोग के डर से उपवास में या एकासन मे भी दातुन कुरला करने लग गये है सो यह विपरीत मार्ग है।

उपवास के दिन या एकासन के दिन कदापि दतोन कुरला नहीं करे। हाँ, स्नान करके भगवान की पूजन कर सकते है।

हाँ यह बात अवश्य है कि जिस गृहस्थ के उपवास एकासन न होवे वह दन्त धावन कुरला स्नानादि करके देव पूजा करे। अन्यथा एक बिन्दु भी जल मुंह में ले लेगे तो न तो उपवास रहेगा और न एकासन रहेगा। क्योंकि उपवास मे तो १६ या १४ या १२ प्रहर तक को चारों प्रकार आहार का त्याग कर चुके हो। तथा एकासन में एक बार जो कुछ लेना हो सो ले लेना चाहिये। अन्यथा भूखे भी रहे और पापबंध भी हुआ। क्योंकि प्रतिज्ञा थी उपवास या एकासन की और कुरला कर लिया तो आखड़ी से भ्रष्ट हुये सो

महान पाप। आगम की तो इसप्रकार की आज्ञा है कि जितनी शक्ति होवे उतना ही नियम लो।

द्यानतराय जी कहते है—

**कीजे शक्ति प्रमाण शक्ति बिना श्रद्धा धरे।**

जिस ो पालन की शक्ति न हो वह श्रद्धा में फरक न लावे।

उपवास मे दतोन कुरला करने की शास्त्रों की आज्ञा नहीं है ऐसे उपरोक्त प्रमाणों पर श्रद्धा करके पापों का नाश करना मनुष्य पर्याय का कर्तव्य है न कि सिद्धान्त की आज्ञा भग करके पाप बंध करना। इसी की परीक्षा करके श्रद्धान करो। ये ही सम्यक्दृष्टि का कर्तव्य हैं। अन्यथा मिथ्यादृष्टि हो जावोगे तो ससार में जन्म मरण के पात्र बनना पड़ेगा, जो मनुष्य का कर्तव्य नहीं। पापियों का क्या काम है यह न देखो तुमको स्वयं पाप से बचना चाहिये।

यशस्तिलकचम्पू ग्रन्थ मे कहा है कि शरीर की शुद्धि स्नान दन्तधावन कुरला आदि करके भगवान की पूजा करो, अन्यथा नहीं। सो यह कथन सामान्य गृहस्थों के लिये है न कि उपवास और एकासन वाले व्रतियों के लिये।

प्रोषधोपवास के पॉच अतिचार

**ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे।**
**यत्प्रोषधोपवासव्यतिलंघनपंचकं तदिदम् ॥११०॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—प्रोषधोपवास करने वाले श्रावक को इन पॉचों अतिचारों से बचना चाहिये। १ बिना देखे बिना सोधे कोई वस्तु ग्रहण करना व रखना। २ बिना देखे सोधे संस्थारा

बिछौने बिछाना। ३ बिना देखे सोधे मलमूत्र क्षेपण करना। ४ व्रत में अनादर करना या श्रद्धा नहीं रखना। ५ चित्त चंचल रखकर हलन चलन करना। इसप्रकार प्रोषधोपवास के पाँच अतिचार होते हैं।

१ **अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग**—इस भूमि मे जीव है या नहीं है, इसप्रकार नेत्रों से देखना प्रत्यवेक्षण है। कोमल उपकरण से भूमिका शोधना, बुहारना, मार्जन है। नेत्रों से देखे बिना व कोमल पिछिका से सोधन किये बिना भूमि पर मलमूत्रादि डाल देना ये सब अतिचार है।

२ **अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान**—बिना देखे सोधे जिनदेव की शास्त्र की गुरुओं की पूजन के द्रव्य, गंध, पुष्प, धूप, दीपादिक आदि उपकरणों को ग्रहण करना अथवा वस्त्र पात्र आदि को देखे सोधे बिना घसीट कर उठा लेना।

३ **अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण**—बिना देखे सोधे भूमि पर शयन आसन के लिये संथारा या वस्त्र को बिछाना और उठाना तीसरा अतिचार है।

४ **अनादर**—क्षुधातृषा की बाधा से आवश्यकीय धर्म क्रियाओं में अनादर रूप प्रवर्तन करना चौथा अति-चार है।

५ **स्मृत्यनुपस्थापन**—प्रोषधोपवास के दिन करने योग्य आवश्यकीय क्रियाओं को भूल जाना पाँचवाँ अति-चार है।

भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रत का स्वरूप

**भोगोऽयमियान्सेव्यःसमयमियन्तसदोपभोगोऽपि ।**
**इतिपरिमायानिच्छस्तावधिकौ तत्प्रमाव्रतंश्रयतु ॥१३॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—इस व्रत के दो भेद हैं १ निषेधमुख २ और विधि मुख। शिक्षाव्रती श्रावकों को इनसे भोगोपभोग शिक्षाव्रत को ग्रहण करना चाहिये।

**१ निषेध मुख**—मैं इस पदार्थ को इतने दिन तक सेवन नहीं करूंगा यह तो निषेधमुख है।

**२ विधिमुख**—इस पदार्थ को इतने दिन तक ही सेवन करूंगा यह विधिमुख है। तथा वस्त्र आभूषण आदि पदार्थों को इतने दिन तक सेवन नहीं करूंगा, अथवा इतने दिन तक इसप्रकार सेवन करूंगा। इसप्रकार परिमाण करके उससे अधिक भोगोपभोग की कभी भी इच्छा नहीं रखते हुये इस व्रत का पालन करना चाहिये।

भोग उपभोग, यम तथा नियम का लक्षण

**भोगः सेव्यः सकृदुपभोगस्तु पुनः पुनः स्रगम्बरवत् ।**
**तत्परिहारः परिमितकालो नियमो यमश्च कालान्तः।१४।**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—जो पदार्थ एक बार ही सेवन करने में आवे ऐसे गंध माला ताम्बूल भोग पदार्थ हैं। जो पदार्थ बार बार भोगा जावे ऐसे वस्त्र आभूषण, सेज, चौकी, पाटा आदि उपभोग कहलाते हैं।

उक्त पदार्थों का एक, दो दिन तथा सप्ताह, पक्ष, मास, चातुर्मास, वर्ष, दो वर्ष आदि नियमित काल ( समय ) के लिये त्याग करना वह नियम कहलाता है। तथा जो त्याग मरण पर्यन्त किया जावे उस त्याग को यम कहते हैं।

यम और नियम दोनों ही प्रकार की त्याग विधि जिनमत के अनुकूल होती है। जैसी शक्ति और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की योग्यता हो वैसा ही करना चाहिये।

भोगोपभोग के अन्तर्गत त्यागने योग्य

**अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि शृंगवेराणि ।**
**नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥८५॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—जिसमें फल थोड़ा और हिंसा अधिक हो, ऐसे मूली, गाजर, गीला अदरक नवनीत ( मक्खन ) नीम के फूल, केतकी आदि के फूलों का त्याग करना चाहिये।

**अनंतकायाः सर्वेऽपि सदाहेया दयापरैः ।**
**यदेकमपि तं हंतुं प्रवृत्तो हन्त्यनन्तकान् ॥१७॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

अर्थ—जिन पदार्थों में त्रसका घात अथवा बहुत स्थावरों की हिंसा हो, प्रमाद बढ़ाने वाला हो, अनिष्ट हो, अनुपसेव्य हो, उन सबको भोगोपभोग परिमाण व्रती त्याग दे, जिससे इष्टफल की प्राप्ति हो।

जो साग व फल भीतर से पोली हो, जिनमें बाहर से आने वाला जीव या उसमें पैदा होने वाला सम्मूर्च्छन जीव

अच्छी तरह रह सकता हो ऐसे कमल की नाल, केतकी के फूल, अर्जुन, अरणी, महुआ, बेल, गिलोय, मूली, गाजर, शकरकंद, लहसुन, प्याज, गीली अदरक व गीली हल्दी आदि पदार्थों मे बहुत जीवों का समुदाय रहता है। इनको काम मे लेने से फल तो अल्प होता है और हिंसा विशेष होती है। इसलिये इनका हमेशा को त्याग होना चाहिये।

बाजरे के सिट्टे, जुआरी के भुट्टे, पालक का साग, मूली के पत्तों का साग, लाल रंग का तरबूज (मतीरा), लूनिया की भाजी, सर्व प्रकार के पुष्प, बिना मर्यादा की वस्तु, जैनाचार्यों द्वारा बताई गई मर्यादा को नही जानने वाले के हाथ का पदार्थ (जैन हो तो भी) हलवाईकी मिठाई भक्षण योग्य नहीं है। वर्षा ऋतु में सर्व प्रकार के पत्र का साग अभक्ष है। गोबी फूलदार, गांठदार, पत्तेदार, पोदीना, सूखे कंदमूल, फनश, कटहल, खिरणी, गोंदी, गोंद, थूअर के पत्ते, शर्बत, अचार, आसव, मुरब्बा, हींग, हींगड़ा, सज्जी, पापड़खार, होटल मे जीमना, सोडावाटर पीना, लेमन, बिस्कुट, बर्फ इत्यादि कहाँ तक कहें। यह न समझना कि ये ही पदार्थ हैं, इन जैसे जो भी हों जैनियों के सब का ही त्याग होता है और होना ही चाहिये।

शूद्रों का स्पर्श किया हुआ भोजन, शूद्रों के घरों का दूध, दही, मट्ठा और पानी योग्य नहीं। बिना मर्यादाका पदार्थ कुलीन पुरुषों के घरका भी अभक्ष है।

जो पदार्थ नशा पैदा करने वाला है जैसे भंग, अफीम, गांजा, धतूरा, सिगरेट, तम्बाकू इनका खाना या इनका व्यापार भी नहीं करना चाहिए। गोमटसार जीवकांड में बतलाया है—

गूढ़ सिरसंधिपव्वं समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं ।
साहारणं शरीरं तव्विवरीयं च पत्तेयं ॥१८६॥

मूले कंदे छल्ली पवालसालदलकुसुमफलबीजे ।
समभंगे सदिणंता असमे सदि होन्ति पत्तेया: ॥१८७॥

कंदस्स व मूलस्स व सालाखंदस्स वावि बहुलतरी ।
छल्ली साणंतजिया पत्तेयजिया तु तणुकदरी ॥१८८॥

**अर्थ**—सप्रतिष्ठित प्रत्येक व अप्रतिष्ठित वनस्पति का लक्षण इस प्रकार से बतलाया है कि जिस वनस्पति की शिरा संधी पर्व अप्रगट हो जिसके तोड़ने से समान भाग होता हो दोनों टुकड़ों में तन्तु न लगा रहे, छेदन करने पर पुन: जिसकी वृद्धि हो जावे उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक जानो । इसे अनन्तकायिक भी कहते हैं ।

जिन वनस्पतियों के मूल, कंद, छाल, कोंपल, टहनी, पत्ते, फूल और फलों को (बीजों को) तोड़ने में असमान भाग हो उसको अप्रतिष्ठितप्रत्येक वनस्पति कहते हैं ।

जिस वनस्पति के कन्द, मूल, क्षुद्रशाखा या स्कन्ध की छाल मोटी हो उसको अनन्तजीव (सप्रतिष्ठित प्रत्येक) कहते हैं । खयाल कर आचरण में लाना धर्म का काम है ।

हरित वनस्पति किस हालत में अनन्तकायिक रहती है जो अभक्ष तथा किस हालत में श्रावकों के विचार कर ग्रहण करने योग्य होती है। हरित वनस्पति का यथाशक्ति त्याग अवश्य होना ही चाहिए । जो साधारण श्रावक, गृहस्थ या व्रती श्रावक अपनी जिव्हा इन्द्रिय को दमन करने के लिए या

भोगोपभोग परिमाण व्रत के अन्तगंत अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका, दशलक्षणपर्व में हरी वनस्पति नहीं खायेगे, ऐसी प्रतिज्ञा पालते थे, उसको आज इस परम्परागत सदाचार को कई धर्मात्मा कहलाने वाले व्यक्ति व्यर्थ या अनुचित कह कर शिथिल बनाने का प्रयत्न करने लग गये हैं। तथा अनेक सारहीन कुतर्कों से भोले भाई श्रावकों की ली हुई प्रतिज्ञा की हानि करा देते हैं। ऐसे कई व्यक्ति मौजूद हैं जिन्होंने पहिले पर्व दिवसों में आजन्म हरी नहीं खाने की प्रतिज्ञा ले रक्खी थी सो भी पर्व दिनों में सब तरह की हरी पकाकर या कच्ची भी खाने लग गये हैं और कहने लग गये हैं कि पहले हम इस हरितकाय में जीव समझते थे तथा आजकल के त्यागी व्रती लोग उनमें जीव नहीं बताते। हमे भी ऐसा श्रद्धान हो गया है। इसलिए अब पर्वों मे हरित छोड़ने की कोई जरूरत नहीं रही, ऐसा कहने लग गये व ऐसी उच्छृंखलता मचाने लग गये। यह कर्त्तव्य आजकल के त्यागी व्रतियों का ही समझा जावेगा। क्योंकि त्यागी लोग पर्वों मे हरी खाने लग गये।

हे बुद्धिमानो! आपको विचारना चाहिए कि क्या जैनियों के सिद्धान्त इतने कच्चे या ढीले ढाले है; कल तक तो सम्पूर्ण जैन समाज अष्टमी, चतुर्दशी को हरी त्याग मे पुण्य समझता था। आज यह मामूलीसी बात या फालतू त्याग नियम समझा जाता है, सो भी साधुओं के द्वारा। विचारो तो सही दूसरी समाज जैनियों के इस कृत्य को किस दृष्टि से देखेगी। इसका भी उन प्रतिज्ञा भग कराने वालोंने कभी विचार किया। जो जैन समाज इस प्रकार की प्रतिज्ञा से ओतप्रोत थी सो आज रहित हो गई। सागारधर्मामृत के सातवें अध्याय में बतलाया गया है—

पादेनापि स्पृशन्नर्थवशाद्योऽतिक्रतीयते ।
हरितान्याश्रितानन्तनिगोतानि स भोक्ष्यते ॥६॥

अर्थ—जो श्रावक प्रयोजन के वश से अपने पैर से भी हरी वस्तु को दाबने से अतिचार समझता था वह अनेक (अनंत) जीवों से भरी हुई हरी वनस्पति को कैसे खावेगा ? कदापि नहीं।

ऐसा ही तो आदिनाथपुराण में जब भरत जी ने ब्राह्मण वर्ण कीसृष्टि कायम की थी तब बतलाया था, सो देखिए आदिपुराण पर्व ३८—

हारतैरङ्कुरैः पुष्पैःफलैश्चाकीर्णमङ्गणम् ।
सम्प्रडचीकरत्तेषांपरीक्षायैस्ववेश्मनि ॥११॥

तेष्वव्रताविनासङ्गात् प्राविक्षन्नृपमंदिरम् ।
तानेकतः समुत्सार्यशेषानाव्हययत्प्रभुः ॥१२॥

ते तू स्वव्रतसिद्ध्यर्थं ईहमाना महान्वयाः ।
नैषुप्रवेशनंतावद्यावदार्द्रांकुराःपथि ॥१३॥

सधान्यैहरितैःकीर्णमनाक्रम्यनृपाङ्गणम् ।
निश्चक्रमुः कृपालुत्वात्केचित्सावद्यभीरवः ॥१४॥

कृतानुबन्धनाभूयस्चक्रिणः किंलतेऽन्तिकम् ।
प्रासुकेनपथाऽन्येनभेजुःक्रान्त्वा नृपाङ्गणम् ॥१५॥

प्रावकेन हेतुना यूयं नायाताः पुनरागताः ।
केनब्रूतेतिपृष्टास्तेप्रत्यभाषन्तचक्रिणम् ॥१६॥

प्रवालपत्रपुष्पादेःपर्वणि व्यपरोपणम् ।
न कल्पतेऽद्यतज्जानांजन्तुनां नोऽनभिद्रुहाम् ॥१७॥
सन्त्येवानन्तशोजीवा हरितेष्वंकुरादिषु ।
निगोताइतिसार्वज्ञं देवास्माभिः श्रुतं वचः ॥१८॥
तस्मान्नास्माभिराक्रान्तम्, अद्यत्वे त्वद्गृहाङ्गणम् ।
कृतोपहारमार्द्रार्द्रैः फलपुष्पांकुरादिभिः ॥१९॥
इतितद्वचनात्सर्वान्सोऽभिनन्द्यदृढव्रतान् ।
पूजयामास लक्ष्मीवान्दानमानादिसत्कृतैः ॥२०॥

**अर्थ**—इधर चक्रवर्ती ने इन सब की परीक्षा करने के लिए अपने घरके आंगण मे हरे २ अंकुर पुष्प और फल खूब भरवा दिए ॥११॥ उन लोगों मे जो अव्रती थे वे बिना किसी सोच विचार के राज मन्दिर मे घुस गए, राजा भरत ने उन्हे एक ओर हटा कर बाकी बचे हुए लोगों को बुलाया ॥१२॥ परन्तु बड़े २ कुल मे उत्पन्न हुए और अपने व्रत की सिद्धि के लिए चेष्टा करने वाले उन लोगो ने जब तक मार्ग मे हरे अंकुर है तब तक उसमे प्रवेश करने की इच्छा नहीं की ॥१३॥ पाप से डरने वाले कितने ही लोग दयालु होने के कारण हरे धान्यो से भरे हुए राजा के आंगण को उलंघन किए बिना ही वापिस लौटने लगे ॥१४॥ परन्तु जब चक्रवर्ती ने उनमे बहुत ही आग्रह किया तब वे दूसरे प्राशुक मार्ग से राजा के आंगण को लांघ कर उनके पास पहुँचे ॥१५॥ चक्रवर्ती ने पूछा आप लोग पहिले किस कारण से नहीं आये थे और अब किस कारण से आये है । तब उन्होंने नीचे लिखे अनुसार उत्तर दिया ॥१६॥

आज पर्व के दिन कोंपल, पत्ते तथा पुष्प आदि का विघात नहीं किया जाता और न जो अपना बिगाड़ करते हैं उन कोंपल आदि में उत्पन्न होने वाले जीवों का भी विनाश किया जाता है ॥१७॥ हे देव ! हरे अंकुर आदि में अनन्त निगोदिया जीव रहते हैं, ऐसे सर्वज्ञ देव के वचन हम लोगों ने सुने हैं ॥१८॥ इसलिए जिसमें गीले गीले फल पुष्प और अंकुर आदि से शोभा की गई है, ऐसा आपके घर का आंगन हम लोगों ने नहीं खूंदा है ॥१९॥ इस प्रकार उनके वचनों से प्रभावित हुए सम्पत्तिशाली राजा भरत ने व्रतों में दृढ़ रहने वाले उन सबकी प्रशंसा कर उन्हें दान सन्मान आदि से सत्कार कर सन्मानित किया ॥२०॥

तो यहाँ कहने का तात्पर्य यही रहा कि हरे फल पुष्प अकुरें जब तक सूखे नहीं गीले है तब तक उनमे जीव मौजूद हैं। इसलिए ही भोगोपभोग के १७ नियमों मे भी कथन है और यहाँ भी कहते हैं। देखो कहाँ तो महामना पं० आशाधर जी के हरीत्याग के समर्थन की ऐसी साक्षी और कहाँ आजकल के मुनिमहाराजों के द्वारा प्रतिज्ञा के भंग कराने का प्रयास। जो हरित भक्षी यह पूछते हैं कि शास्त्रों मे हरित में जीव कहाँ बतलाया है, उन पुरुषों को मालूम होना चाहिए कि सिर्फ यापनीय संघ के आचार्यों द्वारा ही हरित मे जीव नहीं माने है सो वह सब ही जैनाचार्यों द्वारा जैनाभासों की गिनती मे बतलाया है। ऐसा भट्टारक इन्द्रनन्दिकृत नीतिसार ग्रन्थ तथा दर्शनसार नामक ग्रन्थ मे स्पष्ट बतलाया है। बाकी सब जैनाचार्यों ने हरितकाय में जीव माना है। इस बात का खुलासा इस ग्रन्थ के भोजन की मर्यादा प्रकरण में अच्छी तरह बतला दिया है, सो वहाँ से अवलोकन कर लेना चाहिए।

इस भोगोपभोगपरिमाणव्रती को प्रातःकाल ही दिन भर में काम आने वाली वस्तुओं का परिसंख्यान कर लेना चाहिए। जैसा कि श्री सकलकीर्ति महाराज ने प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कहा है—

भोजनेषट्रसे पाने, कुंकुमादि विलेपने।
पुष्पताम्बूलगीतेषु, नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥१७॥
स्नानभूषणवस्त्रादौ, वहनेशयनासने।
सचित्तवस्तु संख्यादौ, प्रमाणं भजप्रत्यहं ॥१८॥

अर्थ—भोगोपभोग व्रत की प्रवृत्ति सत्तरह प्रकार से मानी है—

१ आज मैं इतने बार भोजन करूंगा।

२ आज मैं इतने रस ही ग्रहण करूंगा, जैसे १ घी, २ दूध, ३ दही, ४ लवण, ५ तेल, ६ मीठा ये भोजन के छः रस हैं। इन में से इतने लूंगा। एवं मौजूदा में भी त्याग करना!

३ पीने योग्य पदार्थ १ दूध, २ दही, शर्बत (नारंगी, मोसमी, अनार आदि) इतने लूंगा बाकी का त्याग।

४ चन्दन, कुंकुम, उबटना, तैलादिक हल्दी वगैरह का त्याग

५ पुष्प, इतर नाम रख लेना इतने सूंघूंगा बाकी का त्याग!

६ पान, सुपारी, इलायची, बादाम, पिस्तादिक लूंगा अन्य नहीं।

७ आज इतने गीत नाटक तमासा देखूंगा बाकी का त्याग।

८ आज इतने प्रकार के बाजे सुनूंगा या बजाऊँगा बाकी का त्याग।

९ आज ब्रह्मचर्य व्रत इस प्रकार से पालूंगा। इसमें दूषण नहीं लगाऊँगा।

१० आज इतने बार स्नान करूंगा अधिक नहीं।

११ आज इतने और इतमें दफे इतने प्रकार के आभूषण पहनूंगा।

१२ अमुक वस्त्र इतने बार पहनूंगा ज्यादा नहीं पहनूंगा।

१३ गाड़ी, घोड़े, ऊँट, तांगा बग्घी आदि सवारी में आज नहीं बैठूँगा।

१४ पलंग, गद्दा आदि इतने प्रकार का बिछाऊँगा अधिक नहीं।

१५ मेज, कुर्सी आसन इतने प्रकार के सिवाय का त्याग।

१६ शाक, तरकारी, फल इतने प्रकार के बाद का त्याग।

१७ अन्यान्य वस्तु इतने प्रकार की सेवन करूँगा इसके उपरान्त सब का त्याग। आज मैं इन २ दिशाओं मे या विदिशाओं में या ऊपर नीचे जाऊँगा बाकी नहीं। इस प्रकार के विचार को व्रती श्रावक सदा रखे। मर्यादा उपरान्त दूषण न लगावें। यदि लग गया हो तो प्रायश्चित करे, भूले नहीं।

भोगोपभोग परिमाणव्रत के ५ अतिचार

**सचित्तं तेन सम्बद्धं, सम्मिश्रं तेन भोजनम्।**

**दुष्पक्वमप्यभिषव, भुञ्जानोऽत्येतितद्व्रतम् ॥२०॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—१ सचित्त पदार्थों का भक्षण, २ सचित्त से सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों का खाना, ३ सचित्त से मिले हुए पदार्थों

का भक्षण, ४ कमती पके (अग्नि पर) व ज्यादा पक गये हों ऐसे पदार्थों का खाना, ५ अभिषव (गरिष्ठ) पदार्थों का खाना। ये व्रत के अतिचार है। इनका खुलासा इस प्रकार है—

१ **सचित्त**—जिन मे चेतना विद्यमान हैं ऐसी ककड़ी, खरबूजा सण तरकारी फल फूल इत्यादि हरित वस्तु को सचित्त कहते हैं। इसका नाम सब्जी, इसका अर्थ है कि जब तक यह नहीं सूखे तब तक इसमे जीव है अतएव पांचवीं प्रतिमा धारी इसको अग्नि पक्व किए बिना हरगिज भी काम में नहीं लेवे। इनको प्राशुक किये बिना कभी नहीं लेवे नहीं तो अति-चार होगा।

**प्रश्न**—सचित भक्षण अतिचार ही क्यो अनाचार क्यों नहीं कहा ?

**उत्तर**—पदार्थ को गृद्धता से भक्षण करना अनाचार है। सूक्ष्म रूप से दोष लगना अतिचार है। जैसे त्यागी हुई वस्तु मे भूल से एक बार प्रवृत्ति हो जावे तो अतिचार है। यदि समझ ले फिर प्रवृत्ति करे तो अनाचार होता है।

२ **सचित्त सम्बन्ध**—जिसके साथ चेतना वाले पदार्थ का सम्बन्ध हो ( संसर्ग हो ) जैसे गोंद, कई प्रकार की सब्जी पुष्प, फल, सचित्त जल आदि का अचित्त भोज पदार्थो से सम्बन्ध हो जाना ही अतिचार है सो व्रती भोजन नहीं करे।

३ **सचित सम्मिश्र**—जिस पदार्थ मे सचित्त वस्तु मिल गई हो और बहुत प्रयत्न करने पर भी वह उससे अलग नहीं हो सके ऐसा पदार्थ भूल से भक्षण मे आजावे तो अतिचार है। ऐसे पदार्थ को जान कर भोजन करे तो अनाचार है।

४ दुष्पक्व—जो पदार्थ अग्नि पर उसकी योग्यता से अधिक या कम पका हो वह दुष्पक्व है। जैसे एक पात्र चूल्हे पर पानी भर कर चढ़ाया उसमे चॉवल आदि सीजने को रख दिए हों, उनमे कितने तो पक गये कितने नहीं पके हों। ऐसे ही गेहूं, चना, मटर, जुवार, मक्की की घूघरी आदि ऐसे अध कच्चे वा अध पक्के पदार्थ को खाना अतिचार है। क्योंकि ऐसी वस्तु खाने से अनेक प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। सिद्धान्तों में वतलाया गया है कि जो पदार्थ जितने अंसों मे कच्चा रह गया वह योनि भूत है। जैसे गेहूँ, जो फलादि हो वह सचित्त रहने पर बीमारी का कारण और धर्म ध्यान मे बाधा कारक है। उससे इस भव मे वेदना तथा परभव के वास्ते कर्म बन्धन होता है। इसलिए ऐसे दुष्पक्व पदार्थों को छोड़ना ही श्रेय मार्ग है।

५ अभिषव—कांजी आदि पदार्थों का तथा खीर, हलवा, खोवा (मावा) आदि पौष्टिक पदार्थों को अभिषव कहते है। जब शारीरिक शक्ति न्यून हो जाती है तब ये पदार्थ काम नहीं देते, धर्मध्यान मे बाधा खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार के पदार्थों के सेवन की इच्छा का करना अतिचार है। इनसे व्रतियों को बचना चाहिए।

सचित्तादि अतिचारों को समझाने के वास्ते श्री चारित्रसार ग्रन्थ मे श्री चामुण्डराय जी ने युक्ति दी है कि इन सचित्तादि पदार्थों के खाने से अपना उपयोग सचित्त रूप हो जाता है। सचित्त रूप उपयोग करने से इन्द्रियों मे मद की प्रवृत्ति होती है। उससे शरीर में वात, पित्त प्रकोप आदि अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते है। उन रोगों को दूर करने के लिए औष-

स्त्रियों का सेवन करना पड़ता है। सचित्त वनस्पति का सेवन करना पड़ता है जिससे पाप सम्पादन होता है। इसलिए व्रती श्रावकों को ऐसे सचित्त अपथ्य आहार सदा के लिए त्याग कर देना चाहिए।

अतिथिसंविभाग नामा शिक्षाव्रत का स्वरूप

**व्रतमतिथिसंविभागः पात्रविशेषाय विधिविशेषेण।**
**द्रव्यविशेषवितरणं, दातृविशेषस्य फलविशेषाय ॥४१॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ५

**अर्थ**—जो दातार शास्त्रों में कही गई विशेष विधि के अनुसार पात्र विशेष के लिए आगे निर्दिष्ट किये गये विशेष द्रव्य देता है उसको अतिथि संविभाग व्रत कहते है।

अपने लिए तैयार किये निर्दोष भाजन में से जो कुछ अतिथियों के लिए दिया जाता है उसे भी अतिथिसंविभाग व्रत कहते है। प्रतिदिन पालन करने से इसकी व्रत संज्ञा कही है।

भक्ति सहित फल की इच्छा के बिना धर्मार्थ मुनि व आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका आदि श्रेष्ठ व्यक्तियों के लिए दान देना, उनके पदस्थ के योग्य द्रव्य या और भी दूसरे प्रकार से शास्त्रों का जीर्णोद्धार करना कराना या पुराने मन्दिर या पुरातन अतिशय सहित प्रतिमाओं का जीर्णोद्धार करना या आहार दान देकर दीन गरीब मनुष्य या पशु-पक्षियों का औषधि से, भोजन से आवास से, जीवों का उपकार करना या अभयदान देकर सुखी करना श्रावकों का प्रथम कर्त्तव्य है।

श्रावकों के दो मुख्य कर्तव्य—

**दाणं पूजा मुक्खं सावय धम्मेण सावया तेण विणा।**
**झाणज्झाणमुक्खं जइधम्मेतं विणा तहासोवि ॥११॥**

**जिणपूजा मुणिदाणं करेई जो देई सत्तिरूवेण।**
**सम्माइट्ठि सावय धम्मी सो होई मोक्ख मग्गक्खो ॥१३॥**

**अर्थ**—रयणसार ग्रन्थ मे भगवान कुन्दकुन्द स्वामी श्रावकों के कर्तव्य दो प्रकार बतलाते हैं। श्रावक धर्म जो अनादिकाल से वर्तमान है, उसमे दो वस्तु मुख्य है। एक तो मुनियों को आहार देना, दूसरे श्री जिनेन्द्र देवाधिदेव का प्रतिदिन पूजन करना इन दोनों कर्तव्यों से ही जैनधम है। इनके बिना जैन-धर्म नहीं।

मुनिधर्म उसे कहते है जहां पर ध्यान और अध्ययन मिले। तात्पर्य यह है कि मुनियों के लिये ध्यान अध्ययन मुख्य एवं आवश्यक हैं। इन दोनों मे ध्यान मुख्य और अध्ययन गौण है।

जो श्रावक प्रतिदिन भगवान् अर्हन्त का पूजन करता है और द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की योग्यता के अनुकूल मुनियों को आहार दान करता है वह नियम से सम्यग्दृष्टि श्रावक कहलाता है और वह श्रावक मोक्षमार्ग मे रत होता हुआ परम्परा से मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

गृहस्थ के लिए देव पूजन मुख्य है। और पूजन अर्हन्त देव की ही करनी चाहिए। राग-द्वेष रहित ही देव उपासनीय होता है। अन्य की उपासना देव मूढ़ता कहलाती है।

देवमूढ़ता का स्वरूप

**वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः।**
**देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥२३॥**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

**अर्थ**—आशा व तृष्णा के वशीभूत होकर किसी वर की प्राप्ति के निमित्त से राग और द्वेषादि दोषों से मलीन देवताओं की जो उपासना पूजा और भक्ति की जाती है उसे देवमूढ़ता कहते हैं।

सम्यकदृष्टि जीव श्री अर्हन्तदेव के सिवाय किसी अन्य देव की भक्ति पूजा त्रिकाल में भी नहीं करता। क्योंकि और देव सच्चादेव हो ही नहीं सकता।

शासन देवों की पूजा करने का निषेध

**ण वि कोइ देइ लच्छी ण कोइ जीवस्स कुणइ उवयारं।**
**उवयारं अवयारं कम्मपि सुहासुहं कुणइ॥ ३१९॥**
**भत्तियपुज्जमाणो वितरदेवो वि देइयदि लच्छी।**
**तो क धम्मं कीरइ एवं चित्तेइ सद्दिट्ठी॥ ३२०॥**
**जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।**
**णादं जिणेणणियदं जम्मं चा अहव मरणं वा॥३२१॥**
**तं तस्स तम्मिदेसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।**
**को सक्कइ चालेदुं इदो वा अहमिणंदोवा॥ ३२२॥**
**एवं जो णिच्छयदो जाणादि दव्वाणि सव्वपज्जाए।**
**सो सद्दिट्ठी सुद्धो जो संकदि सो हु कुदिट्ठी॥ ३२३॥**

स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा

**अर्थ**—यहां कोई पुरुष यह समझे कि जिनशासन देव रक्षक है यह उनकी भूल है। यहां भाग्य उदय ही प्रधान है।

कोई देव जिनशासन का जैसे क्षेत्रपाल, पद्मावती, यक्ष, यक्षणी, धरणेन्द्र, तथा देवियें, श्री ह्री, धृति, आदि रागी द्वेषी देवकहलाने वाले हैं। ये व्यन्तर भूत प्रेतादिक किसी को कुछ नहींदे सकते न किसी का कुछ बिगाड़ सकते, सब पाप और पुण्य शक्ति का समागम है।

अनेक भोले प्राणी समझते है कि अमुक देव हमको धन या सन्तान दे देगा या हमारे शांति पौष्टिक जीवन आदि कार्य को कर देगा या हमारे से रुष्ट हो जाने पर हमको दरिद्री या संतान हीन बना देगा। भगवान की वाणी है यदि पुण्य कर्म का उदय है तो संसार मे कोई किसीका कुछ नहीं कर सकता। यह सब कर सकते है यह समझना भूल है। जो कर्म पूर्व मे बंध चुके है उनके उदय के अनुसार फल भोगना पड़ेगा। यही दृढ़ सिद्धान्त है। इस पर अटल विश्वास रखो।

सम्यग्दृष्टि जीव दान करते हैं और उससे ही भविष्य में प्राप्ति की आशा करते हैं। वे जानते है कि जो पूर्व में हमने दान दिया है उसका फल अब हम भोग रहे है और अब जो कुछ दान करेंगे एवं पुण्य करेंगे उसका फल आगे भोगेंगे। व्यन्तर आदि देव ही सन्तान धन आदि देने की सामर्थ्य रखते होते तो फिर संसार में दान पुण्य की कोई जरूरत नहीं होती। इससे यही निस्कर्ष निकलता है कि भाग्य उदय ही सब कार्य करता है। बिना भाग्योदय के कुछ नहीं होता।

**जिस जीव का जिस देश में, जिस काल में, जिस प्रकार जन्म, मरण, सुख, दुःख, रोग, योग, वियोग, ताप, आक्रन्दन आदि होना है, उसही विधान से अवश्य होगा, टल नहीं**

सकता। व्यन्तर विचारे क्या कर सकते हैं, उनकी शक्ति कुछ नहीं कर सकती।

जैसा भाग्य में सर्वज्ञ के ज्ञान मे प्रतीत हुआ है वैसा ही होगा, उसको मेटने को इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती तथा तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान भी समर्थ नहीं हो सकते और लोगों की तो बात ही क्या है।

उल्लिखित प्रकार निश्चय से जो सर्व द्रव्य—जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल इनको तथा इनकी पर्यायों को सर्वज्ञ के आगम के अनुसार जानता है, तथा श्रद्धान करता है सो सम्यग्दृष्टि है।

जो भगवान के वचनों में सन्देह करता है और अर्हन्तदेव को छोड़कर जो कुदेव रागी द्वेषियों की पूजा करता है या भक्ति करता है वह नियम से मिथ्यादृष्टि है। ऐसा जैनाचार्यों का मन्तव्य है। रामचन्द्र जी के दृष्टान्त से कर्मों की प्रधानता बतलाते हैं—

**कर्मणो हि प्रधानत्वं किं कुर्वन्ति शुभाः ग्रहाः।**
**विशिष्टदत्तलग्नश्च रामः किं भ्रमते वनम् ॥१॥**

अर्थ—वशिष्ट जी एक अच्छे ज्योतिषी और योगी थे। उन्होंने दशरथ जी के कहने के अनुसार रामचन्द्र जी के लिये बड़े अच्छे ग्रह देखकर राजशासन करने के लिये मुहूर्त निकाला था। किन्तु वे शुभ ग्रह कुछ भी नहीं कर सके। भाग्योदय आकर अड़ गया। उनको बनोवास लेकर वन में जाना पड़ा। घर पर भी बिना राज्य नहीं रह सके। तो देखो, संसार में कर्म ही प्रधान माना गया है।

देखिये अभिमन्यु की क्या व्यवस्था हुई—

**मातुलो यश्चः कृष्णस्य, धनंजयश्चपिता ।**
**अभिमन्युगतः प्राणाः कर्मणो गहनागतिः ॥ १ ॥**

**अर्थ**—जिस जीव का मामा तो कृष्ण नारायण, और पिता धनञ्जय ( कहिये अर्जुन ) ऐसा अभिमन्यु भी प्राण रहित हो गया। वहां पर कृष्ण जी को तो संसार का कर्ता धर्ता मानते हैं फिर अपने भानजे को क्यों नहीं बचा सके। इससे यही बात निश्चय होती है कि संसार के देव दानव कुछ नहीं कर सकते जो कुछ होना हो सो ही होता है। कर्मों के आगे सिवाय शुद्ध आत्मा के और किसी की कुछ नहीं चलती अतएव शुद्धात्मा की उपासना करो।

एक और भी उदाहरण देखिये, जब सुभौम चक्रवर्ति के पुन्य का उदय था, उस समय उन्हों के पास नव निधि और चवदह रत्न थे जिनके कि प्रत्येक की एक २ हजार देव सेवा करते थे यानि रक्षक थे। अर्थात् २३००० देव सदा आज्ञाकारी रूप मे सेवा करते थे। इसके अतिरिक्त पाच तो म्लेच्छ खड की विभूति तथा एक आर्य खंड की सम्पत्ति, इस प्रकार छह खड की तमाम विभूति का स्वामित्व, जिनकी बड़े बड़े मुकुटबद्ध राजा और मडलेश्वर व म्लेच्छ राजा सेवा करते थे। परन्तु जब पाप का उदय आया तब एक क्षुद्र व्यन्तरदेव ने जो पूर्व जन्म का वैरी था उपद्रव किया तब सब देव राजा, सम्पत्ति दब गई, कोई काम मे नहीं आये, अतः मालूम हुआ कि पाप के उदय के कारण कोई बल नहीं चल सक्ता, किसी ने भी आकर रक्षा नहीं की। जब पुण्य का उदय था तब वह व्यन्तर कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सका। जब पाप का

उदय आया, सब सम्पत्ति नष्ट हो गई और बुद्धि भी इतनी भ्रष्ट हो गई कि नरक में जाना पड़ा।

तात्पर्य यह रहा कि संसार दशा में पुण्य ही प्रधान है, वह ही रक्षा कर सकता है, उसी का संचय करना चाहिये। इसके अनेक उदाहरण भी मौजूद हे।

कर्म उदय साधु एवं तीर्थंकरों को भी नहीं छोड़ता, मुनियों के रागद्वेष नहीं होता, चतुर निकाय के देव उनकी पूजा और भक्ति किया करते हैं। परन्तु जब पाप का उदय आता है, तब उस पाप के उदय को कोई भी टाल नहीं सकता।

एक समय राजा दण्डक ने अभिनन्दन आदि ५०० मुनियों को घाणी में पेल दिया, देव कुछ न कर सके, उन देवों का अवधिज्ञान कहां चला गया था जो कुछ न कर सके।

हस्तिनापुर मे अकम्पनाचार्यादि ७०० मुनियों पर घोर उपसर्ग हुआ तब सभी देवता कहां सो गये थे? जो कुछ न कर सके।

देखो भगवान ऋषभदेव को १२ मास तक आहार नहीं मिला, उस समय देव कुछ नहीं कर सके। क्योंकि कर्मों का ऐसा ही उदय था। उन्होंने पूर्व में एक मुहूर्त पशुओं के मुंह पर छींके लगवाये थे उसका फल उनको आहार का अन्तराय हुआ, भगवान ने चैत्र बदी ६ को दीक्षा ली थी और वैसाख सुदी ३ को आहार हुआ था, इस ही निमित्त से इसका नाम अक्षय तृतिया पड़ा है। देखो भगवान पार्श्वनाथ स्वामी ध्याना-रूढ़ थे और कमठ के जीव ने भगवान पर उपसर्ग किया तब चतुरनिकाय के देव कहां जाकर सो गये थे। उनके ऊपर उस व्यन्तर ने कई प्रकार के उपसर्ग किये, यानि खोटी २ जैसे खून

की, हड्डी की, पत्थरों की, धूलि की वर्षा बरसाई। जब असाता का उदय हटा और साता का उदय आया तब धरणेन्द्र और पद्मावती आये इनका आना हुआ और भगवान को केवलज्ञान प्राप्ति का समय आ गया। कहने का तात्पर्य यही है कि पुण्य का सम्पादन करो। इस प्रकार के कर्मों के उदय को ये रागी देव कैसे टाल सकते है ? इस आख्यान से उपदेश लेना चाहिये कि देव पुरातन कर्म के उदय को नहीं टाल सकते, जीव को अपने किये हुए पूर्व कर्मानुसार सुख व दुख अवश्य भोगना पड़ेगा, इसलिये पुन्य का सचय करो। संसार अवस्था में ये ही कर्तव्य श्रेयस्कर माना गया है।

भगवान समन्तभद्र स्वामी ने विभूति एवं प्रवृत्ति मार्ग प्रवर्तक की आप्तता एवं सर्वज्ञता तथा उसका कल्याणकारी देवत्व स्वीकार नहीं किया, उन्होंने वीतरागता एवं दोषों तथा कर्मों के क्षयकारकता से देवत्व स्वीकार किया है।

दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथास्वहेतुभ्योः वहिरन्तर्मलक्षयः ॥१॥

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाःप्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥२॥

अर्थ—जिसके दोषों की (रागद्वेष को) और आवरण की निःशेष हानि हो गई हो, तथा ज्ञानावरणादिक कर्म का सर्वथा निःशेष होगया हो वह ही आप्त, सर्वज्ञ, सच्चा देव हो सकता है, उसी पुरुष के सूक्ष्म परमाणु आदि अन्तरित एवं दूरार्थ मेरु पर्वत इत्यादि का प्रत्यक्षपन सम्भव हो सकता है। अतः वह ही पूज्य एवं वंदनीय आप्त तथा सर्वज्ञ

है, अन्य प्रकार सर्वज्ञ का दावा नहीं रख सकता। इससे तात्पर्य यह निकला कि अन्य कुदेव तथा शासनदेव रागद्वेष दोषों से भरपूर हैं, अतः सम्यग्दृष्टि से वंदनीय नहीं हैं। अरहंतदेव को छोड़कर अन्य देवों की उपासना करना मिथ्यात्व है। संसार में इस जीव का मिथ्यात्व के समान और कोई अपकार करने वाला पदार्थ है ही नहीं।

**न सम्यक्त्वसमंकिञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।**
**श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभ्रताम् ॥३४॥**

रत्नकरडश्रावकाचार

अर्थ—संसार में इस जीव का सम्यक्त्व के समान तो कोई उपकारी नहीं और मिथ्यात्व के समान कोई अपकारी नहीं, ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है।

## समर्थक ग्रन्थों से शासन देवों की अप्रमाणता

जिन ग्रन्थों में शासन देवों की पूजन का विधान मिलता है ये सब भट्टारकादि प्रणीत ग्रन्थ हैं, इस कारण उनसे बचना चाहिये। आर्ष प्रणीत ग्रन्थों में न तो शासन देवताओं की पूजन का विधान है और न ही हो सकता है क्योंकि जैनधर्म मे देव के विशेषण के साथ वीतरागता लगी हुई है। शासन देव वीतराग नहीं होते तो उनकी पूजन का विधान आर्ष ग्रन्थों में कैसे सम्भव हो सकता है।

आत्मा का उपकार सदा वीतरागी से ही हुआ है और वीतरागी से ही होगा। कभी रागी द्वेषी आत्मोपकारक न हुआ है और न होगा। इस कारण सदा वीतराग अरहन्त परमात्मा

का ही पूजन करो। रागीद्वेषी शासन देव या कुदेवों को न पूजो।

स्वामी समन्तभद्र रत्नकरंडश्रावकाचार में बताते हैं—

**भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम् ।**
**प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः ॥३०॥**

**अर्थ**—सम्यग्दृष्टि जीव भय, आशा, स्नेह या लोभ के वश होकर खोटे देव, खोटे शास्त्र या खोटे गुरुओं की उपासना, प्रणाम एवं विनय न करे।

इसी प्रकार पंडित आशाधर जी ने अनगारधर्मामृत में अध्याय ८ श्लोक नं० ५२ की टीका में इसप्रकार लिखा है—

"कुदेवा रुद्रादयः शासन देवतादयश्च" तथा आगे और लिखा है। "पितरौ गुरू राजापि कुलिंगिनः कुदेवाः"

इसका खुलासा स्वयं इसप्रकार किया है—

"माताच, पिताच पितरौ, गुरुश्च, गुरू, दीक्षागुरुः शिक्षा-गुरुश्च, राजापि किं, पुनरमात्यादि, रित्यपि शब्दार्थः। कुलिंगिनस्तापसादयः, पार्श्वस्थादयश्च, कुदेवाः रुद्रादयः शासनदेवतादयश्च।"

पंडित आशाधर जी की टीका की पंक्तियों से स्पष्ट जाहिर है कि जिनको आज शासन देवताओं के नाम से पुकारा जाता है वे सब क्षेत्रपाल पद्मावती धरणेन्द्र आदि सम्यग्दृष्टि श्रावक से पूजनीय नहीं है क्योंकि वे प्राणी रागीद्वेषी और कौतुकी है।

**प्रश्न**—जब कि सिद्धान्तों में शासन देवताओं को पूज्य नहीं माना गया है तो फिर जैन मंदिरों में शासन देवताओं की मूर्तियाँ क्यों? क्षेत्रपाल पद्मावती आदि जैन

शास्त्रानुकूल अपूज्य हैं तो इनकी मंदिरो में स्थापना क्यों ? इसका स्पष्टीकरण कीजिये।

**उत्तर**—जिस समय इतरधर्म का जोर था, उस समय लोगों से रक्षा करने के हेतु भट्टारकों ने क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि की मूर्तियाँ विराजमान कर मंदिरों की रक्षा की थी। वह समय वैसा ही था। इसके पश्चात् कालान्तर मे वह मार्ग चल पड़ा और भट्टारकों को पक्षपात होगया कि यह हमारे विराजमान किये हुए हैं कैसे कोई उठा सकता है। अत. यह परिपाटी बनी रही। शुद्धाम्नायी लोगों ने तो अपने मंदिरों में इनकी स्थपना भी नहीं होने दी।

बृहद्द्रव्यसंग्रह में शासन देवता की असमर्थता का उदाहरण बतलाते हैं—

**"रागद्वेषोपहतार्तरौद्रपरिणतक्षेत्रपालचण्डकादिमिथ्या-देवानां यदाराधनं करोति जीवस्तत् देवतामूढत्वं भण्यते। न च ते देवाः किमपि फलंप्रयच्छन्ति कथमितिचेत्, रावणेन रामस्वामिलक्ष्मीधरविनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता। कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थं कात्यायनीविद्या साधिता। कंसेन च नारायणविनाशार्थं बह्वयोऽपिविद्या समाराधिताः ताभिःकृतं न किमपि रामस्वामिपाण्डवनारायणानाम्। तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता नानुकूलितास्तथापि निर्मल-सम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वपुण्येन सर्वनिर्विघ्नतामेति" ॥**

अर्थ—जो राग तथा द्वेष से युक्त और आर्त तथा रौद्र ध्यान रूप परिणामों के धारक क्षेत्रपाल चण्डिका आदि मिथ्यादृष्टि देवों का आराधन करता है उसको देवमूढ़ता कहते हैं। और क्षेत्रपाल चण्डिका आदि कुदेव कुछ भी फल देने में समर्थ नहीं होते।

क्योंकि रावण ने श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के विनाश के लिये बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी। कौरवों ने पाण्डवों का मूल से नाश करने के लिये कात्यायनी विद्या सिद्ध की थी तथा कंस ने नारायण के लिये बहुतसी विद्याओं का आराधन किया था। परन्तु उन सब विद्याओं ने रामचन्द्र पाण्डव एवं श्रीकृष्णका कुछ भी अनर्थ नहीं किया। इसके विपरीत रामचन्द्र जी ने, पाण्डवों ने व नारायण ने इन मिथ्यादृष्टि देवों की आराधना नहीं की किन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य एवं निर्मल सम्यक्दर्शन के प्रभाव से सब विघ्न दूर हो गये।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है कि क्षेत्रपाल पद्मावती कुछ नहीं कर सकते।

**जइ देवो वि य रक्खइ मंतो तंतो य खेत्तपालो य।**
**मियमाणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति ॥**

अर्थ—यदि कदाचित् मरते हुए मनुष्यों की क्षेत्रपालादि देव मंत्र से या तंत्र से या किसी प्रकार की विद्या से रक्षा करने में समर्थ होते तो आज ही लोक ( संसार ) अजर और अमर ( अक्षय ) हो जाता। किन्तु यह कब सम्भव होसकता है क्योंकि असंभव बात भी कभी संभव हो सकती है ? कदापि काल न हुई और न होगी। ये सर्वज्ञ वाक्य हैं।

शासन देवों की पूजा मिथ्यात्व है

**"एवं पेच्छंतो वि हु गहभूय पिसाययोगिनीक्खं।**
**सरणं मण्णई मूढो सुगाढ मिच्छत्तभावादो ॥"**

**अर्थ**—इस तरह संपूर्ण संसार को शरण रहित देखता हुआ भी यह मूर्ख आत्मा ( प्राणी ) ग्रह, भूत, पिशाच, यक्षादि, देवों की शरण की कल्पना करता है। इसको प्रगाढ़ मिथ्यात्व के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। हायरे, हाय मिथ्यात्व ! तू क्या नहीं कराता।

भगवान की पूजन का महत्व—

**विघ्नौघाः प्रलयं यांति शाकिनीभूतपन्नगाः।**
**विषं निर्विषतां याति पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥**

**अर्थ**—भगवान जिनेश्वरदेव के पूजने पर विघ्न समूह एवं शाकिनी, भूत, तथा सर्प, सम्बन्धी उपद्रव दूर हो जाते है और विष भी निर्विषता को प्राप्त हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि शाकिनी, भूत आदि को उपद्रव कारक कहते है। परन्तु श्री जिनेश्वर की पूजा का इतना जबर्दस्त महत्व है कि भूत, प्रेत्यादि के उपद्रव क्षण भर मे नष्ट हो जाते हैं।

यक्षादिक की उपासना अरहन्तदेव की उपासना से प्रतिकूल है। अतः हेय और त्याज्य है। इसप्रकार के पद से यह बात पुष्ट होगई।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है—

**दोससहियं पि देवं जीवहिंसाइ संजुदं धम्मं।**
**गंथासक्तं च गुरु जो मण्णदि सो हु कुदिट्ठी ॥३१८॥**

अर्थ—जो जीव दोष सहित देव को, हिंसा सहित धर्म को और परिग्रहासक्त लोभी गुरु को पूजता है ( मानता है ) वह नियमकर मिथ्यादृष्टि है।

यशस्तिलकचम्पू में आचार्य सोमदेव कहते हैं—

**देवं जगत्त्रयीनेत्रं, व्यन्तराद्यश्च देवताः।**
**समं पूजाविधानेषु, पश्यन्दूरमधः व्रजेत् ॥**
**ताः शासनाधिरक्षार्थं, कल्पिताः परमागमे।**
**यतो यज्ञांशदानेन, माननीयाः सुदृष्टिभिः ॥**

अध्याय ८ पा० ३६७

अर्थ—जो पूजनादि विधान में तीन जगत के नेत्ररूपी श्री अरहन्तदेव को और व्यंतरादि देवताओं को समान समझता है वह नरकगामी जीव है।

शास्त्रों में ये व्यन्तरादिदेव केवल शासन की सेवा व रक्षा के लिये कल्पित किये गये थे। अतः इनको यज्ञभाग मात्र अवश्य प्रदान किया जाता है क्योंकि कार्य करते हैं।

सारचतुर्विंशतिका के सम्यक्त्व प्रकरण में भी यक्षादिकों को मानना देवमूढ़ता में बतलाया है

आदिनाथपुराण के २२ वे पर्व के २७६ वे श्लोक में लिखा है—

**गदादिपाणयस्तेषु गोपरेष्वभवन्सुराः।**
**क्रमात्शालत्रयेद्धाः स्था भौमभावनकल्पजाः ॥**

अर्थ—तीनों कोटनि के दरवाजेनि के विषे अनुक्रम से

**अर्थ**—तिसके पश्चात जगत में पूज्य ऐसे भगवान के माता पिता जे है तिन्हे सौधर्मेन्द्र विचित्र आभूषणनिकरि मालानिकरि वस्त्रनिकरि महान अर्घनिकरि पूजता भया।

**प्रश्न**—भगवान के माता पिता नमस्कार नहीं करते तो और लोग तो नमस्कार करते होंगे? जैसे उनके ही कुटुम्बी मनुष्य नगरवासी आदि।

**उत्तर**—भगवान के पांचों ही कल्याणक विषें सौधर्मेन्द्र आदि चारों निकाय के देवों के आने का वर्णन तो शास्त्रों में मिलता है। किन्तु मनुष्यों की तरफ से देवों को नमस्कार करना कहीं नहीं लिखा। समोशरण में जब भरत चक्रवर्ती गये तब धर्म चक्र एवं ध्वजादिक की पूजन करते हुए स्वयंभू भगवान के पास जाकर नमस्कार किया। यहाँ पर द्वादश सभा एवं सौधर्मादि देवों को नमस्कार नहीं लिखा। एवं जब तक भगवान ने दीक्षा ग्रहण नहीं की उसके प्रथम सौधर्मेन्द्र नित्यप्रति भोग सामग्री लेकर भगवान के पिता के घर पर आता था। वहाँ पर भी देवों को मनुष्यों के द्वारा वंदना नमस्कार करना नहीं लिखा मिलता है। पुर, नगर, ग्राम, देश, आदिका, विभाग तो लिखा पाया जाता है किन्तु मनुष्य देवों को नमस्कार करते है ऐसा विधान कहीं देखने मे नहीं आता। इसलिये सम्यग्दृष्टि को वीतरागदेव के सिवाय अन्य देवादिकों को नमस्कार नहीं करना चाहिये यही सिद्धान्त की परिपाटी यानि आज्ञा है।

नेमिचन्द्र प्रतिष्ठा पाठ में भी वीतरागदेव के सिवाय अन्य देवादिकों को नमस्कार करना देवमूढ़ता कहा है। महापुराण मे बतलाया है कि—

व्यन्तर, भवनवासी, कल्पवासी देव गदादि शस्त्र है हाथ विषें जिनके ऐसे द्वारपाल दरवाजें पर खड़े रहते हैं।

**भावार्थ**—इत्यादिक प्रमाणों से मालूम होता है कि व्यन्तरादिकों का अधिकार द्वारपालनि में भी बाह्य कोटिनि में है। सो फिर भगवान के निकट कैसे सम्भव हो सकता है, ये देव दूर ही रहते हैं। इनका इतना ही अधिकार है।

**प्रश्न**—भगवान के समोशरण के द्वार पर जो देवलोग द्वारपाल रहते हैं, उनको भी नमस्कार करना चाहिये। अगर नमस्कार नहीं करेंगे तो वे नाराज हो जायेंगे और समोशरण मे नहीं जाने देंगे तो फिर भगवान के दर्शन से वंचित रहना पड़ेगा।

**उत्तर**—आदिपुराण अध्याय २२ में लिखा है कि देवता लोग मनुष्यों को नमस्कार करते हैं।

**ज्ञात्वा तदा स्वचिन्हेनसर्वेऽप्यगुः सुरेश्वराः।**
**पुरीं प्रदक्षिणीकृत्य तद्गुरुं च ववन्दिरे॥१६६॥**

**अर्थ**—देखो भगवान के गर्भावतार के समय पर सब ही सुरेश्वर अपने चिन्हनिकर भगवान के गर्भ कल्याणक को जान आवते भये और पुरी की प्रदक्षिणा देयकर भगवान के माता पितानि को वंदते भये। आगे फिर आदिपुराण मे लिखा है—

**ततस्तौ जगतां पूज्यौ पूजयामास वासवः।**
**विचित्रैर्भूषणैः स्रग्भिरंशुकैश्च महार्घकैः॥१।१४**

जब राजा भरत समोशरण में गया तब देवों की तरफ से सन्मान किया गया किन्तु भरत ने नमस्कार नहीं किया।

**ततो दौवारिकैर्देवैः संभ्राम्यद्भिः प्रवेशतः।**
**श्रीमण्डपस्य वैदग्धीं सोऽपश्यत्स्वर्गजित्वरीम् ॥१८॥**

**अर्थ**—आदर सत्कार करने वाले दरवाजे पर खड़े हुए ऐसे द्वारपालों ने राजा भरत को आदर से प्रवेश कराया। अगर देवों के नमस्कार का विधान होता तो वहां पर भी देवों को नमस्कार करने का विधान अवश्य मिलता। किन्तु देवता आदर सत्कार पूर्वक मनुष्यों को समोशरण मे प्रवेश कराते है, ऐसा विधान मिलता है।

खयाल कीजिये मनुष्य पर्याय विशेष आदरणीय हैं और इसी में ही वीतरागता की पूर्ति होती है। अतः इसी ही मे वीतरागत्व और संयम गुण से पूजनीयता सर्व प्रथम है। ऐसा जानना चाहिये।

मनुष्यों द्वारा देवों के नमस्कार का विधान न मिलकर उससे प्रतिकूल देवों के द्वारा मनुष्यों के आदर का विधान मिलता है। देखो देवों द्वारा भरतचक्रवर्ती का सत्कार हुआ।

**निर्देशैरुचितैश्चास्मान् संभावयितुमर्हसि।**
**धृतिलाभादपि प्रायस्तल्लाभः किंकरैर्मतः ॥ १०१ ॥**

**मानयन्निति तद्वाक्यं स तानमरसत्तमान्।**
**व्यसर्जयत्स्वसात्कृत्य यथास्वं कृतमान्सान् ॥ १०२ ॥**

आदिपुराण पर्व ३२

अर्थ—हे देव ! (भरत चक्रवर्तिन्) उचित आज्ञा के द्वारा हमसे आप सत्कार के योग्य हैं। क्योंकि सेवक लोग प्रायः उपजीविका की प्राप्ति होने से स्वामी की आज्ञा का बहुत सन्मान करते हैं ॥ १०१ ॥

इस प्रकार के उस देव के वाक्यों को सत्कारित करते हुये राजा भरत ने यथा योग्य उस मागध देव को अपना दास बना कर विदा किया ॥ १०२ ॥

आगे समुद्र मे रहने वाला देव विनती करता है।

पुरोधाय शरं रत्नपटले सुनिवेशितं।
मागधः प्रभुमानसीदार्यं स्वीकुरु मामिति ॥१५६॥
चक्रोत्पत्तिक्षणे भद्रयन्नार्य मोऽनभिरामकाः।
महान्तमपराधं नस्तं क्षमास्वार्थितोमुहुः ॥१६०॥
युष्मत्पादरजः स्पर्शाद्धाधिरेव न केवलं।
तावयमपि श्रीमंस्त्वत्पादांबुजसेवया ॥ १६१ ॥

आदिपुराण पर्व २०

अर्थ—बाणों से रत्न के भरे हुए पिटारे को राजा भरत के सामने रखकर मागधदेव ने राजा भरत को नमस्कार किया और विनती की कि हे प्रभो ! मैं उपस्थित हूं। अब आप मुझे अपना ही समझिये। हे स्वामिन् ! हम अज्ञानी लोग हैं, हमे चाहिये था कि चक्र उत्पन्न होने के समय ही उपस्थित होते। किन्तु नहीं हुए, यह हमारा अपराध हुआ।

हे प्रभो ! हम बार २ प्रार्थना करते हैं कि हमारे अपराध क्षमा करें। हे ऐश्वर्यशालिन् ! आपके चरणों की धूलि का

स्पर्श करने से यह केवल समुद्र ही पवित्र नहीं हो गया है, किन्तु आप लोगों की चरण सेवा करने से हम लोग भी पवित्र होगये हैं। आगे इसी की पुष्टि वास्ते बतलाते है—

तत्रावासितसाधनो निधिपतिर्गत्वारथेनाम्बुधिं ।
जैत्रास्त्रप्रतिनिर्जितामरसभस्तं व्यन्तराधीश्वरं ॥
जित्वा मागधवत्क्षणात्वरतनुं तत्साह्वमंभोनिधेः ।
द्वीपमृशश्वदलंचकार यशसा कल्पान्तरस्थायिना ॥१६६॥
लेभेऽभेद्यमुरश्छदं वरतनोर्ग्रैवेयकं च स्फुरत् ।
चूड़ारत्नमुदंशुदिव्यकटकान् सूत्रं च रत्नोज्ज्वलं ॥
सद्रत्नैरिति पूजितः स भगवान् श्री वैजयन्तार्णव ।
द्वारेण प्रतिसन्निवृत्य कटकं प्राविक्षदुत्तोरणं ॥१६७॥

आदिपुराण पर्व २९

अर्थ—जिसने अपनी सब सेना को किनारे पर छोड़ दिया है और विजय करने वाले शस्त्रों से मागधदेव की सभा जिसने जीतली है, ऐसे उस निधियों के स्वामी भरत ने रथ मे बैठ कर समुद्र में जाकर व्यन्तरों के स्वामी बरतनुदेव को भी मागध देव के समान जीता और उस वरतनु नाम समुद्र के द्वीप को कल्पान्त काल तक टिकने वाले यश से सदा के लिए सुशोभित किया॥ १६६॥

उस देव ने राजा भरत को कभी नहीं टूटने वाला कवच भेट में दिया। एवं देदीप्यमान हार, प्रकाशमान चूड़ारत्न, दिव्य कड़े और रत्नों से प्रकाशमान यज्ञोपवीत (जनेऊ) दिया।

**प्रभासमजयत्तत्र प्रभासं व्यन्तराधिपं ।**
**प्रभासमूहमर्कस्य स्वभासातर्जयनूप्रभुः ॥१२३॥३०**

**अर्थ**—अपनी कान्ति से सूर्य की कान्ति को लज्जित करते हुए भरत ने वहाँ जाकर प्रभास नाम के व्यन्तरों के स्वामी को जीता और प्रभास नामके क्षेत्र को अपने आधीन किया।

**सप्रणामं च संप्राप्तम् तं वीक्ष्य सहसा विभुः ।**
**यथार्हप्रतिपत्याऽस्मायासनं प्रत्यपादयत् ॥६५॥**

आदिपुराण पर्व ३२

**अर्थ**—नियम के अनुसार भरत ने वहाँ डेरे किये। यह जानकर विजयार्द्ध पर्वत का स्वामो व्यन्तर विजयार्ध देव मागध देव के समान भरत के दर्शन करने के लिए आया।

**सिन्धु देव्यान्यषेचि सः ॥७६॥**

आदिपुराण पर्व ३२

**अर्थ**—सिंधु देवी ने राजा भरत को भद्रासन पर बैठा कर सिंधु नदी के सैकड़ों सुवर्ण के कलशों को जल से भर कर हाथों हाथ अभिषेक कराया था और कहा मैं आज आपके दर्शन से पवित्र हूं ॥७६॥

पर्व ३७ श्लोक नं० १६६ में गंगादेवी ने राजा भरत का गंगाजल से अभिषेक कराया। ऐसा ही लिखा हुआ मिलता है न कि किसी मनुष्यने इन देवों की आराधना की।

**षोड़शास्य सहस्राणि गणबद्धामराः प्रभोः ।**
**येयुक्ताधृतनिर्स्त्रिंशा निधिरत्नात्मरक्षणे ॥१४५॥**

आदिपुराण पर्व ३७

अर्थ—उस चक्रवर्ती राजा भरत के १६००० सोलह हजार गणबद्ध व्यन्तर देव थे जो कि हाथ में शस्त्र लेकर निधी और रत्न व चक्रवर्ती की रक्षा करने में नियुक्त सदा तत्पर रहते थे।

राजवार्तिक अध्याय ६ श्लोक नं० ५ पृष्ठ २४६ धारा ७ में कहा है—

**"तत्र चैत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणसम्यक्त्ववर्द्धिनी-क्रिया सम्यक्त्वक्रिया। अन्य देवतास्तवनादि रूपामिथ्यात्व हेतुका प्रवृत्तिर्मिथ्यात्वक्रिया।"**

अर्थ—तत्र कहिए तिनि क्रियानि मे जिन प्रतिमा, निर्ग्रन्थ गुरु, जिनागम, इनकी पूजा स्तवन, बन्दना है सो सम्यक्त्व बढ़ाने वाली क्रिया है और चैत्य, गुरू, जिनागम से अतिरिक्त अन्य देवता का पूजन करना, बन्दना करना मिथ्यात्व की कारणभूत प्रवृत्ति है सो मिथ्यात्व क्रिया है। सिद्धान्तसार ग्रन्थ मे लिखा है—

**विवाहजातकर्मादौ मंगलेष्वखिलेषु च।**
**परमेष्ठिन एवाहो न क्षेत्रपालकादयः॥**

अर्थ—जिस विदेह क्षेत्र में पूर्ण धर्म का श्रद्धान है उस स्थान में भी विवाह जातकर्म आदि समस्त मंगल कार्यों में परमेष्ठी की पूजा करते हैं; ऐसा विधान है और ऐसा ही किया जाता है। क्षेत्रपाल आदि रागी द्वेषी देव का मान्यता नहीं है। उत्तरपुराण के महावीर पुराण मे ऐसा लिखा है—

**वर्तते जिनपूजायां दिनप्रतिगृहे गृहे।**
**सर्वमंगलकार्याणां तत्पूर्वत्वात्गृहेशिनाम्॥**

**अर्थ**—अयोध्यापुरी के भीतर गृहस्थों के मंगल कार्य के अन्दर परमेष्ठी (जिनपूजा) ही मुख्य है। अन्यदेव सम्यक्दृष्टि श्रावक के पूज्य नहीं हो सकता। अष्टपाहुड़ के मोक्षपाहुड़ मे कहा है—

**हिंसा रहिए धम्मे अट्ठारह दोषवज्जिए देवे।**
**णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होई सम्मत्तम् ॥९०॥**

**अर्थ**—जो देव हिंसा रहित धर्म का प्रतिपादक और १८ दोषों से रहित, निर्ग्रन्थ हो वही सम्यग्दृष्टि को पूज्य है अन्यथा नहीं।

स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा में इस प्रकार कहा है—

**णिज्जिय दोसं देवं सव्वजिवाणं दयावरम् धम्मं।**
**वज्जिय गन्थम् च गुरुं जोमण्णादि सोहु सद्दिट्ठी ॥३१७॥**

**दोषसहियंपि देवं जीव हिंसाइसंजुदं धम्मं।**
**गंथा सत्तं च गुरू मण्णादि सोहु कुद्दिट्ठी ॥३१८॥**

**अर्थ**—जो रागद्वेषादि वर्जित देव को और सब जीवों मे दया प्रधान धर्म को और निर्ग्रंथ गुरू को मानता है एव पूजता है वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है यानि होता है ॥३२२॥

और जो पुरुष दोष सहित देव को, दयारहित धर्म को और परिग्रह सहित गुरु को पूजता है वह प्रगट मिथ्यादृष्टि है ॥३२३॥ पद्मनन्दी पंचविंशतिका में भी लिखा है—

**जिनदेवो भवेद्देवस्तत्त्वं तेनोक्तमेव च।**
**यस्येतिनिश्चयः सः स्यान्निशङ्कितशिरोमणिः ॥३३॥**

अर्थ— जिस जीव को ऐसा निश्चय है कि जिनदेव ही एक देव है, जिनदेव भाषित ही एक तत्त्व है वह निशंकित पुरुषों मे शिरोमणि है। चरचासागर मे भी ऐसा ही कहा है—

देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यन्तराद्यश्च देवता।
समं पूजा विधानेषु पश्यन्दूरमधः व्रजेत् ॥१॥

अर्थ—तीन जगतके नेत्र श्री जिनेन्द्रदेव है उन्हें और रागी-द्वेषी व्यन्तरादिक को जो पूजनविधान मे समान मानता है तथा समान देखता है, वह प्राणी दूरवर्ती जो अधोलोक अर्थात् नरक है उसके प्रति गमन करता है।

भगवान् कुन्दकुन्द दर्शन पाहुड़ मे कहते है—

अस्संजदं ण वन्दे वच्छविहीणोवि तोण वंदिज्ज।
दोण्णि विहुंति समाणा एगो विण संजदो होदि ॥२६॥

अर्थ—असंजमी को नहीं वन्दिये। तथा भाव संयमी न हो अर बाह्य वस्त्र रहित होय सो भी वन्दने योग्य नहीं है। क्योंकि यह दोनों ही संयम रहित हैं। इनमे एक भी सयमी नहीं है।

उत्तरपुराण के वर्द्धमान पुराण में कहा है—

इति तद्भाषितम् श्रुत्वा वरिष्टः श्रावकेष्वहं।
नान्यलिंगि नमस्कारम् कुर्वेकेनापि हेतुना ॥२७८॥

अर्थ—इस प्रकार तापसी के वचनों को सुनकर सेठ कहने लगा कि मैं श्रेष्ठ श्रावक हूँ। इसलिए रागी द्वेषी अन्य लिंगीनि को नमस्कार नहीं करूंगा।

**पंचमहव्वयजुत्तो तिहिगुत्तिहिं जो स सँजदो होइ ।**
**णिग्गँथ मोक्खमग्गो सो होदि हु वन्दणिज्जो य ॥२०॥**

**अर्थ**—जो आत्मा पंचमहाव्रत करि युक्त तीन गुप्तिकरि संयुक्त होय सो सयत (मुनि, ऋषि, साधु, अणगारी) संयमवान है। सो ही निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है। वही स्तवन करने योग्य तथा वन्दना करने योग्य है। अलावा कोई वन्दने योग्य (स्तवन योग्य) नहीं है।

**अवसेसा जेलिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता ।**
**चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥१३॥**

**अर्थ**—जो दिगम्बर मुद्रा के सिवाय अवशेषलिंग जो उत्कृष्ट श्रावक तथा आर्यिका सम्यक् दर्शन, ज्ञानकर सहित सो भी इच्छाकार करने योग्य है, न कि मुनि के तुल्य नमोस्तु योग्य हैं।

तब इन दोनों लिंगों के अलावा अन्य लिंग कैसे वन्दने योग्य हो सकता है, कदापि नहीं। फिर क्षेत्रपाल पद्मावती वगैरह पूजन के योग्य या वन्दना योग्य कैसे हो सकते है।

**भावार्थ**—ग्रन्थों मे आचार्यों ने जितने भी दृष्टान्त दिये है उन सब मे देवों की तरफ से मनुष्यों की सेवा की गई है न कि मनुष्यों की तरफ से देवों की। परन्तु भट्टारक लोगों ने इन देवों को पूजने योग्य बना दिया, यह बड़ा आश्चर्य है।

इनके सम्बन्ध में कितने ग्रन्थों का प्रमाण दिया जावे। सभी जगह भगवान् जिनेन्द्रदेव को पूजा भक्ति से ही सब कुछ आत्मकल्याण या संसार के सुख प्राप्त होते है ऐसा लिखा है।

विश्वास एवं विचार की आवश्यकता है। सीताजी को रामचन्द्र जी ने परीक्षा के वास्ते अग्निकुण्ड में प्रवेश कराया परन्तु उस स्त्री के पुण्य के उदय से देवों ने स्वयं आकर सहायता की।

आखण्डलस्ततोऽवच दहं सकलभूषणं।
त्वरितंतुवंदितुंयामि कर्तव्यं त्दमिहाश्रय ॥१२६॥

पद्मपुराण

अर्थ—इन्द्र ने हेमकेतु देव से आज्ञा की कि मैं तो सकल भूषण के उपसर्ग को दूर करने को जाता हूँ और तू इस महासती सीता के उपसर्ग को जाकर दूर कर।

जब प्रद्युम्नकुमार के पूर्व पुण्योदय से सोलह लाभ प्राप्त हुए तब वहाँ पर कई देवों ने उनको आभूषण और रत्नो के दागीने तथा कन्या लाकर दी। देखो प्रद्युम्नकुमार चरित्र को। यदि देव मनुष्य की सेवा न करते होते तो ऐसा पदार्थ लेकर क्यों देते।

इससे सिद्ध होता है कि मनुष्य के पूर्व पुण्य के उदय से स्वयं देव आकर सेवा करते हैं। देवों की सेवा मनुष्यों को नहीं करनी चाहिए। शास्त्रों में बतलाया है कि वीतराग देव को छोड़ कर अन्य देवों की सेवा पूजा करना पक्का मिथ्यात्व है।

दोनों शिष्यों का कर्तव्य सिद्धान्तों में क्या बतलाया है। विष्णुकुमार मुनिराज की कथा मे आराधना कथाकोष मे कहा है कि—

**शिष्यास्तेऽत्र प्रशस्यन्ते ये कुर्वन्ति गुरोर्वचः ।**

**प्रीतिता विनयोपेता भवन्त्यन्ये कुपात्रवत् ॥ १ ॥**

**अर्थ**—शिष्य वे ही प्रशंसा के पात्र हैं जो विनय और प्रेम के साथ अपने गुरू की आज्ञा का पालन करे। इसके विपरीत करने वाले शिष्य कुशिष्य यानी अपात्र कहलाते हैं।

श्री अकम्पन आचार्य के संघ के मुनिराज श्रुतसागर जी की तो बली आदि मंत्रियों से बन देवता ने रक्षा की और जब रात से मुनिराजों पर बली आदि मंत्रियों ने घोर उपसर्ग किया तब क्यों नहीं सहायता की। इससे ये ही सिद्ध हुआ कि प्राणिमात्र का सहायक या असहायक, अपना किया हुआ पाप और पुण्य ही काम आता है। अन्यथा न कोई माता, पिता, न कुटम्बी, न धन और न देवी देवता काम आते हैं।

हे भव्यजन ! श्रावक प्राणियो ! तुम भगवद् अरहन्त के कैसे शिष्य जो उनकी का हुई कथा को नहीं मानकर इन भैरव, भवानी, क्षेत्रपाल, पद्मावती, धरणेन्द्र, भूत, प्रेतों को मानने को तैयार रहते हो। कहा तक कहा जावे भगवान महावीर से और पद्मप्रभु से भी नहीं चूकते। धन्य है आपकी भगवत भक्ति और गुरु भक्ति को।

आराधना कथाकोष मे मुनिराज वारिषेण की कथा में कहा है—

**अहोपुण्येन तीव्राग्निर्जलत्वं याति भूतले ।**

**समुद्रः स्थलतामेति दुर्विषं च सुधायते ॥**

शत्रुर्मित्रत्वमाप्नोति विपत्तिः सम्पदायते ।
तस्मात्सुखैषिणो भव्याः पुण्यंकुर्वन्ति निर्मलं ॥२२॥

अर्थ —पुण्य के उदय से अग्नि, जल बन जाती है, समुद्र स्थल हो जाता है, विष अमृत हो जाता है, शत्रु, मित्र हो जाता है, विपत्ति सम्पत्ति रूप परिणित हो जाती है। इस लिये संसार मे रहते हुये जो लोग सुख चाहते है, उन्हे पवित्र आचरण यानि देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप, दान, और अपनी शुद्ध परिणति पर पूरा पूरा ध्यान रखकर रात्रि भोजन त्याग, जल छान कर पीना, देव दर्शन करना, अष्टमूलगुण पालना और आत्म विचार करना, जाप देना, इन कर्तव्यों के द्वारा पुण्य पदार्थ को सम्पादन करना चाहिये। जिसमे स्वर्ग से आकर स्वयं देव सेवा करने लग जावे।

देखिये धर्म का माहात्म्य ! इस ही कथा कोष में यमपाल चांडाल की कथा मे लेख है कि "धर्मचन्द्रनामा एक सेठ का पुत्र राजा के मेंढे को अष्टान्हिका पर्व मे मारकर खागया। उसको राजा ने सूली की आज्ञा दी। तब जल्लाद लोगों ने सूली देने के वास्ते यमपाल चांडाल को बुलाया। यमपाल बोला—कि आज चतुर्दशी पर्व का दिन है। मैने इस दिन हिंसा करने का मुनिराज के पास त्याग किया है। अतः मै आज हिंसा नहीं करूंगा। ये बात सुनते ही राजा की आज्ञा हुई कि इन दोनों व्यक्तियों का मुस्कें बाधकर मगरमच्छों से भरे हुए तालाब में डाल दिया जाय। राजाज्ञा होते ही तालाब मे डाल दिये गये, किन्तु उस पापी धर्मचन्द को तो मगरमच्छ खागये और चांडाल को अहिंसाव्रत के माहात्म्य के फल मे उन मगर और मच्छों ने

नहीं खाया। देवों ने उस चांडाल के वास्ते सिंहासन बनाकर सेवा की यानि पूजा की। विचारने की बात है कि देखो चाँडाल के पास धर्म था तो देवों ने आकर सिंहासन बनाया, धर्मचन्द के पास पाप था तो उसको मगर और मच्छ खागये। अतः धर्म सेवन करना ही संसारी जीवों का पहिला कर्तव्य है। जिसके धारण करने से देव भी स्वयं आकर सेवा करने लग जावें।

## श्री अभिनन्दन मुनिराज का उदाहरण

कुम्भकार कटक शहर के राजा दण्डक ने मंत्री के मायाचार पूर्वक दृश्य दिखाने से जब पांचसौ मुनियों सहित आचार्य को घाणी मे पिलवा दिया था, तब शासन देव कहां जाकर सो गये थे और आज तुमारे वास्ते उस निद्रा को छोड़कर आपकी सेवा करने के वास्ते जरूर ही हाजिर होंगे। क्या गजब की बात है।

## ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का उदाहरण

कापिल्ल नगर में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती राजा राज्य करता था। किसी कारण से उसने अपने रसोईदार को मार दिया था। वह मरकर व्यन्तर देव हुआ। उसने चक्रवर्ती से अपना पूर्व जन्म का बदला लेना चाहा तब उसने एक सन्यासी के रूप मे बहुत से बढ़िया २ मिष्ट फल भेट में लाकर राजा को दिये। राजा उन मिष्ट फलो से बहुत ही प्रसन्न हुआ और कहा—हमें ऐसे फल और चाहिये। तब वह सन्यासी राजा को मिष्ट फलों का लोभ देकर अपने साथ ले गया। फिर क्या था उसने उसके ऊपर उपसर्ग किया परन्तु जब तक राजा को जैन धर्म की श्रद्धा रही तब तक यह देव कुछ न कर सका, परन्तु उपसग रहा।

अखीर में वह देव कहने लगा तुम जैन धर्म को झूंठा कहो और णमोकार मन्त्र के ऊपर अपने पाँव को फेरदो। राजा को अपने प्राणों की पड़ी थी। उसने उसके कहे अनुसार कर दिया। देव ने तुरन्त राजा को मार दिया। वह मरकर सप्तम नरक मे गया। कहने का तात्पर्य यही रहा कि सच्चा श्रद्धान रखना आवश्यक है।

व्यसनेन युतो जीवः सत्यं पापपरो भवेत्।
यस्यधर्मे सुविश्वासः क्वापि भीतिं न याति सः ॥२२॥

अर्थ—व्यसनी पुरुष भी पाप में सदा तत्पर रहता है। जिसका धर्म पर दृढ़ विश्वास है उसे कहीं भी भय नहीं होता।

मिथ्यादृष्टेः श्रुतं शास्त्रं कुमार्गाय प्रवर्तते।
यथामृष्ट भवत्कृष्टं सुदुग्धं तुम्बिकागतम् ॥ १ ॥

अर्थ—अज्ञानी पुरुष मिथ्यात्व के वश में होकर कौनसा बुरा कर्म नहीं करते। मिथ्यादृष्टियों का ज्ञान और चारित्र मोक्ष का कारण नहीं होता। जैसे सूर्य के उदय होने पर भी उल्लू को कभी सुख नहीं होता। मिथ्यादृष्टियों का शासन सुनना शास्त्रो का अभ्यास करना केवल कुमार्ग में प्रवृत होने का कारण है। जैसे मीठा दूध भी तुमड़ी के सम्बन्ध से कड़वा हो जाता है।

ये कृत्वा पातकं पापाः पोषयन्ति स्वकंभुवि।
त्यक्त्वान्यायक्रमं तेषां महादुःखं भवार्णवे ॥१॥

अर्थ—जो पापी लोग न्याय मार्ग को छोड़कर, पाप के द्वारा अपना निर्वाह करते है, वे संसार समुद्र मे अनंत काल

तक दुःख भोगते हैं। अतः सभी पुरुषों को न्यायमार्ग को नहीं छोड़ना चाहिये।

उत्तम कार्यों में मनुष्य को समय लगाना चाहिये। पुण्य की महिमा अपरम्पार है। देखो तीर्थंकर प्रकृति सर्वोत्कृष्ट पुण्य की सामग्री है। उसके प्रभाव से तीर्थंकर जब गर्भ में आते हैं उसके छः माह पूर्व से ही देवलोग उनके माता पिता की सेवा करने लग जाते है और उनके पांचों कल्याणक मे आते हैं।

चक्रवर्ती, नारायण, वासुदेवों की उनके पुण्यानुसार देवता सेवा करते रहते हैं। एक देव का तो क्या बात, पुण्य उदय से एक मनुष्य की असंख्यात देव सेवा कर सकते है। जैसे कि तीर्थंकर की।

सर्वत्र माङ्गलिक कार्यों मे श्री जिनेन्द्रदेव ही पूजनीय माने है और इसके कई उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाया है। अब अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत को कहते है।

इस अतिथि संविभागव्रत के कई उदाहरण भोगोपभोग व्रत में दे आए है, वहा से जानना चाहिये। अब यहा विशेष वर्णन किया जावेगा।

अतिथि शब्द की व्याख्या

**तिथिपर्वोत्सवाः सर्वे त्यक्तायेन महात्मना।**
**अतिथिं तु विजानीयाच्छेषमभ्यागतं विदुः॥**

सागारधर्मामृत ॥५॥

**अर्थात्—"न तिथिर्यस्य सः अतिथिः**

जिस साधु एवं मुनि के एकम, दोज, पूर्णिमा, अष्टान्हिका, षोड़शकारण, दशलक्षण आदि मे कोई विशेष विचार नहीं,

केवल स्वाध्याय ही जिनका प्रयोजन है अर्थात् आत्मा का अध्ययन चिन्तवन मात्र प्रयोजन है, वे मुनि अतिथि हैं और शेष अभ्यागत शब्द से कहे जाने वाले हैं।

तात्पर्य यह है कि अतिथियों को लौकिक कार्यों से कोई प्रयोजन नहीं है। ये आत्म-योगोपयोग में ही रत रहते हैं। उनको भोजन दिया जावे वह शुद्ध मर्यादित अपने कुटम्ब के लिये बनाया गया हो, उसमें से ही दिया जावे। इसीका नाम अतिथिसंविभाग व्रत है। अतिथि (मुनि) के भोजन देने के लिये खास तौर पर आरम्भ करना दातार और पात्र के लिये पाप बंध का कारण है।

मुनि को आहार दान करने से गृहस्थ को जो आरम्भिक हिंसा लगती है, उससे उत्पन्न पाप का विनाश होता है। अर्थात् मुनि को दिये गये आहार दान के प्रभाव से आरम्भिक हिंसा जन्य पाप का विनाश हुआ करता है। ऐसा सिद्धान्त है।

गृहस्थियों के लिये आरम्भिक हिंसा

**खण्डनी पेषिणी चुल्ली उदक कुम्भः प्रमार्जिनी।**
**पंचसूनाः गृहस्थस्य तेन मोक्षे न गच्छति॥ १॥**

**अर्थ**—१ ऊखल, २ चूल्हा, ३ चक्की, ४ परंडा ( विनोची, पानी का स्थान ) और ५ बुहारी ( झाड़ू देना ) ये पाँच गृहस्थ के सूना कहलाते हैं। इनके द्वारा गृहस्थ को आरम्भिक हिंसा (पाप) होती ही है। इसी कारण गृहस्थी मोक्ष में नहीं जा सकता।

किन्तु मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिकाओं का आहार दान का प्रभाव है कि इन पाँचों सूनाओं से जो

गृहस्थ को आरंभिक हिंसा होती है, उसका तज्जन्य पाप नष्ट हो जाता है और स्वर्गादिक के सुख भोगकर परम्परा से मुक्ति प्राप्त करता है।

मुनियों की वैय्यावृत्ति का फल

**उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।**
**भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥११५॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—१ परम वीतराग जिनेन्द्र के मार्ग में रत मुनि को प्रणाम करने से उच्च गोत्र का बंध होता है और उनको शुद्ध निर्दोष आहार देने से उत्तम भोग भूमि तथा देवगति के सुख एवं चक्रवर्ती पद की प्राप्ति होती है।

२—मुनि की उपासना करने से यशोलाभ, प्रशंसा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

३—उनकी भक्ति करने से निरोगता और देवों को भी दुर्लभ ऐसा सुन्दररूप प्राप्त होता है। जैसे सनतकुमार चक्रवर्ती को प्राप्त था।

४—उनकी स्तुति करने से स्वयं अनेक पुरुषों से स्तुत्य हो जाता है। जैसे रामचन्द्र, लक्ष्मण, नारायण बलभद्रादिक। अतः ऐसे साधुओं की रक्षा, सेवाभक्ति, परिचर्या और वैय्यावृत्ति करनी चाहिये। यह श्रावक का मुख्य धर्म है।

यद्यपि मुनि तो सब प्रकार बाह्य तथा अन्तरङ्ग परिग्रह के त्यागी होते है। उन्हे किसी प्रकार की सेवा कराने की भी आवश्यकता नहीं होती। तथापि सब क्रियाओ के लिये उनका शरीर बाह्य निमित्त का कारण होता, सर्वथा

आत्मभावना में मग्न रहता है। जैसे सिद्धचक्र समान है। विधान वेदी प्रतिष्ठा आदि कार्य भी जिनके लिये शरीर बाह्य निमित्त का कारण होता है। अतः श्रावकों को उनके शरीर की रक्षा पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

मुनियों के शरीर की रक्षा पर क्या २ ध्यान देना चाहिये।

१—मुनियों के पास जीव दया की उपकरण पीछी समुचित है या नहीं।

२—महाराज के पास कमण्डलु ठीक है या नहीं

३—महाराज के पास शास्त्र है या नहीं ? कौनसा शास्त्र पढ़ते हैं अब कौनसा शास्त्र चाहिये। पुराना जीर्णशीर्ण हो गया हो तो नया चाहिये। ऐसा दर्याफ्त करलेना जरूरी है।

४—जहाँ पर महाराज ठहरे हैं वह स्थान समुचित है या नहीं।

५—यथायोग्य शरीर में कोई रोग तो नहीं है ?

६—समयानुसार परीक्षापूर्वक आहार दान देना चाहिये। साथ में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि कौनसी ऋतु में कौनसा आहार देने योग्य है।

७—जहाँ पर व्रती पुरुष रहते हों वहाँ पर प्याल, पट्टा, चटाइये है या नहीं हैं ?

इसके अतिरिक्त ऐलक, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका के लिये कपड़ा या और उपकरण पुस्तकें वगैरह तथा ब्रह्मचारियों के लिये यथायोग्य कौन २ पदार्थों की आवश्यकता है। उसकी पूरी पूरी व्यवस्था करना श्रावकधर्म का पहिला कर्तव्य है। इनके बिना धर्म साधन में बाधा हो सकती है।

गृहस्थों (श्रावकों) को चाहिये कि जब साधु वगैरह का भोजन का समय हो उस समय पर अपने घर में तिर्यंचादिक होते ही है तो उनको ऐसे स्थान पर रखे जिससे साधुओं को किसी प्रकार की बाधा ( उपद्रव ) न करें। यदि वे पशु खुले हुए वहाँ पर रहे तो इधर-उधर दौड़ेंगे ( दौड़ लगावेंगे ) तो उनके खुरों से जीव हिंसा होगी। इस प्रकार समझकर उस घरसे संयमी लोग निकल जावेंगे। अथवा उन पशुओं के दौड़ने से संयमीजनों के ऊपर किसी प्रकार के उपसर्ग होने की सम्भावना हो जावे तो पूर्ण सावधानी करना चाहिये। और यह भी बात है कि वे पूर्ण संयमी होते है वे समझेंगे कि यहाँ पर दया नहीं पलेगी इसलिये अन्यत्र चलो।

उस समय आंगन गीला नहीं होना चाहिये। हरित काय घास या पत्ते वगैरह नही पड़े हों। और चौका गोमय ( गोबर ) से लिपा हुआ न हो। एवं कंडे, छाने, उपले, थेपड़ी गोबर के होते है इनसे रसोई न बनाई जावे। लकड़ी कोयले रसोई चौके मे बरतना चाहिये। गोबर अशुद्ध है।

**प्रश्न**—स्वर्गीय पं० सदासुख जी कासलीवाल जैपुर निवासी ने तो रत्नकरडश्रावकाचार में गोबर को अष्ट प्रकार की शुद्धियों मे वर्णित किया है। और और भी ग्रन्थों मे गोबर को काम मे लेना लिखा है। आप इसका निषेध क्यों करते हो ?

**उत्तर**—गोबर की शुद्धि लौकिक में कहीं पर मानी गई है। किन्तु शास्त्र दृष्टि से वह अशुद्ध ही है। शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि जहाँ पर गोबर पड़ा हो वहाँ पर भोजन मत करो। उसमें हर समय असंख्य जीव उपजते और

मरते हैं। इसका त्रिवर्णाचार मे खुलाशा कथन किया है वहाँ से देख लेना चाहिये।

हां आयुर्वेद मे पृथ्वी को गोबर से लीपना जरूर बतलाया है। क्योंकि गोबर मे इतना खार है कि इससे लीपने से एक बिलस्त ( एक बेत कहिये नव इंच ) प्रमाण पृथ्वी के नीचे तक के अशुद्ध कीटाणु मर जाते है। इसलिये गोबर से लीपी हुई जमीन पर चलने वाले प्राणी रोग से ग्रसित नहीं होते।

अतः यह लौकिक शुद्धि है सो ही प० सदासुख जी ने लौकिक की अपेक्षा रखकर लिखा है।

यहाँ पर लौकिक शुद्धि का प्रकरण इस वक्त नहीं है। यहाँ पर तो भोजन शुद्धि का प्रकरण है, सो भोजन की शुद्धि करनी चाहिये।

त्रिवर्णाचार के अध्याय ६ श्लोक नं० १८७ में गोबर अशुद्ध बतलाया गया है।

**नखगोमयभस्मादि मिश्रितान्नवे च दर्शिते ॥१८७॥**

अतिथि संविभाग व्रत के पाँच अतिचार

**सचितनिक्षेपापिधान परव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः**

तत्वार्थसूत्र अध्याय ७ सूत्र ३६

**हरितपिधाननिधाने, ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।**
**वैयावृत्यस्यैते, व्यतिक्रमा पञ्च कथ्यन्ते ॥१२१॥**

रत्नकरंडश्रावकाचार

अर्थ—१ सचित्तनिक्षेप, २ सचित्तपिधान, ३ परव्यपदेश, ४ मात्सर्य और ५ कालातिक्रम। ये भगवान उमास्वामी तथा

स्वामी समन्तभद्र महाराज के वचनानुसार अतिथि संविभाग व्रत के पाँच अतिचार है। इनका पृथक् २ खुलाशा इस प्रकार है—

१ **सचित्त निक्षेप**—सचित्त कहिये चेतना सहित जो वस्तु हो उस वस्तु से सम्पर्क मिलाना अतिचार है। जैसे वृक्ष से तोड़े हुए पत्र, शाक, कमलादिक के पत्र सचित्त हैं तथा जबकि गीलेपन का सम्पर्क है, पृथ्वी ( गीली मिट्टी ) जल, धान्य तथा खरबूजा, ककड़ी, तोरई, नारङ्गी, केले, आम, पानी, सेव, मौसमी आदि के चाकू से गट्टे तो बना लिये हों। परन्तु उनमें कोई अतिरिक्त द्रव्य नहीं मिलाया हो और न गर्म ही किया है ऐसे पदार्थ सचित है। त्यागी लोग ऐसे पदार्थ नहीं जीम सकते और न पी सकते। दातार देवे तब पूरी २ जाच कर लेवे। पदार्थों के गट्टे करने से या नीबू के दो पले करने से ही अचित्तपना नहीं आ सकता। क्योंकि बनस्पति के शरीर की अवगाहना आचार्यों ने अगुल के असख्यातवे भाग मानी है। और वह गट्टे किये है सो बादाम या दाख के बराबर के बड़े है जो बिना अग्नि पर चढ़ाये या यन्त्र से पेले बिना अचित्त नही हो सकते। जैसे साठे का रस निकाल लेते जैसे नींबू का रस और जैसे पत्थर पर चटनी बांट लेते। ऐसा किये बिना जो लेते है या देते है सो सब अतिचार है इसकी पूरी २ जॉचकर कर लेना योग्य है।

२ **सचित्तपिधान**—आहार मे किसी प्रकार की सचित्त वस्तु का सम्बन्ध मिलाना। जैसे गीले ( हरे ) सचित्त फल, पुष्प आदि का संयोग या ऐसे पदार्थों से भोजन को ढकना, सो अतिचार है। इनका सम्बन्ध न हो।

३ परव्यपदेश—अपने गुड़ शक्कर आदि पदार्थों को किसी दूसरे को बतलाकर दे देना अथवा दूसरे के मकान पर जाकर उसकी इजाजत के बिना, कोई वस्तु निकालकर आहार में दे देना सो परव्यपदेश नामा अतिचार है। क्योंकि मालिक की आज्ञा के बिना दूसरे की चीज दूसरों को दे देना सो अतिचार है। सिद्धान्त ऐसे काय को रोकता है।

४ मत्सर—मुनियों के, पड़गाहने आदि में क्रोध करना। आये हुये मुनि को न देना या देते हुए भी आदर सत्कार नहीं करना। अथवा अन्य दातारों के गुणों को सहन नहीं करना। जैसे इस श्रावक ने मुनिराज को दान दे दिया। तो क्या मैं इससे हीन हूं। इस प्रकार अन्य दातारों से ईर्ष्या भाव करने को मत्सर भाव नामक अतिचार कहते है। हां जो दूसरों से बढ़कर दान देता है और सोचता है कि ऐसा अवसर मिलना महान कठिन है, जो कुछ करना है सो करलू। ऐसे भावों से महान पुण्य होता है। मत्सर शब्द के कई प्रकार के अर्थ होते है, जो सब परिहारने योग्य हैं।

"मत्सर. परसंपत्यक्षमायां तद्वतिक्रोधः। अर्थात् दूसरों की सम्पदा को देखकर सहन नहीं करना तथा उस पर क्रोध करना इत्यादि सब मत्सर भाव है।

५ कालातिक्रम—साधु के योग्य भीक्षा के समय को उलंघन करना कालातिक्रम है। जो अनुचित समय मे मुनियों को भोजन देने को खड़ा होता है, मुनियों के भोजन के समय के पहिले भोजन करने वाला श्रावक इस दोष का भागी है। ये पांचों ही यदि अज्ञान से और प्रमाद से हों तो अतिचार है।

और जान बूझकर करे तो अनाचार है। इनको टालना गृहस्थों का पहिला कर्तव्य है।

व्रतों के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञातव्य

**हिंसा द्वेधाप्रोक्ताऽऽरंभानारंभभेदतो दक्षैः।**
**गृहवासतोनिवृत्तो, द्वेधाऽपित्रायते तां च ॥१॥**

**ग्रहवाससेवनरतो, मंदकषायः प्रवर्तितारंभः।**
**आरंभजां स हिंसाँ शक्नोति न रक्षितुं नियतम् ॥२॥**

**अर्थ**—हिंसा दो प्रकार की होती है १ एक तो कृषी ( खेती ) आदि कार्यो से होने वाली हिंसा जिसे आरंभी कहते है। दूसरी वस्तुओं के रखने उठाने आदि मे होती है। इसे अनारंभी कहते है।

जिस पुरुष की कषाय मंद हो गई हो वह संतोषी गृहत्यागी दोनों प्रकार की हिंसा का त्यागी हो जाता है। परन्तु घर में रहने वाला व्रती श्रावक दोनों प्रकार की हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग नहीं कर सकता। क्योंकि उसकी कषाय अभी इतनी मंद नहीं हुई है। इसलिए व्रती दो प्रकार के हुए। (१) गृहवासी (२) गृहत्यागी। उक्त द्वादश व्रतों को मनुष्य, तथा तिर्यंच, सब अपनी २ योग्यतानुसार पाल सकते है। इसमे किसी को कोई बाधा नहीं है।

गृहवासी, तथा गृहत्यागी ये दो भेद द्वितीय प्रतिमा से लेकर नवमी प्रतिमा तक माने गये हैं। इसके आगे गृहत्यागी ही होता है। इसका विशेष व्याख्यान अनुमति त्याग प्रतिमा मे करेंगे, वहां से जानना।

घर निवासी और घर त्यागी व्रतियों का बाह्याचरण और भेष में जरूर फर्क रहता है उससे उनकी पहिचान हो सकती है। व्रतों के ग्रहण करने से मनुष्य की पर्याय सफल और सुशोभित होती है। इन व्रतों को धारण करने के पहिले ज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।

**जो विन क्रिया अवगाहे। जो विन क्रिया मोक्षपद चाहे ॥१॥**
**जो विन मोक्ष कहे मैं सुखिया। सो नर अजान मूढ़न में मुखिया।२**

**अर्थ**—जो भव्य पुरुष अपनी आत्मा को इस भव ससार रूपी समुद्र से निकालना चाहते है, उनका कर्तव्य है कि भगवान् के द्वारा उपदिष्ट सम्यग्ज्ञान का सबसे पहिले अभ्यास करे, जिससे वह मजबूती हो जावे कि वह आत्मा सम्यक् ज्ञान सम्पन्न प्रौढ़ बन जावे और फिर पतित न होने पावे।

धर्मात्माओं को चाहिये कि उन्हे जो व्रत लेना हो उससे पहिले उसका लक्षण अच्छी तरह समझले। तथा देने वालों को भी चाहिये कि उसव्रत का स्वरूप पहिले ठीक समझा देवे। लेने वाला चाहे पुरुष हो या स्त्री हो, उस की सहन शीलता, उस के शरीर की योग्यता, कुल की उसके घर की व कुटम्ब की, धन सम्पत्ति की या मोह की योग्यता आदि की अच्छी तरह जांच करले, फिर व्रत देवे ताकि व्रतोंमे दूषण लगाने का अवसर कदापि न आवे, उद्वेग मे व्रत नहीं लेवे या नहीं देवे। यदि उद्वेग मे व्रत दे दिये जावेगे तो व्रतों की कदर न करके तुरन्त छोड़ देगा तब जिन मार्ग की हसी होगी, जो उचित नहीं। इसलिये पहिले ही खूब सोचिये, सोच समझकर कर्तव्य करना योग्य है।

गृहत्यागी ब्रह्मचारियों को चाहिये कि कपड़े कम कीमत के पहने। सिर के केशों को घोट मोट करावे। मूंछों के बाल मुख पर छोटे छोटे रखे इनको घुटवावे नहीं। स्त्रियां भी भी ब्रह्मचारणी होने पर शिर मे केश नहीं रखें। और आरंभ परिग्रह की लालसा को वहुत कम करने का ख्याल रखे एवं व्रतों मे शिथिलता न आने दे।

बिछाने वास्ते चटाई रखे। ओढने के वास्ते एक दोहरा चादरा रखे। बिछाने व ओढने के वास्ते रूई के भरे हुए बिस्तर नही रखे। अपने पास इतना ही परिग्रह रक्खे जिसे स्वयं उठाकर दूसरे ग्राम को अपने आप ले जावे।

उदासीन ब्रह्मचारी हो या ब्रह्मचारिणी हो, उसे हमेशा खयाल रखना चाहिये कि भूल कर भी यानि स्वप्न में भी रुपया या पैसा न मागे, न ले, न ही पास मे रखे। हमेशा पैदल चलने की आदत रखे। मोटर, रेल, तॉगा, बग्घी, ऊटगाडी, ऊंट, बैल, घोड़े, आदि की सवारी मात्र पर नहीं बैठे। और सवारी के लिये याचना भी न करनी पड़े। जो याचना नहीं करता है उससे लोग प्रीति पूर्वक धर्म सेवन करते है। और पैसा मॉगने वालों से यहॉ तक कह देते है, कि यह महात्मा लोभीदास है, हम इनसे मिलना नही चाहते। क्योंकि यह त्यागी नहीं है, यह तो ठग, पापी, और मायाचारी है। इनसे दूर रहना ही ठीक है।

**अयाचीक जिनधर्म है, धर्मी जांचे नाहिं।**
**धर्मी बन जांचन लगे, सो ठगिया जग माहिं ॥१॥**

पूर्ण खयाल करने की बात है और शास्त्रों का लेख है कि व्रतियों को एकल-विहारी कदापि न होना चाहिये।

क्योंकि अकेला रहने वाला अपनी मरजी में आवे सोही कर बैठता है और जो दूसरा साथी होवे तो उसके डर से खोटा कार्य कदापि नहीं करता, तब कितना उपकार हुआ कि पाप से बचे और पुण्य का संचय हुआ। इसीलिये त्यागी बने थे। न कि अकेले रहकर पाप संचय करने के लिये। अतएव त्यागी को भूलकर भी अकेला नहीं रहना चाहिये।

उदासीन त्यागियों को चाहिये कि हमेशा दिन में एक बार ही भोजन करें। दुबारा भूलकर भी भोजन नहीं करें। यदि एक बार के भोजन में अन्तराय हो गया हो तो भी दुबारा भोजन अथवा मेवा व फलादिक का भी साधन नहीं मिलाना चाहिये और न कोई अपने पास ऐसा सामान रखना चाहिये क्योंकि यह व्रत काय और कषाय को कृश करने के वास्ते लिया है न कि पेट पालने के वास्ते, ऐसा सदा ध्यान रहे।

साथ ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखकर अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार बाह्य तप भी करते रहना चाहिये। जिससे अपनी शक्ति की परीक्षा तथा वृद्धि होती रहे। संसार तथा शरीर से वैराग्य होता रहे। अनशनादि तप तथा रस त्याग व व्रत का अभ्यास बढ़ाते रहना चाहिये।

**कायपाय कर तप नहिं कीना, आगम पढ़ नहिं मिटीकषाय।**
**धन को पाय दान नहिं दीनो, कीनो कहा जगत में आय॥**
**लीनो जन्म मरण के खातिर, रत्न हात से दियो गमाय।**
**चार बात यह मिलन कठिन है, शास्त्र, ज्ञान, धन नर पर्याय॥**

**अर्थ**—यह मनुष्य पर्याय पाना दुर्लभ से भी दुर्लभ है। इसको पाकर जिनधर्म का मार्ग पाना और भी महा दुर्लभ है। हे

प्राणियो ! कषायों को दमन कर चारित्र की उन्नति में प्रवृत्त होओ। यदि आपको पुण्य तीर्थ क्षेत्र की बन्दना करने के लिये जाना हो तब भी पैदल ही यात्रा करना चाहिये। पैदल चलने से शरीर की तथा व्रत की स्वतन्त्रता की दृढ़ता पूर्वक रक्षा होती हैं और परतन्त्रता छूट जाती है।

पैदल यात्रा करने से इतना और लाभ होता है कि जगह २ के श्रावकों को व्रतियों के आचरण और भोजन शुद्धि की विधि का परिज्ञान हो जाता है जिससे जीवों की बड़ी दया पलती है। शास्त्रों की यही आज्ञा है कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि जीवों की दया पालें और अपनी आत्मा का कल्याण करें। यही व्रतियों का लक्षण है।

व्रतियों की याचना का भाव समझ कर गृहस्थी लोग उन्होंका यथोचित आदर भाव करना भी छोड़ देते है। फिर भी कुछ व्रती लोग अब भी नहीं समझते। मानो मांगने के लिये ही इन्होंने जन्म लिया है। उन लोगों से गृहस्थी लोग यहां तक कह डालते हैं कि महाराज हम हमारे गृह कुटुम्ब का पालन पोषण करें या तुम्हारा भार उठावें। इस प्रकार निरंकुश होकर भी जो मांगना नहीं छोड़ते या तीर्थ बन्दना के बहाने रुपया मांगते हैं इससे ज्यादा और क्या पतन होगा। बड़े खेद की बात है। इसलिये व्रतियों का भेष लेने वालों को आत्म सम्मान और आत्म सुधार का तथा धर्म मार्ग का और समाज की सेवा का निरन्तर ध्यान रखना चाहिये।

**खीरदहिसप्पितेल गुड़ लवणाणं च जं परिचयणं।**
**तित्तकटु कषायं विमलं,मधुर रसाणं च जं चयणं॥३५२**

मूलाचार

अर्थ—खीर ( दूध ), दही, घी, तेल, गुड़, लवण इनको आदि लेकर छह रसों में एक या दो या सबका यथाशक्ति प्रति दिन त्याग करना चाहिये। यद्यपि तिक्त, कटु, कषाय, मधुर, विमल (खट्टा) ये पांचों ही रस होते है, किन्तु भोजन के स्वाद की अपेक्षा इन ऊपर कहे छः रसो का ही यथाशक्ति नियम करना चाहिये। जिस दिन जिस रस पर विशेष रुचि हो उस दिन उस रस को छोड देना चाहिये।

ऐसा नहीं है कि शनिवार को ही तेल छोड़ना, इतवार को ही नमक नहीं खाना, सोमवार को ही हरी वनस्पति नही खाना इत्यादि क्रम तो भट्टारकों का चलाया हुआ है, सिद्धान्त नहीं है। इसके पालने में विशेष कोई लाभ नही परहानि भी नही है।

मुनि हो या आर्यिका अथवा ऐलक या क्षुल्लक और ब्रह्मचारी हो, इनके खानपान की वस्तुओ की क्रिया पाक्षिक श्रावक की मर्यादा के अनुसार ही हुआ करती है। कोई अलग मर्यादा सिद्धान्त में इनके लिये नही बतलाई गई है। अगर इनकी अलग व्यवस्था हो तो उद्दिष्टत्यागव्रत कैसे सधे ? गृहस्थ लोग अपने लिये जो भोजन बनाते है उसी में से अतिथि संविभाग करते है। यदि उन गृहस्थो को किसी पात्र का संयोग नही मिले तो वे स्वय ही अपना भोजन आप जीम लेते है।

व्रतियों के सामान्य कर्तव्य

**वधादसत्याच्चौर्याच्च, कामाद्ग्रन्थान्निवर्तनम्।**
**पञ्चकाणुव्रतंरात्रिभुक्तिषष्ठमणुव्रतम् ॥ १ ॥**

अर्थ—१ त्रस जीवों की हिंसा का त्याग सो स्थूल

अहिंसाणुव्रत है। २ स्थूल झूठ बोलने का त्याग सो सत्याणुव्रत है। ३ परद्रव्यापहरण रूप चोरी का त्याग सो अचौर्याणु-व्रत है। ४ परस्त्री मात्र का त्याग तथा स्वदारा में सन्तोष सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है। ५ प्रमाण मे रक्खे हुए परिग्रह के सिवाय अन्य पदार्थों का त्याग सो परिग्रह परिमाणाणुव्रत है। ६ रात्रि मे खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय रूप चारों प्रकार के आहार का त्याग सो रात्रिभोजन त्याग नामा छठा अणुव्रत है। इस प्रकार भी कई आचार्यों का छह अणुव्रत रूप भी अभिप्राय है सो स्वीकारने योग्य है।

जो दूसरी प्रतिमा के बारह व्रत पालते हैं वे स्वयं ऐसा कारण नहीं मिलावे जिसमे देखते प्रत्यक्ष त्रस जीवों की हिंसा हो ( यानि अन्याय पूर्वक हिंसा करनी पड़े ) जैसे राज करना, सेनापति, कोतवाल होना, हलवाईगीरी करना, बनकटी या कृषि करना, युद्ध करना, कराना इत्यादि कार्य छोड़ देने योग्य है। हा जिनके पहिला दर्शन प्रतिमा ही है ये लोग ऊपर लिखे कार्यो को यथायोग्य न्याय पूर्वक कर सकते है। भगवान गुणभद्र स्वामी उत्तरपुराण मे कहते है—

स्वायुराद्यष्टवर्षेभ्यः सर्वेषां परतो भवेत्।
उदिताष्टकषायाणां तीर्थेशां देशसंयमः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अपनी आयु के आठ वर्ष बीतने के समय से भगवान तीर्थंकर देव का गृहस्थ अवस्था मे आचरण व्यवस्था अणुव्रती सरीखा होता है। परन्तु अणुव्रत नहीं लेते, ये महाव्रत ही लेते है। क्योकि चारित्र मोहनीय की प्रकृतियो में से अनन्तानुबन्धी की चार और अप्रत्याख्यानावरण की चार,

इन आठों प्रकृतियों का अनुदय होने से भगवान का आचरण देशव्रती सरीखा हो जाता है। परन्तु ये महानुभाव किसी के पास अणुव्रत नहीं लेते। क्योंकि महापुरुष जगतगुरु अवसर आने पर महाव्रत लेते हैं। इसीलिए अणुव्रत की अवस्था मे ( हालत मे ) राजकाज करते हैं। छः खण्डों को जीतकर कोई चक्रवर्तीपन भी स्थापित करते हैं। अन्य राजाओं को वशवर्ती कर शासन करते हैं। उस समय उनके अप्रत्याख्यानावरण कषाय की सर्वघाती प्रकृति का तो सर्वथा अनुदय है तथा देशघाती प्रकृति का उदय होने से इस रूप की प्रवृत्ति होती है। मिथ्यात्व, अन्याय, और अभक्ष भक्षण का तो पूर्ण रीति से अभाव होता है। तथा पञ्चाणुव्रत रूप सातिचार प्रथम प्रतिमा की भी वृत्ति से न्याय रूप से जितने भी कार्य होते है, करते हैं। जैसे राजा होना या सेनापति होना या मन्त्री तथा अन्य ऐसे ही पद पर होना।

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अणुव्रती न्याय रूप से राजा, महाराजा इत्यादि सांसारिक पद व्यवहार कर सकता है। राजा वही है जो न्याय पूर्वक स्वयं धर्म मार्ग पर चलता हुआ दूसरो को न्याय के पथ पर चलावे।

भगवज्जिनसेन स्वामी ने आदिपुराण मे कथन किया है कि महाराजा भरत पंचाणुव्रतधारी थे। तथा न्याय शासन की बागडोर भी अपने हाथ मे रखते थे। उन्होने छः खण्डों की पृथ्वी की एक स्त्री की तरह रक्षा की। जिनके छयाणवे हजार महा बलवान राजा वश मे थे। जिनमे बत्तीस हजार भूमिगोचरी, बत्तीस हजार म्लेच्छ और बत्तीस हजार विद्याधर थे। जिनके छहो खण्डो से आई हुई कन्याये चक्रवर्ती के रानियाँ थीं।

एक लक्ष कोटि हल थे। इतनी अपार सम्पदा होते हुए भी अणुव्रती हो सकते हैं, ऐसा सिद्धान्त का कथन है।

हां इतनी बात अवश्य है कि सप्त शीलों को धारण करने के लिये सूक्ष्मदृष्टि की अपेक्षा से पचाणुव्रत निरतिचार होना चाहिये सो राज्य करते समय ये बात सम्भव नहीं होती। इसलिये ही राज्य को छोड़कर व्रतों का आदर करते है। ऐसे राज्य त्यागी भरत तथा शान्तिनाथ, कुन्थनाथ, अरहनाथ, ये चारों ही चक्रवर्ती पद को छोड़कर साधु हुए। विशेष प्रथमानुयोग से जानना।

दुनियां के अनेक विवाद और पन्थों की भरमार देखकर घबड़ाये हुए भव्य को किसका अनुकरण करना चाहिये इसका उत्तर देते हैं—

**श्रुतिर्विभिन्ना स्मृतयोर्विभिन्ना, नैकोमुनिर्यस्य वचः प्रमाणं।**
**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाँ, महाजनो येन गतः स पन्था ॥१**

**अर्थ**—श्रुति, स्मृति आदि तथा ऋषियों के मन्तव्य परस्पर भिन्न २ हैं। धर्म का तत्त्व इतना सूक्ष्म है कि मानो गुफा में छिपा हुआ है। इसलिये महापुरुष तीर्थंकर गणधरादि जिस मार्ग पर चले है, उसी मार्ग पर कटिबद्ध तथा दृढ़ होकर भव्य धर्मात्माओं को चलना चाहिये।

निरतिचार द्वादश व्रत पालने के इच्छुकों को राज्यादिक का त्याग करना ही चाहिये। क्योंकि राग और वैराग्य ये दोनों कार्य एक साथ निभ नहीं सकते। सो ही एक कवि ने कहा है—

**दोमुखपंथी चले न पंथा, दोमुख सूई सिंये न कंथा।**
**दोयकाज नहीं होय सयाने, विषय भोग अरु मोक्षहु जाने ॥**

**भावार्थ**—एक ही पथिक जैसे पूर्व दिशा और पश्चिम दिशा, दोनों मार्गों को तय नहीं कर सकता। जैसे सुई दोनों ओर से कपड़े को सीने में असमर्थ है। इसी प्रकार कोई पुरुष चाहे कि भोग भी भोगता रहूं और मोक्ष का साधन भी करलूं तो ऐसे परस्पर विरुद्ध कार्य एक साथ हो नहीं सकते। हां समव्याप्ति में दोनो कार्यो की सम्भावना रहती है। भोगों की और मोक्ष की परस्पर में विषम व्याप्ति है। जैसे शीत की और उष्ण स्पर्श की। इसीलिये एक साथ नहीं हो सकते।

**यत्र रागः पदं धत्ते, द्वेषस्तत्रेति निश्चयः।**
**उभावेतौ समालम्ब्य विक्रमत्यधिकं मनः ॥१॥**

इष्टोपदेश

**अर्थ**—हे व्रतियों जहां राग है वहां अवश्य ही द्वेष होगा इन दोनों के आधार से ही मन में विकार पैदा होता है। इसलिये इनको छोड़कर विवेक पूर्वक आचारण आचरो जिससे लोग हँसी न करने पावें।

व्रतियों को चाहिये कि हिंसक पुरुषों कासा आचरण नहीं करें। और उत्तम आचार विचार रखें। पशुओं का युद्ध न देखें। बावड़ी कुंआ तालाब नदी में कूदकर स्नान न करें। नाटक सिनमा संगीत तमाशा मेला वगैरह में देखने न जावें। मुंह से भद्दे वचन नहीं कहे ( बोले )। वचनों से ही मनुष्यों की हीन जाति और उत्तम जाति वालों की परीक्षा और प्रामाणिकता होती है।

**न जार जातस्य ललाटशृङ्गं, न कुले प्रसूतस्य न पादपद्मं ।**
**सदा यदा मुञ्चितवाग्विलासं, तदातदा तस्य कुल प्रमाणं ॥**

**अर्थ**—उत्तम जाति वालों के और नीचे कुल वालों के किसी प्रकार की मुद्रा कहिए मुहर नहीं लगाई गई है, जिससे उनकी पहिचान हो जावे। परन्तु वे जैसे २ बोलेंगे लोग फौरन उनकी पहिचान कर लेंगे कि यह इस कुल का है। इसलिये अव्रतियों को चाहिये जिन्होंने पापाचरण को छोड़ देना चाहा है वे ऐसे शब्दों का प्रयोग और आचरण बनावे जिससे आत्म कल्याण के मार्ग से वंचित न होना पड़े।

देखो शब्द वर्गणा में इतनी ताकत है कि सांसारिक जितने भी वशीकरण मंत्र हैं वे सब शब्दों से ही सिद्ध होते हैं। देखो जिनेन्द्र भगवान का सब संसार दास हो जाता है वह सब शब्द का ही माहात्म्य है। जिस पुरुष ने अपने वचनों में दूषण लगा लिया उसने अपना सर्वस्व खो दिया। अत प्राण जाने पर भी अपशब्द का प्रयोग न करो।

व्रतियों को चाहिए कि अपने पास चमड़े का कोई भी सामान नहीं रखे और दो घड़ी दिन चढ़े और दो घड़ी दिन रहे उसके बीच में अपनी एक बार खानपान की व्यवस्था करे चटाई पर ही सोवे। सिद्धान्तों में व्रतियों के षट् कर्तव्य बतलाये हैं उनमें सदा तत्पर रहे और शिथिलाचारी न आने दे।

लघुशङ्का दीर्घशङ्का जावे या भोजन करे, कहीं आवे या जावे तब ६ बार णमोकार मन्त्र का जाप करे।

गृहवासी व्रतियों के छहकोटी से और गृहत्यागियों के व्रत ६ कोटि से हुआ करते है, इनमे दूषण न लगावे।

देशव्रति को टालने योग अन्तराय—

मासरक्तादिचर्मास्थि, पूयदर्शनतस्त्यजेत्।
मृताङ्गी वीक्षणादन्नं, प्रत्यक्षानुसेवनात् ॥१॥
मातङ्गस्य पचादीनाम्, दर्शने तद्वचः श्रुतौ।
भोजनं परिहर्तव्य, मलमूत्रादि दर्शने ॥२॥

**अर्थ**—नीचे लिखे अन्तराय टालकर भोजन करना चाहिये १ मांस का देखना। २ चार अंगुल प्रमाण खून की धारा। ३ गीला चमड़ा। ४ गीली हड्डी। ५ खराब लहू (पीव)। ६ भोजन मे त्रस जीव का कलेवर। ७ बड़ा त्रस जीव का शरीर। ८ त्यागी हुई वस्तु का भक्षण कर लेना। ९ चांडाल पणे का स्वरूप देखना चाहे चोर उत्तम कुली ही क्यों न हो। १० चांडाल शब्द हो (क्रोध युक्त)। ११ मलमूत्रादि का देखना। इनके अलावा और भी जैसे बाज या और भी अशुद्ध पदार्थ हो, इन से भोजन का सर्वथा त्याग होता है।

इनका पृथक् २ खुलाशा इसप्रकार समझना चाहिये।

१ कुछ पदार्थ देखने से, २ स्पर्श करने से, ३ कुछ शब्द सुनने से, ४ तथा अपने मन मे ग्लानि आ जाने से भोजन छोड़ दे।

**१ देखने से**—मांस, मदिरा, गीला चमड़ा, गीली हड्डी, चार अँगुल प्रमाण रक्तधारा, जीवों की हिंसा, गीला पीव, पंचेन्द्रिय का बड़ा शरीर, मल, मूत्रादि, देखने से अंतराय हो जाता है।

**२ स्पर्श करने से अंतराय**—गीला चमड़ा, भिष्टा, मूत्र, मुरदा, पंचेन्द्रिय नीच पुरुष, मद्य मांस का सेवन करने वाले या पशु से, रजस्वलास्त्री से, भोजन मे बाल रोमादि के निकलने से, पक्षियों के पङ्ख भोजन में होने। इत्यादिकों के स्पर्श से भोजन त्याग देना चाहिये।

**३ सुनने से अन्तराय**—मांस, मदिरा, हड्डी, शब्द मारो मारो, काटो काटो इत्यादिक कठोर शब्द, अग्नि लाना, या और भी कोई उपद्रवों की आवाज, करुणा जनक रोने की आवाज, स्वचक्र पर चक्र का आक्रमण, धर्मात्मा पुरुषों या स्त्रियों पर उपसर्ग, मनुष्यों के मरने की आवाज, जिनधर्म, जिनबिम्ब, जिनवाणी, जैन साधुओं पर उपसर्ग या अनादर या किसी अपराधी को फाँसी की सजा, चांडाली शब्दों का सम्बन्ध सुनने से अंतराय होता है।

**४ मन में विकल्प होने से**—भोजन करते समय ऐसा विचार आ जावे कि अमुक पदार्थ मास, विष्टा, रुधिर, पीव, के समान है ऐसी ग्लानि हो जावे, भोजन के समय मलमूत्र की बाधा हो जावे, भोजन मे ऐसी शंका हो जावे कि यह मेरे भक्षण योग्य है या नहीं, इत्यादि विकल्पो के मन मे आ जाने से भोजन मे अन्तराय हो जाता है। इसी प्रकार के और भी अन्तराय होवे सो सब टालने योग्य होते है।

व्रतियों को कब २ मौन रखना चाहिये—

**मौन भोजनवेलायां, ज्ञानस्य विनयो भवेत्।**
**रक्षणं चाभिमानस्य, सुदिशन्ति मुनीश्वराः॥१॥**

**दहनं मूत्रणं स्नानं, पूजनं परमेष्ठिनाम् ।**
**भोजनं सुरतं स्तोत्रं, कुर्यान्मौनसमायुतम् ॥२॥**

**अर्थ**—भोजन करते समय मौन रखने से ज्ञान का विनय होता है। भोजन की लम्पटतारूप नहीं करने से अभिमान की रक्षा होती है, ऐसा मुनिश्वरों ने कहा है। अग्निदहन, मलमूत्र क्षेपण, स्नान समय, पंच परमेष्ठी की पूजा के समय, सामायिक, स्तवन करते समय और भी धर्म आवश्यकों के समय, भोग करते समय मौन रहना चाहिए।

**प्रश्न**—ऊपर बताये हुए स्थानों में से परमेष्ठी पूजन करते समय तथा स्तोत्र समय कैसे मौन रखा जावे ?

**उत्तर**—निम्न प्रकार है—

**अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितोदुस्थितोऽपि वा ।**
**ध्यायेत्पंचनमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥**

**अर्थ**—अपवित्र हो या पवित्र हो, स्वस्थ हो या अस्वस्थ, कोई भी कैसी भी अवस्था में हो, यदि वह पंच नमस्कार रूप भगवान् का नाममन्त्र का स्मरण करता है तो सर्व पापों से छूट जाता है। अनेक प्राणी अनादिकाल से इस मन्त्रराज के जपने मात्र से जन्मान्तरों के पाप से छूट गये हैं। ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं।

**अंजन चोर पातकी ढोर, जप्यो मन्त्र मन्त्रन सिरमोर ।**
**महाकुष्ट दंडक बहु जीव, जपत मन्त्र हुए शिवपीव ॥१॥**

पंचनमस्कार मंत्र का जाप हर हालत में किया जासकता है। विपरीत कार्यो के लिए मौन बतलाया है। धर्म कार्यों के लिए नहीं बतलाया।

**प्रश्न**—रजस्वला होने पर स्त्री क्या करे ? सो कहो।

**उत्तर**—यहाँ पर दो मार्ग बतलाये है। एक राजमार्ग, दूसरा अपवादमार्ग। रजस्वला होने पर स्त्रियों को णमोकार मन्त्र पढ़ने की रोक नहीं है। परन्तु उच्च स्वर से नहीं पढ़े। कारण वह समय स्त्रियों के लिए अशुद्ध माना है।

**प्रश्न**—एक घर म दो स्त्री है। उनमें एकतो बीमार है और दूसरी रजस्वला है, बीमार मरने के काबिल है तब क्या करे ?

**उत्तर**—ऐसे समय पर उस स्त्री का कर्तव्य है कि उस मरने वाली स्त्री का मरण नहीं बिगड़ने दे और नमस्कार मन्त्र का जाप्य सुनावे कारण वह समय अपवादमार्ग का है। हमेशा ऐसा नही करना चाहिए।

**प्रश्न**—धर्म मार्ग बिगड़ने का डर तो है ना ?

**उत्तर**—मोक्षमार्ग सबसे उत्तम है। मनुष्यों को खयाल रखना चाहिए कि सदा मोक्षमार्ग के उपाय योग प्रवर्तन करे, भूले नहीं।

किन कार्यों से जीव सुख पाता है सो बतलाते है—

**वरं व्रतैःपदं देवं, नाव्रतैः वतनारकं।**
**छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान ॥३॥**

इष्टोपदेश

**अर्थ**—अहिंसा आदि महाव्रत तो साक्षात् मोक्ष के दाता हैं ही किन्तु जब तक ऐसी शक्ति न प्रगट हो तब तक यथाशक्ति अणुव्रतों को पाल कर स्वर्गादिक के सुखों की छाया में बैठना और हिंसादि पापों से जनित नरकादि गतियों के दुःख रूपी आताप से बच कर समय बिताना चाहिए। क्योंकि वास्तविक सुख तो स्वर्ग में भी नहीं है। वास्तविक सुख तो मोक्ष में ही है।

**भावार्थ**—तीन मित्र व्यापार करने के लिये विदेश को रवाना हुए। एक शहर की धर्मशाला में जाकर ठहर गये। वहाँ के कार्यों से निवृत्त होकर आगे चले। तब एक को अपना चश्मा धर्मशाला में भूलने की याद आई। वह कहने लगा कि मैं धर्मशाला में चश्मा भूल आया हूं, जब तक मैं उस चश्मे को धर्मशाला से न ले आऊँ तब तक आप दोनों यहीं ठहरें। तब उन दोनों मित्रों में से एक तो वृक्ष की शीतल छाया में बैठ गया और दूसरा तप्तायमान धूप में बैठ गया।

अब विचारिये उन दोनों में किसका समय बिताना सुख स्वरूप है तो उत्तर होगा शीतकाल है तब तो धूप वाले का और ग्रीष्मकाल है तब वृक्ष की छाया वाले का। इसी प्रकार संसार में भ्रमण करने वाले जीव को भगवद्भाषित धर्म का आश्रय लेकर मोक्ष होने के पहिले स्वर्ग व उत्तम मनुष्य भव के सुख रूप व्रतों के अवलम्बन में तत्पर बना रहे, यही शीतल छाया में बना रहना है। तथा अव्रतरूप पापादि के आचरण से होने वाले नरक या तिर्यंचादि गति के दुःख रूप भवाताप से इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग से बचने के लिए श्रावकों के व्रतों का अवलम्बन करना चाहिये जिससे क्रम २ से आत्मा बलवान बने।

सम्यक् व्रतों के बिना संसार में चक्रवर्ती की विभूति भी कुछ कार्यकारी नहीं है तो और की तो बात ही क्या है। देखो सुभौम चक्रवर्ती क्षणभर में ही नरक में चला गया। इसलिए पं० दौलतराम जी छहढाला में कहते हैं—

**धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवे।**
**ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावे ॥१॥**
**कोटि जन्म तप तपै, ज्ञान बिन कर्म झरें जे।**
**ज्ञानीके क्षण मांहि, त्रिगुप्तितैं सहज टरें ते ॥२॥**

छहढाला

**भावार्थ**—हे भव्य पुरुषो ! धन, दौलत, स्त्री, पुत्र, मित्र, कुटुम्ब, परिवार, राजपाट, हाथी, घोड़ा, मकान, जायदाद ये जीव के साथी नहीं हैं, किन्तु संसार की वृद्धि के कारण हैं। शत्रु के समान हैं। यदि इनसे ही भला होता या सुख होता तो तीर्थंकर देव अनुपम राजऋद्धि को छोड़ कर मुनिपद धारण क्यों करते ? इन पदार्थों से किसी का भला न हुआ है और न होगा ही।

ज्ञानरूपी धन से ही सर्व जीवों का भला हुआ है, होता है तथा होगा। इसलिए ज्ञान आराधन करना ही श्रेयस्कर है। अतः सब पुरुषों का यानि व्रतियों का कर्त्तव्य है कि ऊपर लिखे हुए कर्त्तव्यों को ठीक ठीक रूप से निभावे तब ही सब प्रकार आत्मशुद्धि होगी। परन्तु इस बात का ख्याल रक्खे कि—

**यदन्नं भक्षयेन्नित्यं, जायते तादृशी च धीः।**
**दीपो भक्षयते ध्वान्तं, कज्जलं च प्रसूयते ॥१॥**

**अर्थ**—यह प्राणी जैसा अन्न खायेगा वैसी ही उसकी बुद्धि हो जावेगी। जैसे दीपक अन्धकार को खाता है तो फिर अन्धकार ही उगलता है। इस लोक में ऐसी भी कहावत प्रसिद्ध है कि—

**जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन।**
**जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी॥**

**अर्थ**—व्रतों का शुद्धरूप से पालन होता रहेगा तो ज्ञान भी स्फुरायमान होता रहेगा। इसलिए अपनी शक्ति को न छिपा कर निरंतर निजकर्तव्य का ठीक २ पालन करना चाहिए। इस विषय मे और भी कहा है—

**अनंतशास्त्रम् बहुलाश्चविद्या, अल्पश्चकालोबहुविघ्नता च।**
**यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥**

**अर्थ**—हे भव्य पुरुषो! ज्ञान तो द्वादशांग रूप अपार है और आयु थोडी है। उसमे भी अनेक विघ्न आते रहते है। इसलिए इस थोड़े समय का भी सदुपयोग करके जो सारभूत आत्मा के कल्याण का कारण है, उस ज्ञान को प्राप्त करना ही चाहिए। जैसे हंस के सामने दो सेर दूध रक्खा जावे तो उसमे से अपने योग्य दूध २ को ग्रहण कर लेता है और शेष रहने वाले को छोड़ देता है। इसी तरह व्रती अपने कल्याण के मार्ग को खोज कर ग्रहण करता है और पापरूप पथ का परिहार कर देता है।

**यह राग आग दहे सदा तात समामृत सेईये।**
**चिरभजे विषय कषाय अबतो त्याग निजपदवेइये॥**

छहढाला

कहने का तात्पर्य यह है कि ससाररूपी राग को शात कर आत्मरूपी भावों के समामृत का पान कर चिरकाल तक विषय सेवन किये, अब तो उनका त्याग करो और शान्ति भजो। अन्यथा पत्थर की नाव की तरह डूब जावोगे। फिर कुछ नहीं होगा।

भगवान् नेमीचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती गोमटसार कर्मकांड मे कहते हैं—

**चत्तारि विखेत्ताइं आउगबंधेण होई सम्मत्तं।**
**अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्त ॥३४॥**

**अर्थ**—चारों ही गतियों मे किसी भी आयु के बन्ध होने पर सम्यक्त्व हो जाता है। परन्तु देवायु के बन्ध के सिवाय अन्य तीन आयु के बन्धवाला जीव अणुव्रत तथा महाव्रत धारण नहीं कर सकता। क्योंकि महाव्रत के कारणीभूत विशुद्ध भाव उत्पन्न नहीं होते। इन व्रतों का ऐसा ही माहात्म्य है।

जो अणुव्रतों को ग्रहण कर छोड़ देते है उनकी स्थिति बतलाते हैं—

**भरये पंचम काले जिण मुद्राधार ग्रन्थ सव्वसे।**
**साडे सात करोर जाइये निगोय मज्जमि ॥१॥**

योगसार पाहुड़

**अर्थ**—इस भरत क्षेत्र मे इस पचमकाल के निमित्त से परिग्रह लोभ को धारण कर दिगम्बर या दिगम्बर उपासक कहला कर साड़े सात करोड़ जीव निगोद के पात्र होंगे। क्योंकि परिग्रह लोभी दिगम्बर सम्प्रदाय मे इस पंचमकाल के माहात्म्य

से विषय कषाय के लोभ में जीव फस कर दुखी होंगे ऐसा सिद्धान्त है।

सिद्धान्त मे यह भी बतलाया गया है कि इस भरत क्षेत्र मे ऐसे भी जीव उत्पन्न होंगे जो कि यहाँ मे मर कर सीधे विदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर नव वर्ष बाद केवल ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष चले जावेंगे।

**जीवासयतेइसा पंचम कालेय भद्दपरिणामा।**
**उप्पाइयु विदेहे नवमई वरसे दु केवली होदि॥**

योगसार पाहुड़

**अर्थ**—इस पंचमकाल मे इस भरत क्षेत्र म भद्र परिणामी पुण्यात्मा कहीं से आकर उत्पन्न होंगे और उनकी शक्ति के अनुसार धर्म साधन कर अपनी आत्मा को स्वल्पकर्मी बनाकर मनुष्य आयु के निमित्त से एकसोतेईस जीव महा विदेह क्षेत्र मे जाकर जन्म लेकर नव वर्ष के अन्दर केवलज्ञान प्राप्त करेंगे।

इनका खुलासा इस प्रकार से है। पचमकाल की मर्यादा २१००० वर्ष की है। आचार्यो ने इसके सात भेद बतलाये है। और प्रत्येक भाग तीन २ हजार वर्ष का है। इसका खुलासा इस प्रकार है—

पहिला भाग के ३००० वर्ष मे ६२ भद्रपरिणामी केवलज्ञान पैदा करेंगे। दूसरे भाग के ३००० वर्ष मे ३१ जीव, तीसरे भाग के ३००० वर्ष मे १६, चौथे भागके ३००० वर्ष मे ८, पांचवे भाग के ३००० वर्ष मे ४, छठे भाग के ३००० वर्ष मे २ और सातवें भाग के ३००० वर्ष मे १ जीव केवलज्ञान पैदा करेंगे।

इस प्रकार इस पंचम काल के २१००० वर्षों में इस भरत क्षेत्र के जन्मे हुए जीव क्रम से विदेह क्षेत्र में जाकर अपने आत्म कल्याण के मार्ग मनुष्य पर्याय में जो भद्रता रक्खेंगे वो सदा सुखी होंगे।

देखो इस पंचम काल में भी इस मनुष्य पर्याय का कितना बड़ा माहात्म्य बतलाया है। इस जीव को ये मनुष्य पर्याय कितनी दुर्लभ है सो ही आचार्य नीचे बतलाते हैं—

**साधिक द्वयब्धिसहस्रं स्थिति जीवानां व्यवहारे।**
**तस्मिन्नेव अष्टचत्‌ प्राप्नोति त्रिवेद पर्यायाः ॥१॥**

सारबिन्दु

**अर्थ**—यह जीव संसार सागर में त्रस पर्याय में दो हजार सागर तक रहता है विशेष नहीं रहता। इसमें इसको मनुष्य की ४८ पर्यायें ही मिलती है, ज्यादा नहीं मिलती। जिसमें १६ तो पुरुष पर्याय, १६ स्त्री पर्याय और १६ नपुंसक पर्याय मिलती है। सो हमें यह मालूम नहीं कि हमारी कौनसी पर्याय है। अगर अखीरी की पर्याय हुई तो अब मनुष्य पर्याय मिल नहीं सकती और संसार में डूब जाओगे। इससे यह मनुष्य पर्याय प्राप्त करना महान दुर्लभ है। अतः श्री गुरुओं के संयम धारण करने के उपदेश को धारण करो।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप

**जो कुणई काउसग्गं, बारस आवर्त संजुदोधीरो।**
**णमुण दुगपि कुणंतो, चदुप्पणामो पसण्णप्पा ॥१॥**
**चिंततो ससरूव जिणबिंबं, अहव अक्खरम् परमं।**
**झायदि कम्मविवायं, तस्स वयं होदि सामइयं ॥२॥**

**अर्थ**—सम्यग्दृष्टि श्रावक बारह आवर्त सहित, चार प्रणाम सहित दो नमस्कार करता हुआ प्रसन्न है आत्मा जिसकी ऐसा घोर दृढ़ होता हुआ कायोत्सर्ग करता है और वहाँ पर अपने चैतन्यमात्र शुद्ध स्वरूप को ध्याता हुआ चिन्तवन करता रहता है। एवं श्री जिनबिम्बों का चिन्तवन करता है अथवा पंचपरमेष्ठियों के वाचक णमोकार मन्त्र का ध्यान करता है तथा कर्मोदय में रस जाति का चिंतवन करता है। उसके सामायिक प्रतिमा हुआ करती है।

सामायिक के भेद और उनका स्वरूप

आचार्यों ने सामायिक के दो भेद माने है। १ द्रव्यसामायिक, २ भाव सामायिक। इनका पृथक् २ खुलासा करते है—

१ **द्रव्य सामायिक**—जो शरीरमात्र से चेष्टा की जावे।

२ **भाव सामायिक**—आत्मा का चिंतवन भावों द्वारा किया जावे।

अब द्रव्य सामायिक का विशेष स्वरूप बतलाते है—

सामायिक दिन व रात्रि मे गृहस्थों को, ब्रह्मचारियों को, क्षुल्लकों को व ऐलकों को तीन बार करनी पड़ती है और संयमी मुनियों को चार बार करनी पड़ती है। व्रत प्रतिमा मे सामायिक व्रत है सो एक बार, दो बार या तीन बार भी कर सकते है, दोष नहीं है। हाँ सामायिक प्रतिमा मे नियम से तीनों समय सामायिक करना आवश्यक है अन्यथा उसकी प्रतिमा में दूषण है।

सामायिक के योग्य स्थान

**गिरिकंदराविवरशिलालयेषु, गृहमन्दिरेषुशून्येषु ।**
**निर्दंशमशकानिर्जनस्थानेषु, ध्यानमभ्यसत ॥६॥**

ज्ञानसार

**अर्थ**—पर्वत की गुफा हो, पर्वत पर मठ एवं मन्दिर हो तथा शून्य स्थान हो। जहां पर डांस मच्छर न हों। निर्जन स्थान हो, वहाँ पर सामायिक एवं ध्यान करना चाहिए।

**एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।**
**चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥७७॥**

**अर्थ**—परीषह उपद्रव, आदि से रहित, स्त्री, नपुंसक, और पशु आदि के शब्दों से रहित निर्जन स्थान में एवं वनों में जहा पर चित्त में व्याक्षेप अर्थात व्याकुलता उत्पन्न न हो ऐसे स्थान में या चैत्यालयों में अथवा तालावों के तट पर सामायिक करना चाहिए।

परीषह आने पर चित्त में क्षोभ नहीं करना चाहिए। धीरतापूर्वक सहन करे यानि दृढ़ता से सामायिक करे, चलायमान नहीं होवे।

अब द्रव्यसामायिक करने की विधि बतलाते हैं—

सामायिक के लिए पूर्व और उत्तर ये दोनो दिशाये शुभ मानी है। पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके खड़ा होवे और दोनो हाथों को नीचे की तरफ लम्बा करके नव बार णमोकार मन्त्र का जाप करे तथा दोनों हाथों को मिला कर तीन बार आवर्त करे पश्चात् अपने सिर को (माथे को) नवाकर शिरोनति करे तथा जमीन पर बैठकर नमस्कार करे।

उसके बाद विचार करे कि पूर्व दिशा सम्बन्धी जो जिन भगवान् के कृत्रिम चैत्यालय एवं मुनि व आर्यिका हों उनको मेरा बारम्बार नमस्कार हो। इसी प्रकार चारों (पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर) दिशाओं मे भी ६ जाप ३ आवर्त एव शिरोनति सहित विचार करे। बाद मे पांचवीं बार पूर्व दिशा की तरफ होकर नमस्कार करे। आपसे जैसा आसन लगे वैसा लगाकर चित्त को स्थिरता मे रक्खे। फिर पाताललोक सम्बन्धी चैत्यालयों को नमस्कार करे। पश्चात यह विचार करे कि मैं अज्ञानी हूं जहां पर बैठा हूं यहॉ पर जिन भगवान हों तो उनको मैं मन, वचन, काय से नमस्कार करता हू और क्षमा प्रार्थी हूं क्योंकि मुझसे यहां बैठने से चैत्यालयो के अविनय का पापाश्रव न हो और फिर अपने शरीर से कपड़े व दागीना उतारने के है उतार दे नहीं उतारने के हो उनसे ममत्व न रक्खे। शेष द्रव्य का नियत समय तक के लिए सर्वथा त्याग कर समायिक मे बैठ जावे।

सामायिक मे बैठते समय इतना और विचार करे कि मैं सामायिक से उठते समय पर भाग्यवसातकाल चक्र आजावे तो साड़े तीन २ हाथ जमीन के अलावा मेरे सब का त्याग है, ऐसा सकल्प करे। पश्चात् सामायिक के बाद यदि आयु कर्म रहे तो फिर मेरे त्याग नहीं है। इस प्रकार विचार कर सामायिक मे बैठना चाहिए और बैठकर अपने आत्मस्वरूप का विचार करना चाहिए।

सामायिक के समय क्या विचार करना चाहिए—

**कोऽहं कीदृग्गुणः क्वत्यः, किंप्राप्यं किं निमित्तकः।**
**इत्यूहः प्रत्यहं नोचेदस्थाने हि मतिर्भवेत् ॥७८॥**

छत्रचूड़ामणि

अर्थ—मैं कौन हूं, मुझ में क्या २ गुण हैं और मैं कहां से आया हूं एवं क्या प्राप्त कर सकता हूं, मैं किस निमित्त के लिए आयाहूं। यदि इस प्रकार प्रतिदिन विचार करे या होता रहे तो निश्चय से मनुष्यों की बुद्धि योग्य स्थलों पर पहुंच जाती है। हमे मालूम हो जाता है कि बुराई कौनसी है, जिसे छोड़ा जावे। तात्पर्य यह है कि अयोग्य कर्त्तव्यों से निवृत्ति करके और शुभ कर्मों में प्रवर्तन करके मनुष्य पर्याय को सार्थक बनावे।

आगे और भी इसी विषय पर बताते हैं—

**रागद्वेषविनिर्मुक्तो ध्यायति यो निजात्मनः।**
**गच्छति स्वस्वरूपं स वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥१॥**

अर्थ—जो प्राणी रागद्वेष से रहित होकर अपनी आत्मा का ध्यान करता है वह आत्मस्वरूप को शीघ्र प्राप्त कर लेता है, ऐसा मुनीश्वरों ने कहा है। यदि उल्लिखित प्रकार से आत्म चिन्तवन करना नहीं जानता हो तो जो पाठ कंठस्थ हो उसे स्वयम् या पुस्तक से पढ़े।

जितने समय तक (उत्तम छह घड़ी, मध्यम चार घड़ी, जघन्य दो घड़ी की) मर्यादा ली हो उतने समय तक निराकुल होकर स्थिरता के साथ सामायिक करे।

कितने ही लोगों का कहना है कि सामायिक करने में चित्त नहीं लगता इधर उधर दौड़ता है उसे रोकना कठिन है। उसके लिए कुछ थोड़ी सी निम्न प्रकार से विधि बताते है, इससे मनका वेग अवश्य रुक सकेगा।

जब तक सामायिक करो चित्त को जप से अन्यत्र न जाने दो। जपन के साथ उपयोग बनाये रक्खो। बुद्धि पराक्रमपूर्वक

स्थिर करो। उस समय एक कमल की रचना रूप प्रयोग हृदय पर रक्खो और णमोकार मन्त्र तथा चार आराधनाओं का उसमें स्मरण करना आरम्भ करदो जिससे चित्त को संतोष पहुंचेगा, मनोवृत्ति इधर उधर घूमती न फिरेगी।

कमलाकार यन्त्र की रचना इस प्रकार है।

इस यंत्र मे नवकोठे बतलाये गये हैं जिनमे नव कोठों में १ अर्हन्त, २ सिद्ध, ३ आचार्य, ४ उपाध्याय, ५ सर्व साधु, ६ सम्यग्दर्शन, ७ सम्यगज्ञान, ८ सम्यक् चारित्र और ९ सम्यग्तपसे नम। इस प्रकार अपने हृदय के बीचोंबीच में इस कमल की स्थापना करो जिसका नमूना ये है।

| | | |
|---|---|---|
| ॐ सम्यादर्शनाय ६ नम. | ॐ णमो सिद्धाणं २ | ॐ सम्यग्ज्ञानाय नम ७ |
| ॐ णमो लोए सव्वसाहूण ५ | ॐ णमो अरहताण १ | ॐ णमो आइरीयाणं ३ |
| ॐ सम्यक्तपसे नम ९ | ॐ णमो उवज्झायाणं ४ | ॐ सम्यक् चारित्राय नम ८ |
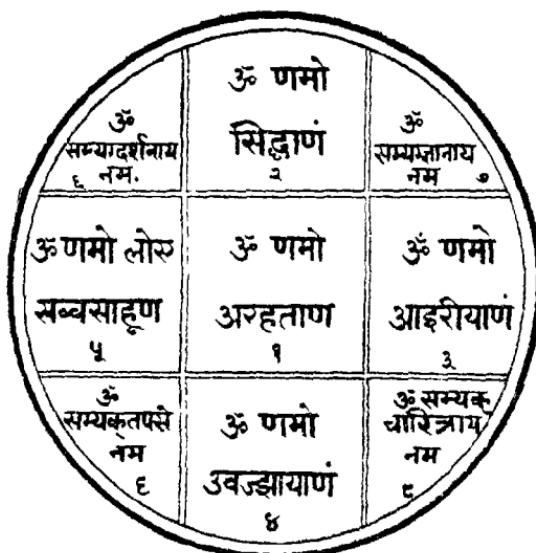
इस प्रकार कमलाकार इस यन्त्र रूपव्यवस्था के कोठों की नामावली का जप करना यानि ध्यान लगाना चाहिये। इन

कोष्टकों के शब्दों के कहने का क्रम निरंतर रखो तो अड़तालीस मिनट ४८ में १०८ नाम पूर्ण रीति से जपे जायेंगे जिससे चित्त स्थिर रहेगा।

यदि चित्त में किसी प्रकार की गड़बड़ी रहे तो बहुत शांति के साथ सम्भालते रहना चाहिये। जिससे चित्त शनै. शनैः प्राचीन अभ्यास को छोड़कर स्थिरता धारण करले। आपको शांति के इस प्रयोग से चित्त मे अवश्य कुछ स्वस्थता आवेगी। और इस प्रकार के जाप से सामायिक भी होगा तथा शांति भी मिलेगी एवं अभ्यास से कुछ समय बाद यह शाँतिदायक प्रयोग भी सम्पन्न हो जावेगा। संसार चक्र से हटकर चित्त आत्मिक सुख एवं अनुभव का भी कुछ लाभ कर सकेगा।

सामायिक के समय किस २ प्रयोग की जरूरत है सो बताते है—

**योग्य कालासनं स्थानं मुद्रावर्तशिरोनतिः।**

**विनयेन यथाजातः कृतिकर्मामलं भजेत् ॥ १ ॥**

अर्थ—सामायिक के लिये योग्य समय (पूर्वाह्न काल, व मध्यान्ह काल, तथा अपराह्न काल) आसन जैसे चौरासी बतलाये गये हैं उनमें से जिससे ध्यान स्थिर रहे वोही आसन चाहिये। जैसे पद्मासन, खड्गासन अर्धपर्यंकासन या और भी किसी प्रकार का हो। ध्यान करने की मुद्रा भी अनेक प्रकार की मानी गई है परन्तु सबसे उत्तम नाशिका के ऊपर दृष्टि रखना ही ध्यान दृष्टि कहलाती है। सोई ध्यान मुद्रा है। आवर्त और शिरोनती भी पहले बतला चुके हैं,

विनय सहित जिस प्रकार नग्न रूप बालक कषायों से रहित भावना सहित होता है, उस प्रकार होकर मन से सावद्य क्रिया रहित स्थिरता से रहे।

सामायिक के भेद

आचार्यों ने सामायिक के अनेक भेद माने हैं। देखो मूलाचार के कर्ता आचार्य वट्टकेर स्वामी ने सामायिक को षडावश्यक में माना है सोही बताते हैं—

**सामाइय चउवीसत्थव, वंदणयं पडिक्कमणम्।**
**पच्चक्खाणं च तहा काओसग्गो हवदि छट्ठा॥५१६॥**

मूलाचार

अर्थ—१ सामायिक, २ चतुर्विंशतिस्तव, ३ वंदना, ४ प्रतिक्रमण, ५ प्रत्याख्यान, ६ कायोत्सर्ग—ये षट् आवश्यक हैं।

**१ सामायिक**—अपनी आत्मा अनादिकाल से परद्रव्य के निमित्त से रागी द्वेषी होकर संसार में भ्रमण करती फिरती है उन राग-द्वेष के भावों से दूर कर इसको आत्म स्वभाव में रत करना ही सामायिक का सामान्य लक्षण है।

**२ चतुर्विंशतिस्तव**—वर्तमान कालिक तीर्थंकरों के नाम की नियुक्ति रूप भूतकालिक एवं वर्तमान कालिक गुणानुवाद करना स्तुति करना सो चतुर्विंशतिस्तव है।

**३ वन्दना**—तीर्थंकरों में से किसी तीर्थंकर के नाम से या सब नाम से वन्दना नमस्कार करना वन्दना है।

**४ प्रतिक्रमण**—प्रथम सामायिक काल के पश्चात् जब तक दूसरा सामायिक समय आवे उसके बीच के समय में जो

कुछ कार्य करने मे दूषण लगा हो उसका विचार करना ( शोधन करना ) प्रतिक्रमण है।

**५ प्रत्याख्यान**—प्रथम सामायिक के समय से दूसरे सामायिक के मध्यकाल में दूषण लगा हो उसका पश्चाताप पूर्वक चिन्तवन करना और कहना कि भविष्य मे ऐसा नहीं करूंगा तथा फिर वैसा नहीं करना सो प्रत्याख्यान है।

**कायोत्सर्ग**—जो मन, वचन, काय के निमित्त से पूर्व प्रत्याख्यान मे दोष विदित हुए हों उनकी निवृत्ति के लिए प्रायश्चित रूप कायोत्सर्ग करना कायोत्सर्ग है।

सामायिक के अन्य प्रकार से ६ भेद—

**णामट्ठवणादव्वे खेत्ते काले तहेव भावे य।**
**सामाइयह्मि एसो णिक्खेओ छव्विओ णेओ ॥५१८॥**

मूलाचार

**अर्थ**—सामायिक मे भी निम्न प्रकार से छह प्रकार का निक्षेप होता है। १ नाम, २ स्थापना, ३ द्रव्य, ४ क्षेत्र, ५ काल, और ६ भाव।

इनका संक्षेप से स्वरूप इस प्रकार है:—

**१ नाम सामायिक**—शुभ और अशुभ रूप जो नामों की नियुक्ति है, उसमें राग द्वेष नहीं करना।

**२ स्थापना सामायिक**—सामायिक में स्थित होने के पश्चात् कोई दुष्ट जीव किसी जीव को बाण आदि के प्रयोग से मारे और वह जीव मय शस्त्र व अस्त्र के अपने आसन के पास आ पड़े तब भी सामायिक से चलायमान नहीं होना।

**३ द्रव्य सामायिक**—भलेप्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र व तप सहित आत्मा को इन्हीं में रत रखना, आत्मपरिणति से चलायमान नहीं होने देना, यदि चलायमान हो जावे तो उसे पुरुषार्थ द्वारा रोकना पुनः आत्म परिणति में रत करना, ठहराना सो द्रव्य सामायिक है।

**४ क्षेत्र सामायिक**—ग्रीष्म काल या शीतकाल सम्बन्धी कोई बाधा उत्पन्न हो जावे या मनुष्य या देव अथवा पशुओं के द्वारा कोई उपसर्ग की बाधा उपस्थित हो जावे तब यह विचारना चाहिये कि यह शरीर तो विनश्वर ही है, एक बार अवश्य विनाश होगा ही। फिर इसके विनाश के भय से मैं जो सामायिक की प्रतिज्ञा ले चुका हूँ उससे क्यों चलायमान होऊं? यदि मैं चलायमान हो जाऊंगा तो अन्य धर्मात्मा मुझको विचलित देखकर अस्थिर कहेंगे और हसेंगे तथा धर्म में भी क्षति होगी। देखा देखी अन्य लोग भी सामायिक में दृढ़ नहीं रहेंगे। ऐसा विचारना और चलायमान नहीं होना सो क्षेत्र सामायिक है।

**५ काल सामायिक**—यम नियमों से रहै, रंचमात्र भी चलायमान नहीं होवे और जितने समय पर्यन्त सामायिक करने का नियम किया है, उतने समय तक स्थिर रहे। सामायिक का उत्कृष्ट काल ६ घड़ी, मध्यम काल ४ घड़ी, जघन्य काल दो घड़ी होता है। एक घड़ी २४ मिनट की होती है।

**६ भाव सामायिक**—जब आत्मा विचार करने लगे तब ऐसा विचार हो जावे कि जहां पर मेरा आत्मा है वहाँ पर पौद्गलिक राग द्वेष आदिक जड़ पदार्थ है ही नहीं। मेरा

आत्मा इन राग द्वेषादि से पृथक् है। अभ्यास करते २ ऐसे भाव शीघ्रता से जमने लग जावें। आचार्यों ने इसे ही भाव सामायिक कहा है और इसे ही परमोत्त उपादेय कहा है।

सामायिक षटकारकों सहित भी होती है आचार्य ऐसा भी बताते हैं कि १ कर्ता सामयिक, २ कर्म सामायिक, ३ करण सामयिक, ४ सम्प्रदान सामायिक ५ अपादान सामायिक, ६ अधिकरण सामयिक।

आगे विशदरूप से प्रत्येक को बताते हैं—

**१ कर्ता सामायिक**—मैं अपनी आत्मा को अपने द्वारा अपने आत्म स्वरूप में ही देखता हूँ।

**२ कर्म सामायिक**—मैं अपनी आत्मा को अपने द्वारा अपने आत्म स्वभाव मे ही स्थापित करता हूं।

**३ करण सामायिक**—मैं अपनी आत्मा को अपने द्वारा आत्मा के कर्तव्यों मे ही ठहराता हूं।

**४ सम्प्रदान सामायिक**—मैं अपनी आत्मा के लिये अपनी आत्मा को आत्मस्वभावों मे ही समझाकर ठहराता हूं।

**५ अपादान सामायिक**—मै अपनी आत्मा को राग द्वेष से पृथक् आत्मा मे ही जानता हूँ।

**६ अधिकरण सामायिक**—मैं अपनी आत्मा को राग द्वेष से पृथक् आत्मा में आत्मा को ही समझता हूं। यानि इसको इसके स्वरूप तुल्य समझकर स्थापित रूप से देखता हूँ।

यहां तक जितने सामायिक करने के प्रकार एवं सामायिक क्रियाओं का वर्णन किया है वह सब भाव सामायिक का ही

कथन है। आत्मा तथा मन को स्थिर रखने के लिये ये सब प्रयोग बताये गये है । यह पूर्ण रूप से ध्यान में रखना चाहिये कि आत्मोन्नति भाव सामायिक से ही होगी । आत्म तत्त्व की गवेषणा का मुख्य साधन आचार्यों ने भाव सामायिक ही बतलाया है। संसार में कल्याणकारक वस्तु भाव सामायिक ही है और यदि भाव शुद्ध है तो श्रेयस्कर है। यदि मिथ्या है तो ससार के भ्रमण का कारण है। यानि भ्रमण कराने वाला है।इस भाव सामायिकका भी मुख्य कारण आत्मध्यान है। उस आत्मध्यान के सप्रमाण भेद बताते है.—

ध्यान के भेद

ध्यानं चतुः प्रकारं भणन्ति वरयोगिनः जितकषाया।
आर्तं तथा च रौद्रं धर्मं तथा शुक्लध्यानं च ॥१०॥

अर्थ—कषायों पर विजय प्राप्त करने वाले आचार्यों ने १ आर्त, २ रौद्र, ३ धर्म, और ४ शुक्ल इस प्रकार ध्यान के चार भेद माने हैं।

अब क्रमशः आर्त, रौद्र आदि प्रत्येक ध्यान का कार्य एवं स्वरूप बताते हैं—

गाथा—तम्बोलकुसमलेवण भूषण पियपुत्त चिंतणं अट्टं ।
वन्धणडहण वियाणा मारण चिन्तारउद्दं नाम॥११॥
सुतत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं ।
गय संकल्प विकल्पं सुक्कझाणा मुणेयव्वा ॥ १२ ॥

छाया—ताम्बूल कुसुमलेपन भूषण प्रियपुत्र चिंतनं आर्त्तं।
वन्धन दहन विदारण—मारण चिन्तारौद्र नाम॥११॥

सूत्रार्थ मार्गणानां महाव्रतानां च भावना धर्मं ।
गतसंकल्पविकल्पं शुक्लध्यानं च मन्तव्यम् ॥१२॥

ज्ञानसार

अर्थ—ताम्बूल, कुसुम, लेपन भूषण और प्रियपुत्र एवं प्रियजन तथा पुत्र की चिन्ता करना, आर्त्तध्यान है। रौद्र ध्यान मे बांधने, जलाने, विदारणे एव मारण करने की चिन्ता होती है। धर्म-ध्यान में—सूत्रार्थ मार्गणाओ तथा महाव्रतों की भावना की जाती है। सकल्प और विकल्पों से रहित शुक्ल ध्यान होता है। अब यह बताते है कि किस २ ध्यान से कौन २ सी गति प्राप्त होती है:—

गाथा—तिरियई अट्टेणग णरयगई तह रउद्द झाणेण।
देवगई धम्मेण सिवगइ तह सुक्क झाणेण ॥१३॥

छाया—तिर्यग्गतिः आर्त्तेण नरकगतिः तथा रौद्रध्यानेन।
देवगतिः धर्मेण शिवगतिः तथा शुक्ल ध्यानेन ॥१३॥

ज्ञानसार

अर्थ—आर्त ध्यान से प्राणी तिर्यंचगति मे जाता है, रौद्र ध्यान से नरक गति को प्राप्त होता है, धर्म ध्यान से देव गति और शुक्ल ध्यान से प्राणी मोक्ष को प्राप्त करता है। प्रत्येक ध्यान के चार २ भेद होते है उनमे से पहले आर्त्त ध्यान के ४ चार भेद बतलाते हैं।

अनिष्टयोगजन्माद्यं तथेष्टार्थात्ययात्परम्।
रूक् प्रकोपात्तृतीयं स्यात्निदानात्तुर्यमंगिनाम्

ज्ञानार्णव अध्याय २५ श्लोक २४

**अर्थ**—आर्तध्यान अनिष्टसंयोगज, इष्टवियोगज, पीड़ाचिन्तजात और निदान के भेद से चार प्रकार का है।

प्रत्येक का विशदीकरण निम्नलिखित है—

**१ अनिष्टसंयोगज आर्तध्यान**—दुखदायी स्वरूप अनेक व्याधियों से युक्त शरीर को देखकर क्लेश युक्त होना तथा स्त्री, पुरुष, बांधव, मित्र, नौकर आदिकों के संयोग से तथा अनेक प्रकार के पापी जीवों के सयोग एवं जो अपने से प्रतिकूल हैं उनसे जो संक्लेश परिणामों का होना सो सब अनिष्ट सयोगज आर्तध्यान है।

**२ इष्टवियोगज आर्तध्यान**—अपने किसी इष्ट अर्थात् प्रिय के वियोग से प्राणी के जो संक्लेश परि-णाम हो जाते है। यानि अपनी इष्ट वस्तु जैसे सुन्दर शरीर, गंध, पुष्प, आभूषण, सुखदायिनी स्त्री, पुत्र, बाँधव, मित्र, पड़ोसो, नौकर, पशु आदि के वियोग से जो सक्लेश रूप परिणाम होते हैं सो इष्टवियोगज आर्तध्यान है।

**३ पीड़ाचिन्तवन आर्त्तध्यान**—अनेक प्रकार के भयङ्कर रोगों के प्रकोप से पीड़ा एवं वेदना होती है और जब वह असह्य हो जाती है, चाहे वह अपने शरीर की हो अथवा पर शरीर जन्य हो तब उन व्याधियों के प्रतिकार का यत्न करता है। उनके विफल होने पर जो संकल्प विकल्प परिणामों से संक्लेश होता है सो ही पीड़ाचिंतवन आर्तध्यान है।

**४ निदानबन्धज आर्त्तध्यान**—संयम, तप, व्रत, एवं चारित्र को शास्त्रानुकूल पालन करके आगामी काल के लिये जो विषय सेवन की सासारिक अभिलाषा करना या अन्य किसी

जीव को प्रसन्न करने की अभिलाषा करना यह सब निदान बंधज आर्तध्यान है।

यह आर्तध्यान तिर्यंचगति मे ले जाने का मुख्य कारण है। यह यथायोग्य व्यक्तियों को एवं बुद्धिमानों को नहीं करना चाहिए।

रौद्रध्यान के भेद

**हिंसानन्दान्मृषानंदाच्चौर्यात्संरक्षणात् तथा।**
**प्रभवत्यङ्गिनाँ शश्वदपि रौद्रं चतुर्विधम् ॥३॥**

**अर्थ**—१ हिंसानन्द, २ मृषानन्द, ३ चौर्यानन्द और ४ परिग्रहानन्द इस प्रकार रौद्रध्यान के चार भेद बड़े प्राणियों के होते हैं।

**हिंसानंद रौद्रध्यान**—बहुत से त्रस व स्थावर जीवों का अपने से या अन्य के द्वारा बध बंधन मारण एवं ताड़न करना या दूसरे को ऐसा करते देखकर प्रसन्न होना, एवं ऐसा नियोग मिला देना जिससे अनेक जीवों का घात हो और उसे देखकर प्रसन्न होना सो हिंसानन्द रौद्रध्यान है।

**२ मृषानंद रौद्रध्यान**—स्वयं असत्य कल्पना करना अथवा अन्य पुरुषों के द्वारा कराना या असत्य बातों की सहायता देकर लोगों को झगड़े में फंसा कर प्रसन्न होना और यह कहना कि यह बढ़ा चढ़ा हुआ था अब ठीक हो जावेगा, बिना बोले भी बोल कर झगड़ा बढ़वा कर खुशी होना सो मृषानंद रौद्रध्यान है।

**३ चौर्यानन्द रौद्रध्यान**—स्वयं चोरी मे प्रवृत्त होना एवं चोरी करवाना और चौरी किस २ प्रकार से हो सकती है, ऐसा चिंतवन करना। तथा दूसरों के द्वारा दूसरों की चोरी कराना, सदा चोरी के विचारों को तथा चोरी के उपायों को विचारते रहना, किसी की चोरी होने पर प्रसन्न होते रहना चौर्यानंद रौद्रध्यान है।

**परिग्रहानन्द रौद्रध्यान**— क्रूर चित्त होकर आरम्भ परिग्रह रूप सामग्री का संग्रह करना अथवा अन्य के द्वारा सामग्रीका संचय देखकर प्रसन्न होना परिग्रहानन्द रौद्र ध्यान है।

यह आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान तिर्यचगति और नरक गति का कारण है इसलिये इनको अप्रशस्त जान कर छोड़ देना चाहिए। इन कुध्यानों के कारण जीव अनादिकाल से भ्रमण कर ही रहा है।

बड़ो कठिनता से मनुष्य पर्याय और श्रावक कुल प्राप्त कर एव जिन वाणी का श्रवण कर भी आत्मकष्टदायी इन ध्यानों को जो प्राणी करते ही रहते हैं वे प्राणी मनुष्य पर्याय तथा श्रावकरूपी कुलरत्न को प्राप्त करके व्यर्थ ही खो देते है।

धर्म ध्यान के भेद

गाथा —**एयग्गेण मणंणिरूंभिऊण धम्मं चउव्विहं झाहि।
आणापायविवायविजओ संठाय विचयं च ॥३९८॥**

छाया—**एकाग्रेण मनोनिरुध्य धर्मं चतुर्विधं ध्याय।
आज्ञापायविपाकविचयसंस्थान विचयश्च ॥३९८॥**

मूलाचार पचाचार अधिकार।

अर्थ—हे भव्य जीव तू एकाग्रता से इन्द्रियों के व्यापार को तथा मन के व्यापार को रोक कर एवं वश में करके धर्म ध्यान का चिंतवन कर। उसके निम्नलिखित चार भेद हैं। १ आज्ञाविचय, २ अपायविचय, ३ विपाकविचय और ४ संस्थानविचय।

आज्ञाविचय धर्मध्यान का स्वरूप—

पंचत्थिकायछज्जीवणिकाये कालदव्वमण्णे य।
आणागेज्झे भावे आणाविचयेण विचिणादि ॥३६६॥

अर्थ—आज्ञाविचय नामक धर्म ध्यान से पंचास्तिकाय छह द्रव्य षट जीवनिकाय और काल द्रव्य को सर्वज्ञानुसार ध्यान में लिया जाता है। अर्थात् इस प्रकार चिंतवन किया जाता है कि यह सब पदार्थ सर्वज्ञ वीतरागने प्रत्यक्ष देखे हैं। कभी भी व्यभिचरित नहीं हो सकते क्योंकि अर्हन्त वचन अन्यथा नहीं हो सकते।

अपायविचय धर्मध्यान का स्वरूप

कल्लाणपावगाओ पाओ विचिणादि जिणमदमुविच्च।
विचिणादि वा अपाये जीवाण सुहे य असुहे य॥४००॥

अर्थ— अपायविचय धर्म ध्यान के द्वारा संसार के दुःख कर्मों की पृथक्त्व और सत्ता के लिये शान्ति प्राप्ति का उपाय और जैन धर्म का आश्रय लेकर मोक्ष मार्ग रूप सम्यक् दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र तथा किन किन कारणों से आश्रव बंधका संवर एवं निर्जरा होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है।

आगे अपाय विचय धर्म ध्यान कितने प्रकार के हैं यह बताते हैं। अपाय विचय चार प्रकार का होता है १ पिंडस्थ २ पदस्थ

३ रूपस्थ ४ रूपातीत । इनका भिन्न २ खुलाशा निम्न प्रकार है—

**१ पिण्डस्थ ध्यान**—अपनी आत्मा का शुद्ध चेतना सहित ध्यान करना एवं अनुभव करना । इस ध्यान के पाँच प्रकार के भेद हुआ करते हैं।

**२ पदस्थ ध्यान**—मन्त्र, तंत्रादि समुदाय रूप से अनेक प्रकार जपन किये जाते है । इसके अनेक भेद है । विद्यानुवाद इसका भेद है ।

**३ रूपस्थ ध्यान**—इस स्थान में अपनी आत्मा को चार कर्मों रहित केवलज्ञान सहित समवसरण संयुक्त अरहंत स्वरूप ध्याया जाता है ।

**४ रूपातीतध्यान**—अपनी निजानंदात्मा को अष्ट कर्मो से रहित ( द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नोकर्म रहित ) शुद्ध ( द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मय ) भावात्मा का चिंतवन करना रूपातीत धर्मध्यान कहलाता है । उल्लिखित अभ्यासो से ध्यान मे दृढ़ता हुआ करती है । कहा भी है—

**पिण्डस्थे स्वात्मचिन्तनं पदस्थेमन्त्रवाक्यस्थं ।**
**रूपस्थे सर्वचिद्रूपँ, रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥**

ज्ञानसार

**अर्थ**—पिण्डस्थ ध्यान में स्वात्म चिन्तवन, पदस्थध्यान मे मन्त्र वाक्यों का चिंतवन, रूपस्थ ध्यान मे सर्व चिद्रूप अर-

हन्त स्वरूप का ध्यान और रूपातीत ध्यान में निरञ्जन, निर्वि-
कार शुद्ध चिद्रूप सिद्धस्वरूप आत्माका ध्यान किया जाता है।

पिण्डस्थ ध्यान का विशेष स्वरूप

**पिंडस्थे पंच विज्ञेयाः धारणाः वीरवर्णिताः।**
**संयमी यास्वसंमूढो जन्मपाशान्निकृन्तति ॥३५॥**
**पार्थिवीस्यात्तथाग्नेयी श्वसना वाथ वारुणी।**
**तत्त्वरूपवती चेति विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥३७॥**

अर्थ—पिण्डस्थध्यान के अन्दर भगवान महावीर स्वामी ने १ पृथिवीधारणा २ आग्नेयी धारणा ३ वायु धारणा ४ वारुणीधारणा ५ तत्व रूपवतीधारणा इस प्रकार ये पाँच धारणाये कही है। इनका ध्यान करने से स्वात्मरत संयमी पुरुष अनादिकालीन कर्म बधन को छिन्न करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

अब इन पांचों धारणाओं का भिन्न २ स्वरूप विशुद्ध रूप मे बतलाते है।

## पार्थिवी धारणा का स्वरूप

आसन लगाने के बाद ध्यान मे निम्नरीति से चिन्तवन करना चाहिये, कि यह मध्य लोक क्षीर समुद्र के समान निर्मल जल से परिपूर्ण है। उसके मध्य मे जम्बूद्वीप के समान गोलाकार एक लाख योजन का एक हजार पत्तों का धारण करने वाला, तपाये हुए सुवर्ण के समान चमकता हुआ एक कमल है। कमल के मध्य में ( कर्णिका स्थान में ) पीतवर्ण (स्वर्णाकार) एक

सुमेरुपर्वत है उसके ऊपर पाडुक बन है, उसके बीच में पांडुक शिला पर स्फटिक का एक सफेद सिंहासन है। उसी सिंहासन पर मैं आसन लगाकर बैठा हूँ और मेरे बैठने का उद्देश्य यह है कि पूर्व सञ्चित कर्मों को जला कर अपनी आत्मा को निर्मल शुद्ध बनालूं। इस प्रकार के चिंतवन करने का नाम पृथ्वी धारणा है।

## अग्नेयी धारणा का स्वरूप

पूर्ववत् सुमेरु पर्वत के पांडुक वन की पांडुक शिला के ऊपर स्फटिक सिंहासन पर बैठा हुआ आप स्वयं ध्यानी आगे बढ़ कर अपने नाभि के ऊपर भीतरी स्थान में ऊपर हृदय की ओर उठा हुआ या फैला हुआ सोलह पत्र के सफेद कमल का चिंतवन करे, और उसके बड पत्रों परक्त से पीतवर्ण से लिखे निम्नाङ्कित १६ स्वर का चिन्तवन करे। वे सोलह स्वर इस प्रकार हैं। अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ अं अः।

इस ही कमल के मध्य कर्णिका के बीचों बीच दूसरा कमल अधोमुख वाला (नीचे मुख वाला) अष्ट पत्रों से फैला हुआ चिन्तवन करे। इसके इन अष्ट पत्रों पर क्रमशः काले रंग के अक्षरों से लिखे अष्ट कर्मों के नाम (१ ज्ञानावरण, २ दर्शनावरण ३ वेदनीय, ४ मोहनीय, ५ आयु, ६ नाम ७ गोत्र और ८ अन्तराय) का चिंतवन करे कि ये हरपांखुरीपर ठहरे हुए हैं।

यहां ख्याल करने की बात है कि जो प्रथम कमल बतलाया था उसके बीचों बीच कर्णिका की शक्ल ऐसी होनी चाहिए।

यह यन्त्र प्रथम कमल के बीचों बीच कर्णिका में ऐसा होना चाहिए।
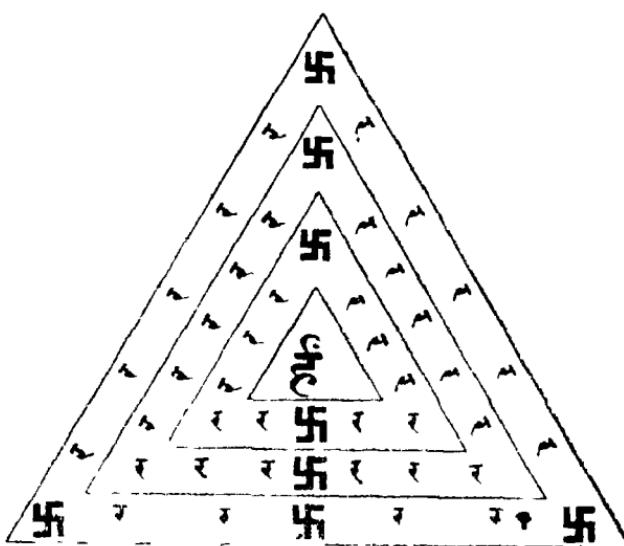
इस प्रकार कर्णिका के र्हं का चिन्तवन करना चाहिए। र्हं का जो रेफ है उसमें से धूम निकलता विचारे। फिर उसमें से अग्नि की शिखा का चिन्तवन करे और यह विचारे कि यह अग्नि की शिखा अष्ट कर्मों के लिखित कमल के आठों पत्तों को जला रही है। पुनः ऐसा विचारे कि अग्नि की ज्वाला बढ़ गई है और सम्पूर्ण शरीर को जला रही है। वह अग्नि इस त्रिकोण रूप तीनों लकीरों में जो अग्नि बीज लिखे हैं र र र ये ही इन अष्ट कर्मरूपी कमल दल को जला रहे हैं।

पुनः त्रिकोष्ठ के बाहर तीनों कोनों पर (साथिया) अग्नि मय लिखा है एवं तीनों कोनों पर ॐ ऐसा अग्निमय लिखा

हुआ है विचारे। फिर विचारे कि भीतर तो अष्ट कर्मोको और बाहर इस पौद्गलिक शरीर को अग्नि मंडल जला रहा है। अग्नि से जलते २ वे कर्म और शरीर भस्म रूप हो गये है। तब अग्नि धीरे २ शांत हो गई। इस प्रकार का चिन्तवन करना सो अग्नेयी धारणा है।

## वायुधारणा का स्वरूप

ध्यानी पुरुष आकाश मे विचरने वाले महा वेग वाले और महा बलवान वायु मंडल का चिन्तवन करे और विचारे कि वायुदेव सेनाओं को साथ लेकर सुमेरु पर्वत को भी चलायमान कर रहा है मेघों के समूह को नष्ट कर रहा है। समुद्र को भी क्षुभित कर दिया है एव समुद्र जगती तल पर पृथ्वी को प्लावित कर रहा है एव मेरे चारों तरफ एक गोला मण्डल बना लिया है। घेरे मे ( मण्डल मे ) आठ स्थान पर "स्वाय स्वाय" वायु बीज लिखा है। और पूर्व ध्यान मे आया हुआ भस्म समूह ( अग्नेयी धारणा मे चिन्तवन किया गया भस्म समुदाय) प्रवल वायु मण्डल ने तुरन्त उड़ा दिया। अनन्तर इस वायु का स्थिर रूप चिन्तवन कर इसको शांत करे। इसको श्वसना धारणा अथवा वायवीधारणा कहते है।

## वारुणीय धारणा का स्वरूप

अनन्तर ध्यानी पुरुष इस प्रकार विचारे कि आकाश मे बड़े २ मेघों के समूह वहुत जोर शोर से उमड़ रहे है, बिजली चमक रही है। बादल गरज रहे है और मूसलधार जल वर्षा रहे हैं। मैं बीच मे बैठा हूं और मेरे ऊपर अर्ध चन्द्राकार वरुण मण्डल ( जल ) प, पे, जल के बीजाक्षरों से बरस रहा है। यह मेरी आत्मा पर लगी हुई धूलि को धोकर साफ कर रहा है। आत्मा को अत्यन्त पवित्र कर रहा है।

## तत्व स्वरूपवती धारणा का स्वरूप

अनन्तर ध्यानी मुनि सप्तधातु रहित पूर्ण चन्द्रमा के आभा वाली सर्वज्ञ समान अपनी आत्मा का चिन्तवन करे कि मेरी आत्मा अतिशय युक्त है, मैं सिंहासन पर आरूढ़ कल्याणक की महिमा सहित हूं और देवदानव धरनेन्द्र नरेन्द्रों से चरणकमल पूजे जा रहे है। अनन्तर अपने शरीर में आठ कर्म (द्रव्यकर्म और नोकर्म रहित) स्फुरायमान प्रगट अतिशय युक्त निर्मल पुरुषाकार अपनी आत्मा का चिंतवन करे। इसे ही तत्वस्वरूपवती धारणा कहते हैं।

इस प्रकार ध्यान करने वाला योगी थोड़े समय में ही अपनी आत्मा को परमात्मा स्वरूप में देखता है और तरण तारण जो मनुष्य भव का कर्तव्य है उससे सुशोभित होकर अनन्त काल तक कृतकृत्य हो जाता है। ये ही मनुष्य भव क प्राप्त करने की सफलता है।

### पदस्थ ध्यान का स्वरूप

**पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।**
**तत्पदस्थं मतं ध्यानं विचित्रनयपारगैः॥**

अर्थ—पवित्र अक्षर रूप पदों का आलम्बन करके धर्मात्मा योगियों द्वारा जो ध्यान किया जाता है उसे आचार्य पदस्थ ध्यान कहते है। अक्षर समुदाय रूप पदों के द्वारा शुद्ध स्वरूप अरहन्त एवं सिद्धों का ध्यान किया जाता है।

### वर्ण अक्षरों के ध्यान की विधि

ध्यान करने वाला जो अक्षरों का ध्यान करता है तो १६

पाखुरी का कमल या ८ पांखुरी का कमल जानना जैसा कि ऊपर बतलाया गया है।

ह्रीं यह बीजाक्षर साक्षात परमात्मपद व चौबीस तीर्थंकरों का स्मरण कराने वाला है।

पंचपरमेष्ठी के ध्यान की वर्णमाला

**पणतीस सोल छप्पण चदु दुगमेगं च जवह झाएह।**
**परमेट्ठि वाचयाणं अएणं च गुरूवएसेण॥**

अर्थ—पंचपरमेष्ठी वाचक ३५ अक्षर व १६ अक्षर, ६ अक्षर, तथा पांच अक्षर, चार अक्षर तथा दो और एक भी रहता है। इनका प्रथक् २ विवरण नीचे लिखे प्रमाण जानना।

## ३५ अक्षरों का ध्यान

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

## सोलह अक्षरों का विवरण

अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहू

## छह अक्षरों का ध्यान

१ अरहंत सिद्ध ये नामपद कहलाता है।
२ अरहंत साहू ये स्थापना पद कहलाता है।
३ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ये भावपद कहलाता है।

**पंच अक्षरों के पद**—अ सि आ उ सा।

**चार अक्षरों के पद**—१ अरहंत (नामपद)। २ अ सि साहू।

**दो अक्षरों का पद**—१ सिद्ध। २ अ सि। ३ ओं ह्रीं।

**एक अक्षर का पद**—ॐ कहलाता है।

**प्रश्न**—इन अक्षरों के सम्बन्ध से ॐ कैसे बना ? कृपा कर बतलाइये।

**उत्तर**—सुनो। द्रव्य संग्रह में बतलाया है—

**अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झायया मुणिणो।**
**पढमक्खरणिप्पणो ओंकारो पंच परमेट्ठी ॥१॥**

**अर्थ**—अरहत का पहिला अक्षर (अ), सिद्ध भगवान् अशरीरी होते है उनका पहिला अक्षर (अ), आचार्यों का अक्षर (आ), उपाध्यायों का पहिला अक्षर (उ), साधुओं को मुनि कहते हैं उनका पहिला अक्षर ( म् ) इस प्रकार पंच परमेष्ठियों के आदि का अक्षर ( अ, अ, आ, उ, म ) हैं इन सबको व्याकरण के नियमानुसार (सन्धि, कर देने से (ओंम) बन जाता है। सो यह ओं पंचपरमेष्ठी का वाचक है।

इसलिये संसार मे इस ओं की ही महत्ता है। इस मंत्र को जैनलोग और हिन्दू लोग ओं के नाम से ध्याते हैं।

पारसी लोग—अग्नि के नाम से (अ) को ध्याते हैं।

मुसलिम लोग—अल्लाह के नाम से (अ) को ध्याते हैं।

ईसाई लोग—जैसा ईसा इसनाम से ध्याते हैं (अ-ई) को कहां तक कहें सबसे उत्तम यह ओं पद जानो।

यह मन्त्र परमेष्ठी वाचक अनन्त जन्मों के पापों का नाश करने वाला हैं। इस मंत्र के जाप से ध्यानी अपनी आत्मा को शुद्ध कर लेता है।

रूपस्थ ध्यान का स्वरूप—

**आर्हन्तमहिमोपेतं सर्वज्ञं परमेश्वरम् ।**
**ध्यायेत् देवेन्द्रचन्द्रार्कसभान्तस्थं स्वयं भुवम् ॥३६॥**

ज्ञानसार

**अर्थ** - रूपस्थ ध्यान में समवशरण की विभूति से युक्त, देवेन्द्र चन्द्र और सूर्यादि से शोभायमान सभा मे सिंहासन पर विराजमान सर्वज्ञ परमेश्वर अरहत वीतराग का ध्यान किया जाता है। इसको विशेष जानना हो तो संयम प्रकाश ६ वां भाग पृष्ठ ८७६ देखिये।

**एषो देवः स सर्वज्ञः सोऽहं तद्रूपतां गतः ।**
**तस्मात् स एवं नान्योहं विश्वदर्शीति मन्यते ॥१॥**

**अर्थ**—जिस समय आत्मा अपने को सर्वज्ञ स्वरूप देखने लगता है, उस समय वह ऐसा मानता है कि जो देव है वह मैं ही हूँ जो सबका ज्ञाता सर्वज्ञ है सो मैं ही हूं और कोई दूसरा नहीं है। इस प्रकार मैं ही साक्षात् अरहंत स्वरूप वीतराग हूं एवं मैं ही परमात्मा हूँ। इस प्रकार की भावना करके उस में स्थिर हो जाना ही रूपस्थध्यान है। इस प्रकार के ध्यान से आत्मा परमात्मा बन जाता है। ये ही मनुष्य पर्याय का मुख्य ध्येय है। अब रूपातीत ध्यान का वर्णन करते है—

पूर्वोक्त रूपस्थध्यान से जिस व्यक्ति का चित्त स्थिर हो गया है। वह प्राणी इस रूपातीत ध्यान को कर सकता है।

रूपातीत ध्यान के बारे मे द्रव्य संग्रह में नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते हैं—

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किं वि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मिरओ इदमेव परंहवे झाणं ॥

अर्थ—ध्यानी अपने मन को निम्न प्रकार से समझावे कि तू कुछ भी चेष्टा मत कर, कुछ वचन भी मत बोल और कुछ चिंतवन न कर। आत्मा को आत्मा में लीन होकर स्थिर हो जा। इस ध्यान के स्थिर करने के लिये निम्नलिखित और भी प्रयोग करना चाहिये—

व्योमाकारमनाकारं, निष्पन्नं शांतमच्युतं।
चरमांगात्किंयन्नूनं, स्वप्रदेशैर्घनैः स्थित ॥२२॥
लोकाग्रशिखरासीन, शिवीभूतमनामयम्।
पुरुषाकारमापन्नमप्यमूर्तन्च चिन्तयेत् ॥२३॥
निष्कलस्य विशुद्धस्य, निष्पन्नस्य जगद्गुरोः।
चिदानन्दमयस्योच्चैः कथं स्यात्पु पाकृतिः ॥२४॥

ज्ञानार्णव अध्याय ४०

अर्थ—आकाश के समूर्त अनाकार पुद्गल के आकार से रहित जिसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता न हो, क्षोभ रहित एवं जो अपने रूप से कभी च्युत न हो, चरम शरीर से किञ्चित् न्यून, नाशिकादिरन्ध्र प्रदेशों से हीन घनीभूत प्रदेशों से स्थित शिवीभूत अर्थात अकल्याण से कल्याण स्वरूप होकर रोगादि पीड़ा रहित पुरुषाकार अमूर्त गंध, स्पर्श, आदिक से विहीन सिद्ध पर्याय का ध्यान रूपातीत ध्यान कहलाता है।

जो परमात्मा निष्कल ( देह रहित ) विशुद्ध ( द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नोकर्म से रहित ) है, जिसमें किसी प्रकार की

हीनाधिकता भी नहीं है वह जगद् गुरू चैतन्य स्वरूप है उसके ध्यान को रूपातीत ध्यान कहते हैं।

**बिन्दुहीनं कलाहीनं रेफद्वितीयवर्जितम्।**
**मनोच्चरत्वमापन्नमनुचार्य विचिन्तयेत् ॥१॥**
**चन्द्ररेखा समं सूक्ष्मं स्फुरन्तं भानुभास्करं।**
**अनाहताभिधं देवं दिव्यरूपं विचिन्तयेत् ॥२॥**

**अर्थ**—रूपातीत ध्यान में बिन्दु ( ० ) अर्थात् चन्द्र बिन्दु से रहित कला अर्थात् मात्रा से रहित, तथा रेफ और हकार से भी वर्जित, अनक्षर रूप परमब्रह्म का ध्यान किया जाता है।

रूपातीत ध्यान मे चन्द्र रेखा के समान बिन्दु ( ँ ) अर्थात् अर्धबिन्दु सहित सूक्ष्म सूर्य के समान देदीप्यमान ( हँ ) का साक्षर का भी ध्यान किया जाता है।

रूपातीत ध्यान, रूपस्थ ध्यान की कोटि के बाद की व्यवस्था है, अत: प्रथम रूपस्थ ध्यान में ( हँ ) का साक्षर ध्यान होता है फिर निरक्षर ध्यान रूपातीत ध्यान मे किया जाता है।

जो इस प्रकार ध्यान करने मे असमर्थ हो वह प्रथम सिद्ध स्वरूप का ध्यान करे जोकि अमूर्तिक चैतन्य पुरुषाकार कृतकृत्य है एवं अपनी आत्मा को सिद्ध समान समझ कर ही ध्यावे।

ऐसा ध्यान करे "कि मैं ही परमात्मा हूं, मैं ही सर्वज्ञ हूं और मैं ही कृतकृत्य हूं, विश्व विलोकी निरञ्जन, स्थिर स्वभाव, परमानन्दभोगी, कर्म रहित, वीतराग, परमशिव, और परम ब्रह्म परमात्मा समान हूं।"

इस प्रकार का ध्यान करते २ द्वैत से अद्वैत हो जावे। इसी को ही रूपातीत ध्यान कहते है।

विपाक विचय धर्म ध्यान का स्वरूप—

स विपाक इतिज्ञेयो यः स्वकर्मफलोदयः।
प्रतिक्षणसमुद्भूतश्चित्ररूपः शरीरिणाम् ॥१॥
प्रशमादिसमुद्भूतो भावः सौख्याय देहिनाम्।
कर्मगौरवजः सोऽयं महाव्यसनमंदिरम् ॥६॥
स्त्रक्शय्यासनयानवस्त्रवनितावादित्रमित्रांगजान्।
कर्पूरागुरुचन्द्रचन्दनवनक्रीड़ाद्रिसौधध्वजान्॥
मातंगाँश्च विहंगचामरपुरीभक्ष्यान्नपानानि वा।
छत्रादीनुपलभ्य वस्तुनिचयान्सौख्य श्रयन्तेऽङ्गिनः॥
प्रासासिक्षुरयन्त्रपन्नगगरव्यालानलोग्रग्रहाद्।
शीर्णांगान्कृमिकीटकण्टकरजःक्षारास्थिपङ्कोपलान्॥
काराशृङ्खलशंकुकाण्डनिगडक्रूरारिवैरांस्तथा।
द्रव्याण्याप्य भजन्ति दुःखमखिलं जीवा भवाध्वस्थिताः
मूलप्रकृतयस्तत्र कर्मणामष्ट कीर्तिताः॥
ज्ञानावरणपूर्वास्ता जन्मिनां बंधहेतवः ॥१०॥

ज्ञानार्णव अध्याय ३५

**अर्थ**—प्राणियों के अपने उपार्जन किये हुये कर्म के साथ का जो उदय होता है वह विपाक नाम से कहा जाता है। वह कर्मोदय क्षण क्षण में उदय होता है और वह ज्ञानावरणादि भेद से अनेक प्रकार प्रवृत्ति करता है।

जो कर्म के उपशामादिक से उत्पन्न हुआ भाव है, वह जीवों के सुख के लिये है और जो कर्म की तीव्रता से उत्पन्न हुआ भाव है वह महान् कष्टकारक है।

जब जीव के किये हुए शुभ कर्म तीव्र रूप से उदय में आते हैं तब जीव पुष्पमाला, सुन्दर शैय्या, आसन, यान, वस्त्र, स्त्री, बाजे, मित्र, पुत्रादिक तथा कर्पूर, अगुरु चन्द्रमा, चन्दन, वनक्रीड़ा, पर्वत, महल, ध्वजा, हाथी, घोड़े, चामर, छत्र, नगरी, एवं खाने पीने योग्य अन्न पानादिकों का तथा राज्य चिन्हादि अवस्था या श्रीमन्तपन, बुद्धिमत्ता प्राप्त कर और सुख को प्राप्त करता हुआ आनन्द मानकर हर्षित होता है।

तथा जब असातावेदनीय एव दुष्कर्मों का तीव्र उदय आता है तब संसार रूप मार्ग मे रहते हुए यह जीव, सेल, तलवार, छुरा, यन्त्र, बन्दूक बरछी, भाला, शस्त्र और सर्प, विष, दुष्ट हस्ती अग्नि, तीव्र खोटे ग्रहादिक तथा दुर्गन्धित सड़े हुए अग, लट, कीड़े, काटे, रजक्षार, अस्थि, कीच, चमड़ा, व पाषाणादिक को तथा बन्दीखाना, (जेलखाना) शांकल, कीला, कोढ़, बेड़ी, क्रूर वैरी (दुष्ट) इत्यादिक द्रव्यों को प्राप्त होकर दुःख को भोगता है।

कर्मों की मूल प्रकृति ज्ञानावर्णादिक आठ है वे जीव के बंधन की कारण हैं सो बताते है।

मन्दवीर्याणि जायन्ते कर्माण्यतिबलान्यपि।
अपक्वपाचनायोगात्फलानीव वनस्पतेः ॥ २६ ॥

ज्ञानार्णव अध्याय ३५

**विलीनाशेषकर्माणि स्फुरन्तमतिनिर्मलम् ।**
**स्वं ततः पुरुषाकारं स्वाङ्गगर्भगतं स्मरेत् ॥ २६ ॥**

अर्थ—पूर्वोक्त अष्टकर्म अति बलिष्ट है तथापि शान्ति भाव ( कहिये ध्यान ) ऐसो वस्तु है जिससे जिस प्रकार वनस्पति वृक्ष के विना पके फल भी पवन के प्रताप (निमित्त) से अथवा पाल के निमित्त से पका लिये जाते है, उस ही प्रकार इन कर्मों की स्थिति पूरी होने से प्रथम ही इनको तपश्चरणादिकों के द्वारा मंदवीर्य एव असमय पर पके हुए फल के समान पका लिया जाता हैं ।

उक्त विधान से ध्यान के द्वारा व कर्मों की निर्जरा द्वाराविलय हुए हैं समस्त कर्म जिसके ऐसा स्फुरायमान निर्मल पुरुषाकार स्वरूप अपने अङ्ग मे ही प्राप्त हुए आत्मा का स्मरण करता रहे । इस प्रकार के कर्तव्य से कर्मों के विपाक का अनुभव व रस कम हो जाता है ।

ज्ञानावर्णादिक कर्म जीवों के निरन्तर उदय मे आया ही करते है । इसीका नाम विपाक है । इसके चिन्तवन करने से परिणाम विशुद्ध हो जाने पर कर्मों के नाश करने का उपाय करे तब मोक्ष होती है अन्यथा नहीं होती ।

## संस्थान विचय धर्म ध्यान का स्वरूप

इसमें लोक का स्वरूप तथा पर्यायों का स्वरूप विचारा जाता है ।

**अनन्तानंतमाकाशं सर्वतः स्वप्रतिष्ठितं ।**
**तन्मध्येऽयं स्थितोलोकः श्रीमत्सर्वज्ञवर्णितः ॥ १ ॥**

ऊर्ध्वाधोमध्यभागैर्यो विभर्ति भुवनत्रयम् ।
अतः स एव सूत्रज्ञैस्त्रैलोक्याधार इष्यते ॥ ३ ॥
अधो वेत्रासनाकारो मध्ये स्याज्झल्लरीनिभः ।
मृदङ्गाभस्ततोऽप्यूर्ध्वं स त्रिधेति व्यवस्थितः ॥ ८ ॥
अस्य प्रमाणमुन्नत्या स त सप्त च रज्जवः ।
सप्तैका पञ्चश्चैका च मूलमध्यान्तविस्तरे ॥ ६ ॥
मिथ्यात्वाविरतिक्रोधरौद्रध्यानपरायणाः ।
पतन्ति जन्तवः श्वभ्रे कृष्णलेश्यावशं गताः ॥१५॥
अविद्याक्रान्तचित्तेन विषयान्धीकृतात्मना ।
चरस्थिरांगिसंघातो निर्दोषोपि हतो मया ॥ ३५ ॥

ज्ञानार्णव अध्याय ३६

अर्थ—संस्थान विचय धर्म ध्यानी अपने ध्यान मे यह विचार करता है कि यह आकाश स्वप्रतिष्ठित अर्थात् अपने आप ही आधार है। क्योंकि इससे बड़ा कोई दूसरा पदार्थ नहीं है, जो इसका भी आधार हो सके।

इस प्रकार के आकाश के मध्य मे यह लोक स्थित है। वह ऊर्ध्व मध्य, अध. इस प्रकार तीन भुवन को धारण करता है। अधोलोक वेत्रासन के आकार है। मध्यलोक झालर के आकार है। उसके ऊपर ऊर्ध्व लोक मृदंग के आकार है। इस प्रकार तीन लोक की रचना है। अधोभाग मे निगोद नारकी जीव, व्यन्तर तथा भवन वासी देवो के आवास है। व्यंतर मध्यलोक और तिर्यक् लोग मे भी रहते है। मध्यलोक और तिर्यग्लोग में मनुष्य तिर्यञ्च तथा ज्योतिषी देव रहते है।

ऊर्ध्वलोक मे कल्पवासी तथा अहमिन्द्र देव रहते हैं। इसी के ऊपर के भाग मे सिद्धलोक है। जहाँ पर सब कर्मो से मुक्त होकर शुद्ध चैतन्य स्वरूप निराकार अपने द्रव्य गुण पर्याय से युक्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं जो अनन्त काल तक वैसे ही रहेंगे।

अधोलोक मे जो नरक है उसमें मिथ्यात्व, अविरत, क्रोध, तथा रौद्र ध्यान में तत्पर कृष्ण लेश्या के वश मे होकर प्राणी नरक मे पड़ते है, वहा पर पलक लगने मात्र भी जीव को साता नहीं मिलती एक समय में ५६८७७५८४ रोगों की उत्पत्ति के दु:ख भोगने पड़ते है।

बड़े पुण्य के उदय मे जब तीर्थंकर देव का जन्म होता है तब वहा के नारकी जीव भी साताका अनुभव करते है।

बाकी मारकाट के सिवा वहा दूसरा काय ही नहीं है। वहां का दु:ख अकथनीय है। उस वेदना को या तो भोगने वाला अनुभवी ही जानता है या सर्वज्ञदेव केवली जानते है।

जब २ नारकी जीव यह विचारते हैं कि हमने अविद्या के आवेश मे आक्रान्त चित्त होकर निर्दोष धर्म को छोड़कर कषाय के वशवर्ती होकर दीन त्रस और स्थावर जीवों की हिंसा की है। उसका फल भोग रहे है। इत्यादि विचारने पर धर्म ध्यान के प्रभाव से आत्मा को शांति लाभ होता है।

इसी प्रकार मध्यलोक की सब दशा और उसमे रहने वाले मनुष्य तथा तिर्यंच आदि जीवो का विचार किया जाता है। तब उनकी वेदना के विचार करने से शरीर का रोम २ थर थर कांपने लगता और कर्म के वशीभूत जीवों के दु:ख का अनुभव होने लगता है। एवं विचार हो जाता है कि हमने भी

जो कर्म हँस २ कर पैदा किये हैं उनका फल हमको भी रो रो कर भोगना ही पड़ेगा ॥१५॥

इसी प्रकार देव पर्याय मे (भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषी और कल्पवासी) भी जीव अनेक दुःखों से दुखी हैं। उनके दुःखों को भी विचारें तो शांति और स्थिरता नहीं मिलती। क्योंकि जहा देखते है वहीं पर राग-द्वेष परिणति की बहुलता देखी जाती है। जब ऊर्ध्वलोक की यह दशा है तो फिर संसार मे कहीं पर शांति नहीं मिल सकती। सुख केवल निराकुलता मे ही है और निराकुलता सिर्फ मोक्ष मे है। अत मोक्ष मे ही सुख उपलब्ध हो सकता है और मोक्ष ध्यान से मिलता है। इस प्रकार संस्थान विचयधर्म ध्यान मे चिन्तवन करना एवं आत्मा को शांतिलाभ और निराकुल बनानेका प्रयत्न करना चाहिए। अतः मोक्ष अभिलाषियों को ध्यान करना आवश्यक है। कर्मों को काटने की सामर्थ्य एक ध्यान मे है और में नहीं है इसीलिए ध्यानी बनकर स्वतन्त्रता प्राप्त करो ॥३५॥

ज्ञानार्णव अध्याय ४ मे फिर भी कहा है—

**ध्यानेन बिना योगी असमर्थो भवति कर्मनिर्दहने।**
**दंष्ट्रानखरविहीनो यथा सिंहो वरगजेन्द्राणां ॥७॥**

अर्थ—योगीजन ध्यान बिना अपने मनोवांछित फल अर्थात आत्मसिद्धि को कदापि नहीं प्राप्त कर सकते और न अनादि कालीन कर्मों की सत्ता का एवं उदय का ही अभाव कर सकते है।

जैसे नख और दाढ़ रहित कैसा ही केशरी सिंह क्यों न हो वह गजेन्द्रों का मद नहीं उतार सकता, इसी प्रकार योगी

भी संसार के चक्र में अपनी आत्मा को कर्मों के प्रभाव से नहीं बचा सकता। इसलिए ध्यान का अभ्यास करके अपनी आत्मा को बलिष्ठ बनाना सर्व प्रथम कर्तव्य है।

संसार में जितनी भी सिद्धियां प्राप्त होती हैं वे सब ध्यान के ही प्रभाव से होती हैं। ध्यान से कर्मों पर विजय प्राप्त करके अरहन्त एवं सिद्धपद तथा निर्वाण की प्राप्ति की जाती है, अन्यथा कदापि नहीं हो सकती ॥७॥

ज्ञानार्णव अध्याय ४ मे और कहते है—

प्रतिक्षणं द्वंद्वशतार्त्त चेतसां
नृणां दुराशाग्रहपीडितात्मनां।
नितम्बिनीलोचनचौरसंकटे।
गृहाश्रमे स्वात्महितम् न सिद्ध्यति ॥११॥

निरन्तरार्त्तानिलदाहदुर्गमे
कुवासनाध्वान्तविलुप्तलोचने।
अनेकचिन्ताज्वरजिह्मितात्मनां।
नृणां गृहे नात्महितं प्रसिद्ध्यति ॥१२॥

**अर्थ**—सैकड़ों प्रकार की कलहों से दुखित धनादिक की दुराशारूपी पिशाचनी से पीड़ित मनुष्य को प्रतिक्षण स्त्रियों के नेत्ररूपी चोरों के उपद्रव सहित गृहस्थाश्रम में आत्महित कारक धर्म ध्यान कैसे हो सकता है ॥११॥

निरन्तर पीड़ा रूप आर्त ध्यानों की अग्नि के दाह से दुर्गम बसने के अयोग्य कुवासनारूप अन्धकार से ज्ञान नेत्र को

आच्छादित करने वाले अनेक चिन्ता रूपी ज्वर से पीड़ित आत्मा वाले मनुष्य को घर में आत्महित सिद्ध नहीं हो सकता।

यद्यपि यह धर्म ध्यान चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सप्तम गुणस्थान वाले महाव्रती तक के होता है। परन्तु यह बात जरूर है कि यह गृहस्थावस्था में पूर्ण रीतिसे नहीं बनता। क्योंकि गृहस्थावस्था में आर्त ध्यान की बहुलता रहती है। अत: इसकी पूर्णतातो मुनिमार्ग में ही पाई जाती है। परन्तु इसकी पात्रता गृहस्थ में भी पाई जाती है। पर पूर्ण विकास सप्तम गुणस्थान में ही होता है और उससे शुक्ल ध्यान की प्राप्ति भी हो जाती है।

अब प्राणायाम की विधी बताते हैं—

मुमुक्षु को शरीर की शुद्धि के वास्ते प्राणायाम की जरूरत हो जाती है। शरीर की शुद्धि तथा मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास सहायक अवश्य होता है। परन्तु इसे आत्मोन्नति का प्रधान कारण आचार्यों ने नहीं माना है। फिर भी इसकी जिन्हे आवश्यक्ता हो उनके लिए ज्ञानार्णव अध्याय ३० के अनुसार संक्षेप में यहाँ पर उल्लेख किया जाता है—

**संविग्नस्य प्रशान्तस्य वीतरागस्य योगिनः।**
**वशीकृताक्षवर्गस्य प्राणायामो न शस्यते ॥८॥**

**अर्थ**—जो मुनि संसार देह और भोगों से विरक्त हैं, कषाय जिनकी मन्द हो गई है और विशुद्ध भावों कर युक्त है, वीतराग और जितेन्द्रिय है ऐसे योगी को प्राणायाम की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इससे कभी २ आत्म कष्ट होने की सम्भावना हो जाती है।

**प्राणस्यायमने पीड़ा तस्यां स्यादार्तसम्भवः।**
**तेन प्रच्याव्यते नूनं ज्ञाततत्त्वोऽपिलक्ष्यतः ॥९॥**

**अर्थ**—प्राणायाम में प्राणों (श्वासोच्छ्वासरूप पवन) का आयमन कहिए संकोचन से पीड़ा होती है और उस पीड़ा से आर्तध्यान उत्पन्न होने से तत्वज्ञानी मुनि भी अपने लक्ष्य (समाधि स्वरूप शुद्ध भावों) से छूट जाता है। अर्थात् यह यह आर्त ध्यान समाधि से भ्रष्ट कर देता है।

आचार्यों ने प्राणायाम के तीन भेद माने हैं। १ पूरक, २ कुम्भक, ३ रेचक।

**१ पूरक**—तालू के छेद से द्वादश अंगुल पर्यंत वायु को खींच कर अपने शरीर में इच्छानुकूल भरे।

**२ कुम्भक**—उस खींची हुई पवन को नाभि कमल के स्थान पर रोके। नाभि से अन्य जगह नहीं चलने दे जैसे घड़े को भरते हैं।

**३ रेचक**—भरी हुई पवन को अपने कोठे से धीरे धीरे बाहर निकाले।

अभ्यास करने वाले को चाहिये कि वह पवन को भीतर लेकर थामने का फिर धीरे २ तालुवे में से निकालने के द्वारा बाहर पूरी तौर से नियमानुसार प्रयत्न करे तो अधिक देर तक श्वासोच्छ्वास को रोके तो अधिक देर तक मन को रोक सकेगा। प्राणायाम में चार प्रकार के मण्डल होते हैं (१) पृथ्वी मण्डल (२) जल मण्डल (३) पवन मण्डल (४) अग्नि मण्डल।

**१ पृथ्वी मण्डल**—नासिका के छिद्र को भले प्रकार भरकर कुछ उष्णता लिए आठ अंगुल बाहर निकालता हो,

स्वस्थ चपलता रहित मन्द मन्द बहता पीले रङ्ग को लिये हुए हो। इसका आकार चौकोर होता है।

**जल मण्डल**—जो त्वरित कहिए शीघ्र बहने वाला कुछ निचाई को लिये बहता हो। शीतल उज्वल चन्द्रमा के समान शुक्ल दीप्त हो, बारह अंगुल बाहर आवे ऐसा पवन जल मण्डल होता है।

**३ पवन मण्डल**—जो नीले रंग का गोल हो सब तरफ तिर्यक बहता हो, विश्राम न लेकर निरन्तर बहती रहे तथा छै अंगुल बाहर आवे, कृष्णवर्ण शीत तथा उष्ण हो इस प्रकार के पवन को पवन मण्डल कहते हैं।

**अग्नि मण्डल**—जो उगते सूर्य के समान रक्तवर्ण हो, ऊंचा चलता हो त्रिकोणाकार हो, आवृतों (चक्रों) सहित फिरता हुआ ऊपर को आवे, चार अंगुल बाहर आवे, अतिउष्णता सहित हो, ऐसा पवन अग्नि मण्डल कहलाता है।

और भी बताते है उसे देखो, समझो, अनुभवो।

१—बाईं तरफ वाले स्वर को पींगला (चन्द्र) नाड़ी कहते है। मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, इन तिनों मे सूर्योदय समय यह स्वर चलना शुभ है। फिर सप्तमी, अष्टमी, नवमी तीन दिन चलती है। फिर तीन दिन छोड़ कर चलती है। ऐसे ही पूर्णिमा तक चले तो शुभकारी होती है।

२—दाहिनी तरफ वाले स्वर को इड़ा (सूर्य) स्वर कहते है। मास के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया इन तीनों दिनों मे तथा सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तीनों दिनों मे सूर्योदय पर इस स्वर का चलना शुभ माना है।

ऊपर लिखे अनुसार दिनभर न चलकर सूर्योदय से यदि एक मुहूर्त (दो घड़ी) भी चलता रहे। और फिर बदल भी जावे तो भी शुभ है। परन्तु इससे विरुद्ध स्वर चले तो अशुभ है। बायें स्वर को हितकर और दाहिने स्वरको अहितकर बताया है।

ज्ञानार्णव अध्याय २९ मे और भी बतलाया है:—

वामा सुधामयी ज्ञेया हिताशश्वच्छरीरिणाम्।
संहर्त्री दक्षिणा नाड़ी समस्तानिष्टसूचिका ॥४३॥
अमृतमिव सर्वगात्रं प्रीणयति शरीरिणांध्रुवं वामा।
क्षपयति तदेव शश्वद्वहमाना दक्षिणा नाड़ी ॥४४॥

अर्थ—जीवों के प्रिय चन्द्रस्वर अमृतमयी सदा हितकारी है। और सूर्यस्वर अहितकर अनिष्ट माना गया है। वाम नाड़ी निरन्तर बहती हुई जीवों के समस्त शरीर को अमृत के समान तृप्त करती है और दाहिनी नाड़ी बहती हुई शरीर को क्षीण करती है।

चारों मण्डलों के पवन के ज्ञान के लिये सरल उपाय बताते है:—

अपने दोनों कानों को दोनों हाथों के अंगूठों से बन्द कर लेवे। और दोनों आखों को अंगूठे के पास की दोनों अंगुलियो से बन्द कर के नाक के दोनों स्वरों को दोनों मध्यमा अंगुलियों से दबा देवे। फिर मुख को दोनों हाथों की जो बाकी उंगुलियें बची है उनसे दबा देवे पश्चात् अपने मन के द्वारा देखे तब उन मंडलों के बिन्दु साफ दिखलाई पड़ेंगे।

१ यदि पीली बिन्दु मालूम होवे तो पृथ्वी मण्डल समझे।

२ यदि श्वेत बिन्दु दिखाई देवे तो जल मण्डल समझें।

३ यदि लाल विन्दु दिखाई देवे तो अग्नि मण्डल समझें।

४ यदि नीली विन्दु दीखे तो पवन मण्डल समझें।

यहां पर विचारने योग्य बात है कि इन चारों मण्डलों में से जब पृथ्वी मण्डल या जल मण्डल होवे तब शुभ कार्यों को करना उचित है पृथ्वी और जल तत्व के पवन बायें स्वर से निकलते हों तो कार्य सिद्धि के सूचक हैं।

अग्नि मण्डल व पवन मण्डल दाहिने स्वर से निकले तो अशुभ सूचक है। अग्नि व वायु मण्डल बाई तरफ से बहे अथवा पृथ्वी और जल मण्डल दाहिने स्वर से बहे तो मध्यम फल के सूचक हुआ करते है।

यदि किसी को स्वर बदलने की जरूरत पड़े तो जिस तरफ का स्वर चलता हो, उस तरफ के स्वर और अङ्ग को दबाने से स्वर अवश्य बदल जाता है। यो समझिये कि वह स्वर दूसरा तरफ चलने लगेगा।

## स्वरों द्वारा मन्त्रों का ध्यान

स्वरों के द्वारा (हूँ) बीजाक्षर के मन्त्र के ध्यान की विधि इस प्रकार से है इससे स्वर शुद्ध हो जाता है।

सबसे प्रथम नाभिकमल के मध्य में (हूँ) को चन्द्रमा के समान चमकता विचारे। पश्चात् उसको दाहिने स्वर से बाहर निकाले और चमकता हुआ आकाश में ऊपर की तरफ चला जावे। पुनश्च उसको लौटावे और तब उसे बांये स्वर से भीतर प्रवेश करावे और नाभिकमल मे ले जाकर ठहरावे।

यह प्राणायाम की विधि उन पुरुषों को लाभकारी है जिन का चित्त कभी स्थिर नहीं रहता। सदा चलायमान रहता है।

स्थिर चित्त वालों को इस प्राणायाम की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह प्राणायाम कभी कभी आर्त तथा रौद्र ध्यान का भी कारण हो जाता है। यह हम पहले बता चुके हैं।

## शुक्ल ध्यान का प्रयोग

इस शुक्ल ध्यान का ध्याता मुनि ही माना गया है। सो ही यहां पर बताते है।

आदिसंहननोपेतः पूर्वज्ञः पुण्यचेष्टितः।
चतुर्विधमपि ध्यानं स शुक्लं ध्यातुमर्हति ॥५॥
छद्मस्थयोगिनामाद्ये द्वेतु शुक्ले प्रकीर्तिते।
द्वे त्वन्त्ये क्षीणदोषाणां केवलज्ञानचक्षुषाम् ॥७॥

ज्ञानार्णव ४२ वां पर्व।

अर्थ—जो मुनि प्रथम बज्रवृषभनाराचसंहनन सहित हो, ग्यारह अंग चौदह पूर्व का ज्ञाता हो और चारित्र की पूर्ण शुद्धता हो, वह मुनि इस शुक्लध्यान के चारो भेदों को धारण करने मे समर्थ हो सकता है ॥५॥

शुक्लध्यान के चारों भेदों के नाम इस प्रकार हैं। १ पृथक्त्व वितर्क विचार। २ एकत्ववितर्क विचार। ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ४ व्युपरतक्रियानिवृत्ति ये भेद है। इन मे प्रथम के दो भेद अर्थात् पृथकत्ववितर्क, और एकत्ववितर्क ये तो छद्मस्थ अर्थात् बारहवे गुणस्थानवर्ती प्राणी के पाये जाते हैं। और अन्त के दो भेद रागादि से रहित केवलज्ञानी सर्वज्ञ ज्ञानियों के पाये जाते हैं।

इस ध्यान का यानि शुक्लध्यान का संयोगज इस काल में भरत तथा ऐरावत इन दोनों क्षेत्रों में इस पंचम काल में नहीं

होता। अगर किसी को उसके समझनेकी जरूरत हो तो जैनधर्म में अनेक शास्त्रों में उनका लेख बड़ी २ खूबी के साथ वर्णन किया है, वहां से जान लेना चाहिये।

सामायिक के समय पर शरीर की आकृति बिल्कुल सरल एवं सीधी रखनी चाहिये। पद्मासन, या खड्गासन, या अर्ध-पर्यंकासन लगाना और अपनी नासिका के ऊपर दृष्टि रखना चाहिये। जहा तक हो सके आसन एक ही रखने की आदत रखना, यानि बनाना चाहिये।

दृष्टि अर्धखुली रखना चाहिये। सामायिक के समय पर अपने मन को पूर्ण रूप कब्जे में रखना चाहिये एव काय और कषाय की परणिति पर पूरा २ ध्यान रहना चाहिये।

वास्तविक सामायिक के पात्र तो मुनि ही होते हैं। परन्तु एक देश सामायिक के पात्र अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर क्षुल्लक ऐल्लक पद तक के श्रावक भी होते है। यहां प्रमाण भावसामायिक का है, न कि द्रव्यसामायिक का।

ख्याल रहे व्रतप्रतिमा मे जो सामायिक कहा है सो अतिचार सहित है और दोषों सहित है। उन अतिचारों को और दोषों को दूर करने के लिये ही यह तृतीय प्रतिमा ग्रहण की गई है। यदि तीसरी प्रतिमा ग्रहण करने पर भी वैसी ही प्रवृत्ति बनी रहेगी तो तीसरी प्रतिमा ग्रहण करना व्यर्थ है। इसलिये यहां पर जितने भी अतिचार और दोष है उनको दूर करना आवश्यक है। इसमें सरल भाव रखना चाहिये तथा मायाचारी का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

जैनव्रत किसी को रिझाने के लिये नहीं होते। ये अनादि काल से लगे हुए कर्म कलंक को दूर कर आत्मा को शुद्ध करन के

लिये किये जाते हैं। अत. शास्त्रोक्त दोषों को और अतिचारों को टालने का पूरा खयाल करे। सोही यहाँ बताते हैं—

सामायिक के टालने योग्य ३२ दोष

अनादृतश्चस्तब्धः स्यात्प्रविष्टः स्यात्परिपीडितः ।
दोलायितोंकुशितोऽपि भवेत्कच्छपरिंगितः ॥११०॥
मत्सोद्वर्त्तो मनोतुष्टो वेदिकावद्ध एवहि ।
भयोविभ्यद्धवेद्दद्धि गौरवोगौरवस्तथा ॥१११॥
स्तानितः प्रतिनीकश्च प्रदुष्टस्तर्जितस्तथा ।
शब्दश्च हेलितश्च त्रिवलितोश्चैव कुंचितः ॥११२॥
दृष्टोऽदृष्टाभवेत्संधकरमोचन एवहि ।
आलब्धः स्यादनालब्धो हीन उत्तरचूलिकः ॥११३॥
मूकश्च दुर्दरो दोषो भवेत्सुललितः सुहृत् ।
द्वात्रिंशत्प्रपितान्दोषांस्त्यक्त्वासामायिकं भजेत्।११४।

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार अध्याय १८

अर्थ—दोषों से रहित सामायिक करने से सामायिक प्रतिमा धारण होती है। अत सामायिक के निम्नलिखित ३२ दोष जानने चाहिये। १ अनादर से सामायिक करना, २ गर्व से करना, ३ मान बड़ाई के लिये करना, ४ दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाना, ५ हिलते हुए रहना, ६ शरीर को टेढ़ा रखना, ७ कछुवे की तरह शरीर को सकुचित करना, ८ मछली की तरह नीचा ऊंचा रहना, ९ मन मे दुष्टता रखना, १० जिनमत की आम्नाय से विरुद्ध करना. ११ भय से करना, १२ ग्लानि से करना, १३ ऋद्धि गौरव के गर्व सहित करना, १४ ऊंचे

कुल के गर्व से करना, १५ चोर की तरह संकुचित होकर करना, १६ समय टाल देना, १७ दुष्टता रखना, १८ दूसरों को भय उपजाना, १९ सावद्य पाप सहित बचन बोलना, २० पर की निन्दा करना, २१ भौंह चढ़ना, २२ मन में संकोच रखना, २३ दशों दिशाओं का अवलोकन करना, २४ स्थान का नहीं शोधना, २५ किसी प्रकार समय पूरा करना, २६ लंगोटी पीछी की हानि में खेद करना, २७ किसी प्रकार की बांच्छा करना, २८ सामायिक का पाठ ही पढ़ना, २९ खंडित पाठों से सामायिक करना, ३० सामायिक में गूंगों की तरह बोलना, ३१ मैंडक के समान ऊंचे स्वर से टर्रा कर बोलना और ३२ चित्त को चलायमान करते सामायिक करना, इस प्रकार ये ३२ दोष टालने योग्य हैं।

सामायिक के ५ अतिचार

**वाक्कायमानसानां दुष्प्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।**
**सामायिकस्यातिगमाःव्यज्यन्ते पञ्च भावेन ॥१०५**

रत्नकरंडश्रावकाचार

**अर्थ**—इन पांचों अतिचारों का पूरा २ खयाल रखकर सामायिक करना चाहिये।

१ वचन को सामायिक पाठ से चलायमान करना।

२ काय को स्थिर न रखकर हिलना, डुलना।

३ मन को आर्त, रौद्र परिणामों से चलायमान करना।

४ सामायिक में आदरभाव को नहीं रखना।

५ सामायिक के मूल पाठ पर ध्यान नहीं रख। उसको भूल जाना।

इन दोषों को लगाने से सामायिक दूषित रहता है। इसलिए व्रतियों को इनके ऊपर ध्यान रखकर सामायिक करना चाहिये।

## ४ प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप

तृतीय सामायिक प्रतिमा का पूर्ण रूप से पालन करके आगे के व्रत बढ़ाने के भाव हों तब प्रोषध प्रतिमा की जाती है इसका स्वरूप और आचरण इस प्रकार से है।

**अष्टम्यां चतुर्दश्यां पर्वदिनेषु प्रणधियाः समारूढ़ः।**
**प्रोषधनियमस्वरूपैः सहस्वशक्त्यनुसारेण ॥**

भावार्थ—प्रत्येक अष्टमी और चतुर्दशी को दोष और अतिचार रहित प्रोषधोपवास करना, गृह सम्बन्धी व्यापार आरम्भ औरभोगोपभोग की सकल सामग्री का त्याग करके, एकान्त स्थान में संलग्न होना सो प्रोषध प्रतिमा कहलाती है। १६ प्रहर का उत्तम, १४ प्रहर का मध्यम तथा १२ प्रहर का जघन्य प्रोषधोपवास होता है। इसका ठीक खुलासा दूसरी प्रतिमा के १०वें व्रत यानी प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत में कर चुके हैं वहाँ से जानना।

उपवास का लक्षण :—

**कषायविषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।**
**उपवासः स विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः ॥**

मोक्षमार्ग प्रकाश

**अर्थ**—विषय, कषाय और आहार का त्याग करना उपवास कहलाता है। जहां विषय कहिये पंचेन्द्रियों के भोग,

कषाय कहिये क्रोध, मान, माया, लोभ रूप प्रवृत्ति, इसके अलावा अन्य भी आरम्भ परिग्रह न छूटे हों, धर्म ध्यान रूप प्रवृत्ति न हुई हो, केवल भोजन छोड़ दिया हो तो उपवास नहीं वह तो लंघन है, केवल उपवास का दिखावा है।

इसलिये पहिले रागद्वेष पंचेन्द्रियों के भोगों का स्वरूप विचार कर इनको त्याज्य समझ कर छोड़े। फिर आहार को भी छोड़ दे तब उपवास होता है, अन्यथा नहीं। धर्मध्यान, स्वाध्याय, जिनपूजा, आदि व व्रत चर्या करते हुए उपवास का दिन व्यतीत करना चाहिये।

जितना भी कार्य करें, वह निरतिचार और धर्मपोषक हो। इस प्रकार प्रमाद रहित होकर करे। ऊपर की प्रतिमा मे ध्यानाभ्यास करना बता चुके हैं। सबसे पहिले यह करे कि ऐसे स्थान में किसी प्रकार का विघ्न न दीखे। स्वाध्याय करें, सो शास्त्र जी के पन्ने इतनी सावधानी से पलटे कि उनमें कोई जीव मर या दब न जावे। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में बतलाया है

सत्तमितेरसि दिवसे अवरह्ले जाइऊण जिणभवणे
किरियाकम्मं काऊ, उववासं चउव्विहं गहिय॥३७३॥

गिहवावारं चत्ता रत्तिं गमिऊण धम्मचिंताए।
पच्चूहे उट्ठित्ता, किरिया कम्मं च कादूण ॥३७४॥

सत्थब्भासेण पुणो दिवस, गमिऊण वंदणं किच्चा।
रत्तिं णेदूण तहा, पच्चूहे वंदणं किच्चा॥ ३७५ ॥

पुज्जण विहिंच किच्चा पत्तंगहिऊण णवरितिविहंपि।
भुंजाविऊणपत्तं भुंजंतो पोसहो होदि॥ ३७६ ॥

**भावार्थ**—सप्तमी तथा तेरस के दिन दोपहर दिन चढ़े पीछे श्री जिनचैत्यालय जावे व दिगम्बर गुरु होवें तो उनके पास जावे। अपरान्ह (सायंकाल) की क्रिया करके चार प्रकार के आहार ( खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय ) का त्याग करके, उपवास ग्रहण करे। अर्थात् कषाय, क्रोध, मान, माया, लोभ, तथा पांचों इन्द्रियों के विषय, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, इनमें रागादि, तथा गृह कार्य छोड़कर धर्म ध्यान सहित सप्तमी या त्रयोदशी की रात्रि को पूर्ण करे। पुनः अष्टमी तथा चतुर्दशी को प्रातः सामायिक क्रिया कर्म को करके दिन को शास्त्राभ्यास व धर्म ध्यान कर पूर्ण करें। अपरान्ह का सामायिकादि क्रिया कर्म करके उसी प्रकार धर्म ध्यान पूर्वक रात्रि पूर्ण करे। फिर नवमी व पूर्णिमा के प्रभात सामायिक वंदनादि करके जिनेन्द्र देव का पूजन विधान करे।

यथायोग्य पात्रों को पड़गाहन करके भोजन देवे। पश्चात् आप भोजन करे। इस प्रकार चौथी प्रतिमा प्रोषधोपवास होती है।

उपवास में दन्तधावन करे या नहीं सो बताते हैं:—

**प्रश्न**—जो उपवास करे, चारों प्रकार के आहार का त्याग करे, श्री जिनेन्द्र देव की पूजन करे वह तब स्नान करे ही किन्तु मुखशुद्धि वास्ते कुछ क्रिया करे या नहीं करे ? और पूजन सचित्त द्रव्य से करे या अचित्त द्रव्य से करे ?

**उत्तर**—

**अन्याशक्ता नारीणां वितथं भाषते मुखेन ।**
**यावज्जीवं न शुद्धते कदा भाषते मुनिवरैः ॥१॥**

अर्थ—यहां पर कहते है कि जो स्त्री पर पुरुष आशक्त हो वह कभी भी शुद्ध नहीं हो सकती। उसी प्रकार जिस मुख से श्लेष्म सदा पैदा होता रहता है उस मुख की शुद्धि ही नहीं, क्योंकि घड़े भर पानी से मुख को खूब धोवें, पश्चात किसी के ऊपर जरासा थुकारा लग जावे तो वह कहेगा कि मुझे झूंठे छींटे क्यों लगा दिए। यद्यपि उसही पुरुष के सामने एक घड़े पानी से मुख धोया है, तब भी वह पुरुष उस मुख को झूँठा ही समझता है। वास्तव में है भी ऐसा ही। इससे चाहे कुल्ला करो या न करो, मुख की शुद्धि होती ही नहीं।

हाँ मुख की शुद्धि तो तब ही हो सकती है जब कि इस मुख से कदापि काल झूंठ अर्थात् विपरीत प्रलाप नहीं किया जावे, यही मुख की शुद्धि कहलाती है अन्यथा नहीं।

अगर पानी से ही मुख की शुद्धि होती हो तो गंगा जी में तो मगर और मच्छ पड़ेही रहते है फिर वे तो मोक्षगामी हो ही जावे। किन्तु वस्तुतः आचार्यों ने ऐसा नहीं माना।

मुख हमेशा अशुद्ध ही रहता है, घड़ों पानी से मुँह धो कर किसी पर थूक देवे तो वह कहेगा मुझे अशुद्ध क्यों कर दिया। इस प्रकार कुल्ला करने (यानि दातून करने) से भी अशुद्धि दूर नहीं होती तो पेय रूप त्याग किए हुए पानी को ग्रहण करके अपना व्रत क्यों सदोष बनाया जावे। इसका कथन हम ऊपर भी कर चुके हैं। दोज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी को दतोन करने का सर्वथा निषेध किया है। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है।

इसलिए उपवास के दिन पूजन के लिए भी दन्त धावन की आवश्यकता नहीं। मुख शुद्धि तो खोटी वाणी बोलने के त्याग और शुद्ध वाणी बोलने से ही होती है।

उपवास के दिन पूजन कैसे द्रव्य से करनी चाहिए—

**प्रातः प्रोत्थाय ततः कृत्वा तात्कालिकं क्रियाकल्पम् ।**
**निर्वर्तयद्यथोक्तम् जिनपूजां प्रासुकैर्द्रव्यैः ॥१५५॥**

पुरुषार्थसिद्धयुपाय

**अर्थ**—प्रातःकाल उठकर सामान्य प्रभात क्रिया करके प्रासुक अर्थात् अचित्त द्रव्यों से श्रीमज्जिनेन्द्र भगवान की पूजा करे, न कि सचित्त द्रव्य से। क्योंकि सचित्त पदार्थ में महान पापारम्भ होता है और यहां प्रोषध प्रतिमा और पर्व है। इसमे उस जनित आरम्भ का त्याग है जहाँ पर किंचित आरम्भ और पुण्य विशेष हो ऐसे कार्य के निमित्त अचित्त पूजन बतलाई है।

'सावद्यलेशयो बहु पुण्यराशौ' इसको ध्यान में रखकर जिसमे पाप कम और पुण्य ज्यादा हो वह कार्य करे। इसलिए सचित्त सम्बन्धी महारम्भ को छोड़ कर अचित्त द्रव्य से ही पूजन करनी चाहिए।

इस प्रतिमाधारी को चाहिए कि वह जितनी भी प्रवृत्ति करे वह निष्प्रमाद होकर करे, तथा जिससे प्रतिमा धारण करने के फल की प्राप्ति हो। श्रृंगार, इत्र तेल फुलेलादि न लगावे। व्रत के दिन हजामत (क्षौर) न करावे, राग वर्धक गीत, गान, नाटक, सिनेमा न देखे, न दिखावे। उपन्यास, किस्सा, कहानियां आदि की पुस्तक न पढ़े और न पढ़ावे। अगर जिनेन्द्रदेव के उत्सव सम्बन्धी या भक्ति के गीत आदि हों तो उनका त्याग नहीं है।

व्रतप्रतिमा में जो प्रोषधोपवास कहा है वह सामान्यतया सातिचार रूप है। अर्थात् अतिचारों सहित है और यहाँ

प्रतिमा रूप है, सो पूर्णतया निर्दोष और अतिचार रहित पालना चाहिए। इसकी जितनी भी क्रिया हों सब प्रमाद रहित हों। तथा सोलह प्रहर तक सिवा धर्म ध्यान के अन्य कर्तव्य नहीं करे। व्रतियों को समझना चाहिये कि पूर्णतया निर्दोष व्रत पालने से ही यथार्थ फल की प्राप्ति होती है। अतः व्रतियों को निज कर्तव्य में सदैव सावधान सतर्क रहना योग्य है।

प्रश्न—अष्टमी चतुर्दशी को पर्व माना है उसका क्या स्वरूप है?

उत्तर—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में पर्व का महत्व इस प्रकार बतलाया है:—

यः पर्वण्युपवासं हि विधते भावपूर्वकं।
नाकराज्यं च संप्राप्यमुक्तिनारी वरिष्यति ॥ २७ ॥
प्रोषधं नियमेनैव चतुर्दश्यां करोति यः।
चतुर्दशगुणस्थानान्यतीत्य मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २८ ॥

अर्थ—जो व्यक्ति पर्व के दिनों में भाव पूर्वक उपवास धारण करते हैं, वे स्वर्ग के राज्य का उपभोग करके अन्त में अवश्य मुक्ति रूपी स्त्री के स्वामी होते हैं।

जो चतुर्दशी के दिन नियम पूर्वक प्रोषधोपवास करते हैं वे चौदह गुणस्थानों को पार कर मोक्ष में जा विराजते हैं।

अष्टम्यामुपवासं हि ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः।
हत्वा कर्माष्टकं तेऽपि यान्ति मुक्तिं सुदृष्टयः ॥२३॥

अष्टमे दिवसे सारे यः कुर्यात्प्रोषधंवरम् ।
इन्द्रराज्यपदं प्राप्य क्रमाद्याति स निर्वृतिम् ॥ ३४॥

अर्थ—जो सम्यग्दृष्टि उत्तम पुरुष अष्टमी के दिन उपवास करते हैं वे आठों कर्मों को नष्ट कर मोक्ष में जाकर विराजमान होते हैं। अष्टमीका दिन सबसे सारभूत है, उसदिन जो उत्तम प्रोषधोपवास करता है वह इन्द्र का साम्राज्य पाकर अनुक्रम से मोक्ष प्राप्त करता है।

इस प्रकार अष्टमी और चतुर्दशी पर्वों का माहात्म्य शास्त्रकारों ने स्थान २ पर प्रकट किया है। इसलिए हमारा भी कर्तव्य है कि हम भी उसके अनुसार चलकर अपने जीवन को सार्थक बनावें।

सुभाषित अर्णव में बताया है:—

अष्टमी अष्टकर्मांता, सिद्धिलाभा चतुर्दशी।
पंचमीकेवलज्ञानं, तस्मात्त्रितयमाचरेत् ॥ १ ॥

अर्थ—हे आत्मन्! अष्टमी पर्व के दिन जो आत्मा धर्म का आचरण करेगा वह अष्ट कर्मों को विनाश करने की शक्ति कर नियम से सम्पन्न होगा और अष्टकर्मों का विनाश करेगा। एवं जो चतुर्दशी पर्व के दिन धर्म आचरण में सावधान रहेगा वह अष्टकर्मों से रहित जो आत्मा का शुद्ध रूप है उसकी सिद्धि जो सिद्ध पर्याय है उसे नियम कर शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर अनन्त काल तक सदा के लिये सुखी बना रहेगा।

जो पंचमी तिथि के पर्व में धर्माचरण करता है वह व्यक्ति केवलज्ञान को प्राप्त होकर शीघ्रातिशीघ्र अर्हत हो ही जाता है। इस

लिये इन तिथियों को स्वप्न मात्र में भी न भूलो, अवश्य कल्याण होगा।

ससार में व्रत महान दुर्लभ है—

**मानुष्यं दुर्लभंलोके, पांडित्यमतिदुर्लभं ।**
**अर्हत्छाशनमत्यंतं, तपस्त्रैलोक्ये दुर्लभं ॥ १ ॥**

अर्थ —हे भव्य प्राणियो ! संसार में दुर्लभ से भी महान दुर्लभ मनुष्य पर्याय का पाना है। और इससे भी दुर्लभ पण्डितपन का पाना, और इससे भी दुर्लभपन अर्हत शासन यानि जैन धर्म को पाना तथा इससे भी महानदुर्लभ त्रिलोक में तपस्या का प्राप्त करना है।

हे जीवो ! ऐसा महान दुर्लभ यह मनुष्य जन्म और जैन शासन और तपस्या को पाकर प्राण जाते भी व्रतों मे दूषण न लगाओ।

संसार मे व्रतीपन धारने से ही तो चारों वर्ण हुए है—

**व्रतिनो ब्राह्मणोज्ञेयाः क्षत्रियाः शस्त्रपाणयः ।**
**कृषिकर्मकरा वैश्याः शुद्राः प्रषेणकारकाः ॥१॥**

अर्थ—व्रत (चारित्र) सम्यक्त्वपूर्वक ग्रहण करने से ही तो ब्राह्मण बनते है। जैसे भरत चक्रवर्ती ने बनाये थे और सूरवीरता के सम्बन्ध ही तो शस्त्र धारण किया जाता है, वो ही तो क्षत्रिय कहलाते हैं। क्रयविक्रय रूप प्रवृति से ही तथा कृषि कर्म व गोपालन करने से ही तो वैश्य वृत्ति होती है एवं इन तीनों वर्णों को कार्य करानेकी जरूरत मे जो कार्य करने

के वास्ते सहायक होते हैं वे शूद्र कहलाते हैं। सो ये सब अपनी २ वृत्ति धारण करने से ही होते हैं।

युग की आदि समय पर भगवान आदिनाथ ने जिनका जैसा भाव समझा उनको वैसा वर्ण वाला स्थाप दिया, क्योंकि भगवान अवधिज्ञानी थे। पश्चात् भरत चक्रवर्ती ने ब्राह्मण वर्ण स्थापन किया।

प्रश्न—सदा से तो तीन ही वर्ण रहते हैं। भरत चक्रवर्ती ने चौथा ब्राह्मण वर्ण स्थापन क्यों किया ? इसमें क्या कारण था ?

उत्तर—कई आचार्य कहते हैं कि हुंडावसर्पिणी काल में ऐसा ही हुआ करता है। जैसे तीर्थंकरों पर उपसर्ग होना, मुनियों से कर मागना, नारायण का युद्ध से भागना, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र ये त्रेषठ सलाका पुरुषों में कमती होना और भी कई ऐसे कार्य हैं कहां तक कहा जावे, सब हुँडासर्पिणी में ही होते हैं अन्य समय पर नहीं होते।

आगे और बताते हैं:—

पूजाकोटि समस्तोत्रं, स्तोत्रकोटि समो जपः।
जपः कोटि समं ध्यानं, ध्यानकोटि समोलयः॥१॥

अर्थ—देखो यह प्रतिमायें ली जाती हैं सो सब धर्म साधन के वास्ते ली जाती है न कि बताने के वास्ते कि हम प्रतिमाधारी हैं। भगवान का पूजन करना चाहिये। इससे जब आगे बढ़ो भगवान का स्तोत्र पढ़ो, इससे भी आगे बढ़ो जप

करो, इसमे भी आगे बढ़ो ध्यान करो इससे भी आगे बढ़ो आत्मिक चिन्तवन करो।

इस प्रकार की वृत्तियों से फायदा बताते हैं।

**कृषितोनास्ति दुर्भिक्षं, जपोनास्ति हि पातकं।**
**मौनतः कलहोनास्ति नास्ति जाग्रततो भयं ॥१**

अर्थ—कृषि करने से दुर्भिक्ष कहिये काल का नाश हो जाता है। जप तथा ध्यान करने से अनादि कालीन लगे हुए पापों का नाश हो जाता है। मौन रखने से आर्तरौद्र रूपी कलह का नाश हो जाता है और रात्रि में जगते रहने से किसी प्रकार का भय नहीं होता। ऐसे ही व्रत, चारित्र, तप ग्रहण करने से तमाम पापों का नाश होता है तथा आत्मा को शान्ति प्राप्त हो जाती है इसीलिये तो मनुष्यों को आचार्यों का आदेश है कि कम सेकम पंचाणुव्रत धारण करो जिससे तुम्हारा अदत्त पदार्थ लेना छूट जावे। अदत्त पदार्थ के ग्रहण से क्या क्या होता है सो बताते हैं:—

**अदत्तदोषेण भवेद्दरिद्रो, दरिद्रदोषेण करोतिपापं।**
**पापादवश्यं नरकं प्रयाति, पुनर्दरिद्रःपुनरेवपापी॥१॥**

अर्थ—बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करने से दरिद्र होता है, दरिद्रता के कारण पाप करता है, पाप से नरक में जाता है और पुनः पुनः दरिद्र और पापी होता है। तो समझे! अदत्तादान का ये फल है। आचार्य भगवान संसारी जीवों को व्रत लिवाकर सुखी बनाना चाहते हैं, इसलिये व्रत धारण कर सुखी बनो।

अदत्तादान के छोड़ने से इतना फायदा होता है:—

निर्धनोयं धनाढ्योयं, न कुर्वन्निति चिन्तनं।
विशेदनुक्रमेणैव, श्रावकाणां गृहेषु सः ॥ १ ॥

अर्थ—देखो अदत्तादान के छोड़ने के दो भेद हैं १ शक्य, २ अशक्य। जो शक्य है उसको छोड़ने से निर्धन भी संसार में धनवान बन जाता है तब ही तो धर्म साधन करते हैं। बड़े २ राजा महाराजों या धनवान श्रावकों श्रीमन्तों के यहाँ धर्म जाकर जन्म लिवा देता है।

देखो एक कवि इस पर कहते हैं—

मनुष्य मजूरी ना रक्खे, क्यों रक्खेगा धर्म ॥१॥

धर्म भावना में बतलाते हैं—

जांचें सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुखदैन ॥१॥

कहने का तात्पर्य यह है कि धर्म का सेवन संसार में बढ़िया से बढ़िया सामग्री जुटा देता है। अतः धर्म सेवन में गलती कदापि नहीं करनी चाहिये। इसीलिये दान के फल को बट के बीज की उपमा दी हुई है।

न्यग्रोधस्य यथाबीजं स्तोकं सुक्षेत्रभूमिगं।
बहुविस्तीर्णतांयाति तद्विदानसुपात्रगम् ॥१॥

प्रश्न—जैसे बट का बीज कितना छोटा होता है परन्तु उस बीज का कितना बड़ा वृक्ष हो जाता है। वैसे ही सुपात्र में दिया हुआ दान का भी ये ही फल है। इसीलिये व्रतियों को भी सुपात्र के लिये दान देने की प्रेरणा की गई है।

दातार के सप्त गुण —

श्रद्धातुष्टि क्षमाशक्तिर्विज्ञानं चाप्यलुब्धता ।
भक्तिर्दातृगुणा एते सप्तादेया सुदातृभिः ॥१॥

नवधा भक्ति—

प्रतिगृहोच्चसंस्थानं, पादक्षालनमर्चनम् ।
प्रणामयोगशुद्धिस्तथैषणशुद्धिरेव हि ॥१॥

आगे आचार्य बतलाते है—

दीयते मुनये दानं चतुर्धागुणसिंचये ।
नवपुण्यजनैर्दत्तैः दातृसप्तगुणान्वितैः ॥१॥

दानशासनकार भी बताते है—

नवोपचारविधिना पात्रदानं विधीयते ।
जघन्यमध्यमोत्कृष्टपात्रत्रिविधमिष्यते ॥१॥

आगे और भी बताते हैं—

नवधा दीयते दान पात्रेषु त्रिविधेष्वपि ।
भक्त्याशुभफलप्राप्तिस्तस्माद्भक्ति समाचरेत् ॥१॥

आगे सामान्यतया बतलाया जाता है—

सर्वेषामेव पात्राणां चिनाचरणसम्भृतां ।
नवोपचार विधिना दानं देयं यथाक्रमम् ॥१॥
नवधा विधिना दानं देयं त्रिविधपात्राय ।
विधिमुत्क्रम्य देयेऽत्र बहुपुण्यहानिर्भवेत् ॥२॥

पं० आशाधरजी सागारधर्मामृत में पात्रों के भेद बतलाते हैं—

यत्तारयति जन्माब्धेः स्वाश्रितान्यानपात्रवत् ।
मुक्त्यर्थ गुणसंयोगभेदात्पात्रं हि त्रिधा मतम् ॥४३॥
यतिः स्यादुत्तमं पात्रं मध्यमं श्रावकोऽधमम् ।
सुदृष्टिस्तु विशिष्टत्वं विशिष्टगुणयोगतः ॥४४॥

अर्थ—इन सब श्लोकों का एकार्थ है। नवधा भक्ति सहित और दातार के सप्तगुणयुक्त पात्रों को दान देना चाहिये। नवधा भक्ति में गलती नहीं करना। ये ही पुण्याश्रव का कारण है। पं आशाधर जी ने पात्रों के तीन भेद माने हैं उनकी विधि इस प्रकार बतलाई है। १ पात्र। २ कुपात्र। ३ अपात्र।

१ पात्र भेद—के ६ भेद, ३ उत्तम, ३ मध्यम, ३ जघन्य।

२ कुपात्र भेद —३ भेद। उत्तम। मध्यम। जघन्य।

३ अपात्र भद —के तीन ३ भेद। इस प्रकार पात्रों के १५ भेद होते हैं। इनका प्रथक् २ खुलासा इस प्रकार है—

उत्तम पात्र के—६ भेद ३ उत्तम ३ मध्यम ३ जघन्य।

१ उत्तम पात्र छठे गुणस्थानवर्ती मुनि होते हैं (उन मे तीन भेद माने हैं ये भेद उत्तम में भी उत्तम बतलाया है।

१ प्रथम भेद २८ मूलगुणधारी तीर्थंकर भगवान।

२ दूसरा भेद जो मुनि सामान्य मुनिराज उस ही भव मे मोक्ष जाने वाले है।

३ तीसरा भेद गणधरादि अनेक आचार्यादिक। इनकी तो पूर्ण रीति से सप्तगुण सहित नवधा भक्ति ही करना चाहिए।

पात्रों का विवरण दो प्रकार से हुआ करता है—

१ सम्यक्चारित्र की अपेक्षा दूसरे सम्यक्दर्शन की अपेक्षा। यहां सम्यक्चारित्र की अपेक्षा पात्रों के १५ भेद माने हैं।

२ सम्यक्दर्शन प्राप्त करनेकी अपेक्षा सम्यक्त्व प्राप्ति करने वालों के तीन भेद माने हैं, न कि नवधा भक्ति करने वालों। इनका खुलासा इस प्रकार है। सम्यक्दृष्टियों में उत्तम पात्र मुनिलोग पूर्णत्यागी होते हैं, सो ही बतलाते हैं:—

सर्वसंगविनिर्मुक्तान्संयुक्तान्गुणसम्पदाः।
विश्वसत्वहितोद्युक्तान् रत्नत्रयविभूषितान् ॥१॥

स्वमनोगजसिंहाश्च मुमुक्षून्भव्यबोधकान्।
पापभीरून्महाधैर्यान् विसंख्यगुणसागरान् ॥२॥

जगदर्च्यक्रमात्वास्तृणहेमसमं पश्यतः
सर्वांगमलसंलिप्तास्त्यक्तकर्ममलव्रजान् ॥३॥

विद्धतमहापात्रान्मुनीन्द्रान्मित्रतारकान्।
सुदातृणां भवाब्धौतु, दानायनिधिसन्निभान् ॥४॥

सम्यग्दर्शन की अपेक्षा मध्यम पात्र होते हैं।

सम्यग्दृष्टिव्रतोपेता दानपूजापरायणा।
गृहणोति सदाचारा यान्ति मध्यमपात्रताम् ॥१॥

सम्यग्दर्शन की अपेक्षा जघन्य पात्र

सद्दृष्टयोव्रतैर्हीना जिनादिभक्तितत्पराः।
जघन्यपात्राजिनैरुक्ता जिनशासनवत्सला ॥१॥

वास्तविक चारित्र की अपेक्षा पात्रता मुनियों में ही मानी गई है सोई यहां बताया है। मध्यम जघन्य पात्र में नहीं।

गृहव्यापारजं पापं नश्येद्दानेन दानिनां।
अतिथीनां मुनीन्द्राणां पुण्यंसंजायतेतरां ॥१॥

मुनिजन ही यथार्थ सम्यक् चारित्र की अपेक्षा पात्रों में उत्तम पात्र हुआ करते हैं। इनकी शानीका दूसरा कोई यथार्थ पात्र नहीं है। इनकी सिद्धान्तों में नवधा भक्ति का प्रकरण आया है और जो उत्तम, मध्यम, जघन्य पात्रों की भक्ति कही है वो सब महाव्रती ही होते हैं, न कि मुनी और उत्तम श्रावक और अव्रत सम्यग्दृष्टि। इन में सम्यग्दर्शन की अपेक्षा पात्रता जरूर है। पर नवधा भक्ति के लिये नहीं। ये ही इसका निष्कर्ष है।

२ उत्तम पात्र में मध्यम भेद वाले पंचमगुण स्थानवर्ती ऐलक, क्षुल्लक तथा क्षुल्लिकायें हैं।

**प्रश्न**—शास्त्रों में तीनों प्रकार के पात्रों की नवधा भक्ति बतलाई है, उनमें उत्तम में मुनि, मध्यम में पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक (यानि ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका) और जघन्य में अव्रत-सम्यग्दृष्टि हैं सो कैसे ?

**उत्तर**—जो १ उत्तम, २ मध्यम, ३ जघन्य पात्र बतलाये हैं सो ये पात्रता सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से बतलाई है जिसमें उत्तममें मुनि, मध्यम में श्रावक, जघन्य में अविरतसम्यग्दृष्टि हैं। हाँ नवधा भक्ति की अपेक्षा जो तीन प्रकार के पात्र बतलाये हैं उनका हम ऊपर कथन कर चुके हैं और यहां पर भी सक्षेप में कहते हैं। जो तीन प्रकार के पात्रों को नवधा भक्ति सहित ही आहारदेना शास्त्रों में स्वीकार किया है सो निम्न प्रकार है—

पात्र—१ उत्तम, २ मध्यम, ३ जघन्य तीन प्रकार के हैं।

१ उत्तम में उत्तम—गृहस्थपन छोड़ दीक्षा लेकर २८ मूलगुणों को पालन करने वाले छठे गुणस्थानवर्ती भगवान् तीर्थंकर देव मुनिराज छद्मस्थ उत्तम में उत्तम पात्र हैं।

२ उत्तम में मध्यम—जो सामान्य मुनिराज चरम शरीरी उसही भव में मोक्ष होने वाले हों वे उत्तम में मध्यम पात्र हैं।

३ उत्तम में जघन्य—गणधर देव व अन्य आचार्य मुनिराज जो २८ मूलगुण पालते हों वे उत्तम में जघन्य पात्र हैं।

हां इनकी ही गुरु संज्ञा है। वस्त्रधारी की गुरु संज्ञा नहीं होती और जब गुरू संज्ञा ही नहीं तब नवधाभक्ति कैसी ?

प्रश्न—चन्द्रप्रभ चरित्र में लेख है कि राजा की सभा में जब क्षुल्लक जी पधारे तब अर्घपाद किया। सो क्या यह लेख झूंठा है ?

उत्तर—यह प्रश्न बहुत ठीक है और तुम कहते हो ऐसा ही लिखा है। परन्तु खयाल करो जब राजा रावण इन्द्र को जीत कर आया तब लंका के प्रजा जनों ने अर्घपाद किया, तो क्या रावण ऐलक या क्षुल्लक या ब्रह्मचारी या मुनिराज हो गया ? इस प्रकार का पद्मपुराण के १२वें अध्याय में उल्लेख है। जिस समय पर लोग भक्ति करते हैं, अन्ध श्रद्धा कर बैठते हैं। देखो, संकट हरण विनती में लिखा है कि 'प्रभू कंकड़ी के चोर को कटार मारिए नहीं।' तो कहाँ तो सर्वज्ञ केवली, हितोपदेशी, वीतरागदेव और कौन कंकड़ी का चोर और कौन कटार मारने

वाला। तो क्या लोग जो कुछ भी कहदें वही सिद्धान्त हो जाता है। इस प्रकार के वक्तव्यों से सिद्धान्त नहीं होता।

१ देखो गुणभूषण श्रावकाचार उत्तरार्द्ध पान ८६ में पंडित नन्दलाल जी चावली निवासी लिखते है कि क्षुल्लक बुलाने से भोजन कर आता है।

२ पण्डित आशाधर जी अध्याय ७ मे लिखते हैं कि क्षुल्लक भ्रमकर भोजन लाता है फिर एक स्थान पर बैठ कर खा लेता है और भोजन लाते समय दातार के घर पर धर्म लाभ सुनाता है। तथा पाँच या सात घरों से भोजन लेता है फिर कहां नवधाभक्ति रही। बतलाओ कितना अन्धेर चलाया है जो अनादि कालीन सिद्धान्त था सो सब ही बदल दिया।

पं० जयचन्द जी छाबड़ा तथा और कई पडित, मुनिराज तथा कई श्रावकाचार ग्रन्थ मौजूद हैं। परन्तु किसी शास्त्र में भी श्रावकों की नवधाभक्ति नहीं लिखी। परन्तु यह कथा कहां से लाकर धर दी।

**प्रश्न**— तो फिर क्षुल्लकों की नवधा भक्ति करना या नहीं ?

**उत्तर**—हां यह व्रती है श्रावकों में भी उत्कृष्ट व्रतधारी हैं। इनका आदर सत्कार होना लाजमी है, परन्तु इनके पद के योग्य। अगर इनकी ही नवधाभक्ति होने लगेगी तब मुनिराजों की क्या करोगे ? फिर तो वस्त्रधारियों में और दिगम्बरों मे फर्क ही क्या रहेगा।

इनकी भक्ति यानि आदर वास्ते यह दातार के घर पर भोजन वास्ते जावें तब यह धर्मलाभ कहे। तब दातारों का कर्तव्य है कि इनका आदर करें और आवाज लगा कर आहार जल शुद्ध है

पधारिये ! यह कहे तब यह आवें, इनको ऊँचे आसन पर बिठाओ और प्राशुक जल से इनके पाद प्रक्षाल करा दो फिर खड़े २ दोनों हाथ जोड़ कर इच्छामि मनसे वचनसे काय से आहार जल शुद्ध है। ऐसा कहकर शुद्ध प्रणाली से फिर चौके में इनको लेजावे। वहां जाकर आसन पर इनको बिठाकर भोजन परस कर इनको जिमावे। बाद में उबाले हुए पानी से कमंडल भरदो, फिर यह उपदेश देवें जो आपसे बने उसको धारण करो।

यही विधि ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका की है। ऐलक को अपने हाथ से भोजन का ग्रास दे दो। क्षुल्लक क्षुल्लिका थाली में जीमेंगे उनको वैसे परोस देवें।

यही इनकी विधि है। क्षुल्लक धर्मलाभ कहे और ऐलक अक्षय दान कहे। दातार के घर पर तब इनके यथा योग्य आदर सत्कार कर इनको भोजम जिमा देना ही गृहस्थों का परम कर्त्तव्य है।

ऐलक क्षुल्लक आदि का कर्तव्य—

भिक्षापात्रं समादाय व्रजन्मार्गे न चद्रुतम्।
विलंवितं न जल्पन्न स्वैर्यापथविलोचना॥

अर्थ—भिक्षापात्र हमेशा पास रक्खें और आप मांजें दूसरों से न मंजवावें। सब बात में दत्तचित्त पुरुषार्थधारी रहें।

लाभालाभेन संतुष्टः प्राप्यभिक्षां न वाततः।
अन्यस्मिन् गृहेगच्छेत् त्रिवैराग्यं हि भावयन्॥१॥
पश्चादेकालय स्थित्वा स्वादुहत्वातिसव्रतो।
आहारमरसम् वा नीरसं प्राप्ते यथाखिलं॥२॥

अर्थ—लाभ मे अलाभ मे सन्तोष, भिक्षा मिली या न मिली, एक स्थान में बैठकर विचारपूर्वक मन, वचन और काय से वैराग्य भावना का चिन्तवन करना। आहार सरस हो या नीरस हो आत्मा के कल्याण वास्ते नहीं है, यह तो सिर्फ आर्तरौद्रपरिणाम न हो इसलिए लिया जाता है। इसमें आर्त-रौद्रपरिणाम न कर ध्यान करूं मेरा कल्याण होगा। इस वास्ते आहार है न कि मोक्षमार्ग के वास्ते। ऐसा विचार कर सदा सन्तोषयुक्त रहना व्रतियों का कर्तव्य है।

पांचवीं सचित्त त्याग प्रतिमा का स्वरूप:—

**मूलफलशाकशाखाकरीरकंदप्रसूनबीजानि।**
**नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः।१४१।**

रत्नकरण्डश्रावकाचार

अर्थ—जो अपक्व वनस्पति अर्थात् मूल, फल, शाक, (कोंपल) कैर, कंद फल और बीज इन आठों पदार्थों को नहीं खावे यह दया की मूर्ति सचित्तत्यागी पांचवीं प्रतिमाधारी श्रावक कहलाने का अधिकारी है। इसी का श्रावकाचारों में कथन किया है—

**शाकबीजफलाम्बूनि लवणाद्यप्रासुकंत्यजन्।**
**जाग्रद्योऽङ्गिपञ्चत्वभीतः संयमवान्भवेत् ।।१५।।**

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

**अनन्तकायाः सर्वेऽपि सदाहेया दयापरैः।**
**यदेकमपि तं हन्तु प्रवृत्तोहन्त्यनन्तकान् ।।१७५।।**

सागारधर्मामृत

**अर्थ**—जिसके हृदय मे दया जागृत हो गई है, ऐसा प्राणी जीव वध से डरा हुआ अप्राशुक शाक, बीज, फल, पुष्प, लवण आदि को त्याग कर संयमवान होता है। लवण को सागारधर्मामृत मे भी सचित्त माना गया है। इसका कथन यहाँ और पहिले कर आये हैं ॥१५॥

दयालु पुरुष को सदा सर्व प्रकार की अनन्तकाय वनस्पति का त्याग करना चाहिए। क्योंकि एक भी अनन्तकाय वनस्पति की हिंसा में प्रवृत हुआ अनन्त जीवों को मारता है। अनन्त-काय सप्रतिष्ठत तथा अप्रतिष्ठित का वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

अब प्राशुकजल आदि के ग्रहण करने की विधि बताते है—

**सूर्याग्नियन्त्रेणपक्वं यत्फलबीजानि भक्षितुम्।**
**वर्णगन्धरसस्पर्श व्यावृतम् जलमर्हति ॥१॥**

**अर्थ**—सूर्य से सूखे या सुखाये हुए तथा अग्नि से तपाये या पकाये हुए या यन्त्रों से पेले हुए फल, बीज, गन्ना, निम्बू, आम आदि सचित वस्तुएँ तथा जल जिनका वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श बदल गया हो वह वस्तुएँ भक्षण (खाने, पीने, बर्तने) योग्य मानी गई हैं। इसलिए जल व वनस्पति जीवों की रक्षा करनी चाहिए।

जल मे जीवों की संभावना—

**सूक्ष्माणि जन्तूनि जलाश्रितानि, जलस्यवर्णाकृतिसंस्थितानि।**
**तस्माज्जलं जीवदयार्थहेतो, निर्ग्रन्थशूराः परिवर्जयंति ॥१॥**

अर्थ—जल पदार्थ में बादरजाति के सूक्ष्म जीव इतने रहते हैं कि एक बिन्दु में मोटे रूप से साइंस वालों ने बतलाया है कि ३६४५० चलते फिरते जीव दौड़ते रहते हैं वह जीव जल की ही आकृति वाले उस जल मे ही सदा रहते हैं इसलिये जैनियों की जीव दया ही एक ऐसी दया है जो अपनी योग्यतानुकूल उनकी दया कर सकती है।

इसी वास्ते गृहस्थों को स्नान मे भी, कपड़े धोने में भी सावधानी रखना चाहिये। क्योंकि नग्न दिगम्बर साधु लोग तो जल के खर्च मे बहुत विचार करते है यहां तक कि उनको स्नान की जरूरत पड़ती है तब वे दंडस्नान और व्रतस्नान व मन्त्रस्नान करके कार्य चलाते है, जलस्नान कर जीवों की हिंसा नहीं करते। सोही बताते है।

आपस्नानं व्रतस्नानं मंत्रस्नानं तथैव च।
आपस्नान गृहस्थानां व्रतमन्त्रतपस्विनां ॥१॥

अर्थ—सिद्धान्त मे स्नान तीन प्रकार के बताये है।

१ जलस्नान, २ व्रतस्नान, ३ मन्त्रस्नान। इनमें जलस्नान गृहस्थो के वास्ते सो भी विवेक पूर्वक अपने पद के योग बताया है, और रहे दो स्नान व्रतस्नान और मन्त्रस्नान सो त्यागी व्रतियों के लिये हैं। इसमें भी ऐसी रीति है कि चांडालादिक से स्पर्श होने पर व्रति यानि मुनि लोग दंडस्नान जल से जरूर करते हैं। जैसे कमंडलु से दंड की तरह जल प्रासुक की धारा सिर से पैर तक उतर आवे, ऐसे डालकर मन्त्र का जाप कर लेते हैं। जल में अनेक जन्तु रहते हैं। उनकी

हिंसा न हो ऐसा जीव दया वास्ते जीवों का बचाव हो सोही धर्म साधते हैं।

सारचतुर्विंशतिका में बतलाया है कि—

अपक्वान्यग्निनानीरं नादत्ते प्राशुकं क्वचित् ।
दयामूर्ति भजेत्सोत्र पंचमीप्रतिमावरा ॥ १६ ॥

अर्थ—बिना अग्नि के संस्कार यानि अग्नि पर प्रासुक किये बिना फल हो या बीज हो या जल हो अथवा कोई भी पदार्थ हो पाचवीं प्रतिमा धारी हरगिज भी गृहण नहीं करे, क्योंकि वनस्पति जीव की उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असख्यातवें भाग मानी गई है, ऐसा गोमटसारकार का उल्लेख है। इस पर पानी फेरना और सिद्धान्त की आज्ञा का उल्लंघन करना वज्रपाप यानि तीव्र मिथ्यात्व प्राप्त करना कहा है।

धर्मसंग्रह श्रावकाचार में इस प्रकार बतलाया है कि—

हरितेष्वंकुराद्येषु सन्त्येवानन्तशोऽङ्गिनः ।
निगोताः इतिसार्वज्ञा वचः प्रमाणयन्सुधीः ॥
पादापि सस्पृशंस्तानि, कदाचिद्गाढ़तोऽर्थतः ।
योतिसंक्लिश्यते प्राणनाशेप्येषकिमत्स्यति ॥१८॥

अर्थ—हरित अंकुरादि में अनन्त निगोद जीव हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ भगवान के वचनों को प्रमाण करता हुआ चरण मात्र से भी उन अंकुरों को स्पर्श करता हुआ अत्यन्त दुखी होता है। वह पुण्यशाली भव्यात्मा उनको कैसे भक्षण करेगा अर्थात् कभी भी भक्षण नहीं करेगा।

यह भी ध्यान में रखने की बात है कि इस प्रतिमा में सचित्त खाने का ही त्याग नहीं है किन्तु अन्य प्रकार भी त्याग हैं जैसे सचित्त पानी से नहाना, कपड़े धोना आदि। हां कुवे से जल भरकर ला सकता है। सचित्त को अचित्त बना सकता है।

सचित्त त्यागी गृहवासी हो या गृहत्यागी हो इनके आचरण में थोड़ा अन्तर है। गृहवासी स्वयं सब कार्य कर सकता है। और गृह त्यागियों का निर्वाह गृहस्थ लोगों द्वारा होता रहता है। भोजन को जावे तब १ कमण्डलु पानी प्राशुक जल का गृहस्थों के घर से भर लावे जिससे दिन भर गुजर कर लेवे और गृहवासी अपने आप प्राशुक बनाकर गुजर कर सकता है। प्राशुक बनाने का दोनों प्रकार के व्रती को त्याग नहीं हुआ करता है।

सकलकीर्ति श्रावकाचार में लेख है कि भोगोपभोग परिमाणव्रत में जिन सचित्त वनस्पतियों का त्याग कर दिया है ऐसे फल, पुष्प, बीज, शाक, पत्र आदि को अचित्त करने पर भी न खावे। जिससे इन्द्रिय विजय और त्रस स्थावर जीवों की दया पले।

सचित्त त्यागी अपने हाथों से यत्नपूर्वक रसोई बना सकता है और त्यागियों को या अपने कुटुम्बियों को जिमा सकता है मगर द्रव्य सब मर्यादित और अचित्त ही लेना नकि सचित्त।

ज्ञानानंद श्रावकाचार मे बताया है कि पांचवीं प्रतिमाधारी के सचित्त भक्षण का त्याग है नकि स्पर्श का या बनाने का। ऐसा त्याग तो सकल संयमी के होता है।

स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा की संस्कृत टीका में लिखा है कि सचित्त त्यागी सचित्त पदार्थ न आप खावे और न अन्य को खिलावे।

कुन्दकुन्द स्वामीकृत अष्टपाहुड़ में बतलाया है—

**सच्चित्तभत्तपाणंगिद्धि दप्पेणऽधीपभुत्तूण ।**

**पत्तोसितिव्वदुक्खं अणाइकालेण त चित्तं ॥१०२॥**

**कदं मूलं बीयं पुण्फं पत्तादि किं चि सच्चित्तं ।**

**असिऊण माणगव्वं भमिओसि अणंत संसारे॥१०३॥**

**अर्थ**—हे जीव ! तूने दुर्बुद्धि, गृद्धि, अज्ञान, अहंकार या उद्धतपन से सचित्त भक्षण करके सजीव आहार पानी लेकर तीव्र दुख पाया है। उसे चिन्तवन कर। कद कहिये जमी कन्दादिक मूल कहिये अदरख, गाजर, मूली, सकरकन्द घुइयां रितालु, बीज कहिये गेहूँ, चना, जुवार, बाजरा, मक्की, मूंग, उड़द, मटर, मोठ, चंवला और भी कई प्रकार के फल, पुष्प, पत्र, साक, नागरबेल के पान जो कुछ सचित्त वस्तु गर्म कर भक्षण की उससे हे जीव तू अनन्त संसार में भटका और बहुत दुःख का भाजन हुआ। उनको विचारो, कैसे २ दारुण दुःख भोगे।

सागारधर्मामृत अध्याय ७ में कहा है कि—

**अहो जिनोक्तनिर्णीतिरहो अक्षजितिः सताम् ।**

**नालक्ष्यजन्त्वपि हरित् प्सान्त्येतेऽसुक्षयेऽपियत् ॥१॥**

**अर्थ**—सज्जन पुरुषों को जिनागम सम्बन्धी निश्चय बहुत ही आश्चर्य करने वाला है, और उनका इन्द्रिय विजय भी आश्चर्यकारी है। क्योंकि जिसमें जन्तु दिखाई भी नहीं देते ऐसी हरित वस्तु को प्राण जाने पर भी नहीं खाते। अपि

शब्द से यह आशय निकलता है कि जब वे आगम की श्रद्धा पूर्ण आज्ञा से ही सचित्त वनस्पति के भक्षण का त्याग कर देते हैं तो जिन वस्तुओं में अनुमान और प्रत्यक्ष से प्राणियों की सत्ता की सम्भावना है, उनका भक्षण कैसे कर सकते हैं? अर्थात कभी भी नहीं कर सकते।

छट्ठी रात्रि भुक्ति त्याग प्रतिमा

**निशायाँ स्वाद्यं पानं खाद्यं लेह्यं दिवामैथुनानि च।**
**सविरतोरात्रिभुक्तिः अनुकम्प्येषुकेषु रक्षणं ॥ १ ॥**

**अर्थ**—कृत, कारित, अनुमोदना, तथा मन वचन, काय से, रात्रि मात्र मे हरेक प्रकार के आहार का त्याग करना अर्थात सूर्य के छिपने के दो घड़ी पहले तथा सूर्य के निकलने के दो घड़ी पीछे तक आहार, पानी, खाद्य, स्वाद, लेह्य, पेय ऐसे चारों प्रकार के भोजन का सर्वथा त्याग और दिवा मैथुन अर्थात् दिन में स्त्री संसर्ग का सर्वथा त्याग होता है। इसी को रात्रि-भुक्ति त्याग प्रतिमा कहते हैं। यहां पर यह नहीं समझना कि पंचमी प्रतिमा जो सचित्त त्याग है उसके अन्दर या उसके पहिले की प्रतिमाओं मे रात्रि भोजन या दिन में स्त्री सेवन करते होंगे और छट्ठी प्रतिमा में ही इसका त्याग होता होगा। सो बात नहीं है। यह त्याग तो पाक्षिक अवस्था में ही हो जाता है। परन्तु यहां तक उसमें कई प्रकार के दूषण लग जाया करते थे सो अब प्रतिमा रूप प्रण में वे दूषण नहीं लगेंगे। सब प्रकार से दोषों को बचाकर आचरण करे तबही जीवों की अनुकम्पा पल सकती है, तथा जीवों की दया पल सकती है, अन्यथा नहीं।

सागारधर्मामृत अध्याय ७ में बतलाया है कि—

रात्रवपिऋतावेव सन्तानार्थमृतावपि ।

भजन्ति वशिनः कान्तां न तुपर्वदिनादिषु ॥१४॥

अर्थ—जितेंद्रिय पुरुष ( श्रावक ) रात्रि में ही, रात्रि में ऋतुकाल मे भी सन्तान प्राप्ति के लिये न कि विषयभोग का आनन्द लेने के लिये स्वदार सेवन करते हैं। सो भी पर्व दिवस अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टान्हिका, दशलक्षण, सोलहकारण आदि में स्त्री सेवन नहीं करते। अर्थात् त्याग कर देते हैं।

एवं षट् प्रतिमायावच्छ्रावकागृहिणोऽधमा ।

निरूच्यतेऽधुनामध्यास्त्रयोऽन्यावर्णिनोऽपि च ॥२५॥

अर्थ—इस छट्टी प्रतिमा तक के श्रावक जघन्य श्रावक कहलाते है। सातवीं, आठवीं नवमीं, इन तीनों प्रतिमा के धारण करने वाले व्रती मध्यम श्रावक होते हैं। इन की वर्णी संज्ञा है।

जैनधर्म पतित पावन धर्म हैं, इसमें सभी को यथायोग्य व्रतपालन का अधिकार है।

स्त्री और पुरुषों के प्रतिमा पालन करने के ढंग मे द्रव्यरूप से तो भेद अवश्य होता है किन्तु भावों से भेद नहीं है। स्त्री अपने बच्चे को रात्रि मे स्तन पान कराती हुई भी छटी प्रतिमा ठीक २ पाल सकती है।

प्रश्न—क्या छठी प्रतिमाधारी रात्रि में भी कार्य कर सकता है ?

उत्तर—हां अपनी २ मर्यादा के अनुकूल स्त्री बच्चे को स्तनपान करा सकती है। जैसे स्त्री १६ हाथ की एक साड़ी रखते हुए भी उपचार से महाव्रती है, वैसे ही।

अपनी अपनी शक्ति और परिस्थिति के अनुकूल महर्षियों ने व्रतियों की साक्षा बताई है। इसलिए पालन करने में परस्पर भेद देखकर संदेह नहीं करना चाहिए। स्त्रियां गृहस्थ अवस्था में व्रत न लें ऐसा कहीं शास्त्रों में नहीं लिखा। हां इतना जरूर है कि अपनी २ योग्यतानुसार पालन करें।

सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप—

सूक्ष्मजन्तुगणाकीर्णं योनिरन्ध्रं मलाविलम्।
पश्यन्यः संगतोनार्याः काष्ठादि प्रयतोऽपिच ॥२६॥
विरक्तो यः भवेत्प्राज्ञ स्त्रियोऽङ्गेस्त्रिकृतादिभिः।
पूर्वषड् व्रतनिर्वाही ब्रह्मचार्यत्र स स्मृतः ॥२७॥

धर्मसंग्रहश्रावकाचार

अर्थ—पहिले की छः प्रतिमाओं को भले प्रकार निर्वाह करने वाले जो बुद्धिमान स्त्रियों के योनि स्थान के छोटे २ जीवों के समूह से पूर्ण तथा झरते हुए मलसहित देखकर नाना प्रकार दुखादिकों को सहन करता हुआ भी मन, वचन, काय से तथा कृत, कारित, अनुमोदना से स्त्री के सेवन से विरक्त होता है (स्त्रियां पुरुषों से विरक्त होती हैं) उस भव्यात्मा को नियम से ब्रह्मचारी (ब्रह्मचारिणी) समझना।

विषं भुक्तं वरं लोके झंपापातोऽग्निकुण्डके ।
रमणी रमणस्पर्शी रमणीयो नहि कर्हिचित् ॥२३॥

धर्मसंग्रह श्रावकाचार

अर्थ—हलाहल विष पीना, पहाड़ पर से गिर कर मरना, झंपापात करना या अग्नि मे कूद जाना अच्छा है परन्तु स्त्रियों के साथ रमण करना यानि स्पर्श करना कभी भी अच्छा नहीं।

यो न च याति विकारं युवतिजनकटाक्षवाणविद्धोपि ।
सत्वेकशूरशूरो न च शूरो भवेच्छूरः ॥१॥

संसारबीजभूतं शरीरं दृष्ट्वा बीभत्समनंगत्वेन ।
पश्यन्नात्मान्यात्मानं स ब्रह्मचारी नैष्ठिकः ॥२॥

अर्थ—संसार का बीजभूत मलका घर इस शरीर को देख कर पुण्यात्मा पुरुष अन्य (स्पर्श) के अंगों का स्पर्श या क्यमन विषयरूप वासना को घिनावना समझ कर ऐसे महा निंद्य कार्यों को मन, वचन, काय से त्याग देते हैं, वही पुरुष धन्य माने गये हैं। क्योंकि अन्य के अंग से अन्य के घर्षण में अनन्त जीव सम्मूर्च्छन जीवों की प्रत्यक्ष हिंसा दिखती है। यानि विषय सेवन से जीवों का विनाश होता ही है।

मैथुनाचरणे मूढ म्रियन्ते जन्तुकोटयः ।
योनिरन्ध्रसमुत्पन्ना लिंगसंघट्टपीडिता ॥२१॥१३॥

ज्ञानार्णव

अर्थ—स्त्री रूप पदार्थ से गुप्त अंग में सदा ही असंख्य सैनी सम्मूर्च्छन जीव उत्पन्न होते रहते हैं, जो मैथुन सेवन से

विनाश को प्राप्त होते हैं। हे मूढ़ ! ऐसी हिंसा से जीव संसार मे महान् क्लिष्ट शोक ताप आक्रंदन दुःख भोगता है। नरक निगोद का पात्र बनता है। ऐसा समझ कर पुण्यशाली स्त्री या पुरुष न तो पुण्य सेवन करते हैं और न उसका स्मरण करते हैं, वही प्राणी संसाररूपी सागर से पार होते हैं और वही धन्य माने गये हैं।

ब्रह्मचारी गृही वानप्रस्थो भिक्षुश्च सप्तमे।
चत्वारोऽङ्गे क्रियाभेदादुक्तावर्णवदाश्रमाः ॥२०॥

सागारधर्मामृत अध्याय ७

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।
इत्याश्रमास्तु जैनानाँ सप्तमाङ्गाद्विनिसृता ॥

चारित्रसार

अर्थ—उपासकाध्ययन नामा सातवें अंग में वर्णों की तरह क्रिया के भेद से चार आश्रम कहे गए है। १ ब्रह्मचारी २ गृहस्थ ३ वानप्रस्थ और ४ भिक्षु। मुनिधर्म के कथन मे भिक्षुक का तो वर्णन कर दिया और गृहस्थाचार का भी कथन कर दिया वानप्रस्थ का कथन ग्यारहवीं प्रतिमा में करेंगे। यहाँ तो सिर्फ प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य का वर्णन करते है।

ब्रह्मचर्याश्रम का वर्णन चामुन्डराय कृत चारित्रसार से—

तत्र ब्रह्मचारिणः पंचविधा उपनयावलम्बादीक्षा गूढ़नैष्टिकभेदेन।

अर्थ—ब्रह्मचारियों के पाँच भेद माने गये हैं। यथा—१ उपनय, २ अवलम्ब, ३ अदीक्षित, ४ गूढ़ और ५ नैष्ठिक। इनका विशेष चामुण्डरायचारित्रसार से समझना चाहिए।

**ब्रह्मचारियों को निम्न कार्यों पर ध्यान देना चाहिए—**

१ शरीर का विकाररूप शृंगार न करे। २ स्त्रियों का सेवन छोड़ दे। ३ गीत नृत्य वादित्र नाच आदि न देखे न सुने। ४ स्त्रियों की संगति नहीं करे। ५ स्त्रियों में काम भोग की कल्पना न करे। ६ स्त्रियों के मनोहर अंगों को न देखे। ७ कारणवश किसी स्त्री का अंग दीख भी जावे तब भी विचार नहीं करे। ८ भोगोपभोगों को याद न करे। ९ आगामीकाल भोगों की इच्छा न करे। १० शरीर से खोटी क्रिया कर वीर्यपात न करे।

इस प्रकार काम के दश वेग होते हैं उनसे सदा बचते रहना ही ब्रह्मचारियों का कर्तव्य है और यही वीरता है।

शील की नव बाढ़ें—

॥ सवैया ॥

**तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, देपरीत्त भाषे मधु वैन।**
**पूरव भोग केलि रस चिन्तन, गुरु अहार लेत चित चैन।**
**करसुचि तन सिंगार बनावत तियपर्यङ्क मध्य सुख चैन।**
**मनमथ कथा उदरभर भोजन ये नव वारि कहे जिन वैन॥**

**वैरागी अरु बाँदरो तीजी विधवा नार।**
**ये तीनों भूखा भला धापा करें बिगार॥**

अतः पूर्ण रीति से ब्रह्मचारियों को सावधान रहना ठीक है।

**देवदैत्योरगव्यालग्रहचन्द्रार्कचेष्टितम्।**
**विदन्ति ये महाप्राज्ञातेऽपिवृत्तम् न योषिताम् ॥२४॥**

**ज्ञानार्णव**

अर्थ—जो महान विद्वान् दैव, दैत्य, नाग, हस्ती, ग्रह-चन्द्रमा और सूर्य इन सबकी चेष्टाओं को जानते हैं, वे भी स्त्रियों के चारित्र को नहीं जान सकते; क्योंकि स्त्री चरित्र अगम्य है।

कुष्टव्रणमिवाजस्रं वातिश्रवति पूतिकम् ।
यत्स्त्रीणाँ जघनद्वारम् रतयेत्तद्विरागिणाम् ।१॥

अर्थ—स्त्रियों का जघन्य द्वार जो कुष्ट (कोढ़) के घाव समान निरन्तर झरता ही रहता है और दुर्गन्ध से युक्त रहता है तब भी कामी पुरुषों के लिए वह रतिकारी है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।

यस्याः संसर्गमात्रेण यतिभावः कलंक्यते ।
तस्याः किं न कथालोपैभ्रूभङ्गैश्चारु विभ्रमैः ॥१४॥

ज्ञानार्णव

अर्थ—जिस स्त्री के संसर्ग मात्र से ही मुनिपन कलंकित हो जाता है उसके साथ वार्तालाप करने, भौंह के टेढ़े पन और विभ्रम विलासको देखने से क्या मुनिपन नष्ट नहीं हो सकता ?

अनंतशक्तिरात्मेति श्रुतिर्वस्त्वेव न स्तुतिः ।
यत्स्वद्रव्ययुगात्मैव जगज्जैत्र जयत्स्मरम् ॥१॥

अर्थ— इस कामदेव को जीतने की शक्ति इस आत्मदेव में ही है, क्योंकि, आत्मा अनन्तशक्ति वाला है, यहां यह श्रुति (सिद्धान्त) वास्तविक है। यानि यथार्थ ही है। कोई स्तुति

अर्थात् कोरी बड़ाई नहीं है। आत्मद्रव्य में लीन रहने वाला आत्मा ही जगतविजयी कामदेव को जीत लेता है।

अठारह हजार शील के भेदों को समझ कर उनके भंगाभंग बचाने से पूर्ण शीलपालन होता है। अत. अब शील के अठारह हजार भेदों का निरूपण करते हैं।

स्त्रियों के मूलभेद दो होते हैं। १ चेतनस्त्री और २ अचेतनस्त्री।

१ चेतनस्त्री तीन प्रकार की। १ मानुषी २ देवी ३ तिर्यंचिनी

२ अचेतनस्त्री तीन प्रकार की। १ काष्ठ २ पाषाण ३ चित्राम इस प्रकार स्त्रियें छ प्रकार की होती हैं।

शास्त्रों में चेतनस्त्री संबंधीशील के १७२८० भेद माने हैं। वे ये हैं। चेतनस्त्री तीन प्रकार की, इनके साथ पाप मन से, बचन से और काय से हुआ करता है। इनको आपस में गुणा करने से नव भेद हुए। इनकी प्रवृत्ति कृत, कारित, अनुमोदना से होती है। इसलिये इनसे गुणा करने पर सत्ताईस भेद हुए। इनके साथ पांचों इन्द्रियों से पाप होता है। इसलिये इनसे गुणा करने पर एकसौ पैंतास [१३५] भेद हुए। फिर वह पापाचारों संज्ञा द्वारा होता है। इसलिये उनके गुणित ५४० भेद हुए। ये द्रव्य से और भाव दोनों से होते है। इनके गुणन से (१०८०) भेद हुए। फिर यह चारों कषायों के उत्तर भेद १६ से होता है। सो इन से गुणे तब १७२८० भेद चेतनस्त्री सम्बन्धी हुए।

३+३+३+५+४+२+१६=१७२८०

अचेतनस्त्री भी ३ तीन प्रकार की, इनसे पाप, मन से और काय से होता है। तो गुणा करने पर छह भेद हुए। इनको

कृत, कारित, अनुमोदना से गुणा करने पर अठारह भेद हुए। यह दोष पांचों इन्द्रियों से होता है। सो इनसे गुणा करने पर नब्वे [९०] भेद हुए। फिर यह पाप चारों संज्ञाओं से होता है। इनसे गुणा करने पर [३६०] भेद होते हैं। यह दोष एक द्रव्य से और दूसरे भाव से होता है। इसलिये गुणा करने पर [७२०] भेद हो जाते हैं। ३×२×३×५×४×२=७२०। सब मिलाने से शील के भेद १८००० हो जाते हैं।

भगवान कुंदकुंद स्वामी भी बतलाते हैं कि जब तक यह जीव शील के भेदों को न समझे तब तक भवसागर से पार नहीं हो सकता। इसलिये इन भेदों को समझ कर पालन करना चाहिये।

दोहा

शील बड़ा संसार में सब रत्नों की खानि।
तीन लोक की संपदा रही शील में आनि॥

शीलवान पुरुष छठी प्रतिमा तक अपनी संतान के ब्याह करा सकता है न कि अन्य पुरुषों का। जब नैष्ठिक हो जावे तब अपने की भी शादी ब्याह न करावे।

एकमेव व्रतं श्लाघ्यं ब्रह्मचर्यं जगत्त्रये।
यद्विशुद्धिं समापन्ना पूज्यन्ते पूजितैरपि॥३॥११॥

ज्ञानार्णव

अर्थ—यह ब्रह्मचर्य व्रत तीन जगत में प्रशंसा करने योग्य है। जिन पुरुषों को इसकी निरतिचाररूप प्राप्ति हुई है, वे पुरुष पूज्य पुरुषों के द्वारा पूजे जाते हैं। जैसे अर्हन्त भगवान

ब्रह्मचर्यव्रत की पूर्णता को प्राप्त हुए। अतः उनको पूजा गणधर देव और मुनीश्वरों द्वारा होती है।

ब्रह्मव्रतमिदं जीयाच्चरणस्यैव जीवितम्।
स्युः सन्तोऽपि गुणा येन विना क्लेशाय देहिनाम् ॥४

ज्ञानार्णव

अर्थ—आशीर्वाद पूर्वक मुनि लोग भी इस व्रत की महिमा गाते हैं कि यह ब्रह्मचर्यव्रत जयवन्त हो, क्योंकि चारित्र का तो एकमात्र जीवन है। इसके बिना अन्य कितने ही गुण होवें वे सब जीवों को क्लेश के ही कारणहोते हैं। इसलिये उन प्राणियों का भी धन्य भाग है जो इस व्रत को धारण करते हैं।

सप्तमप्रमिधारी ब्रह्मचारी दोनों तरह के होते हैं। १ गृहत्यागी २ गृहवासी। गृहवासी ब्रह्मचारी जब तक अष्टम नवम प्रतिमा धारण न करे तब तक घर में ही संतोष से रहे और तब तक साधारण गृहस्थ सरीखा भेष रक्खे, सादा कपड़े पहिने और उदासीन हालत में रहे। क्षुल्लक सरीखा भेष न बनावे। गृहत्यागी ब्रह्मचारी क्षुल्लक सरीखा भिक्षावृत्ति करने वाला भेष बनावे।

इस प्रतिमाधारी को चाहिये कि वह स्त्रीवाची सवारी पर नहीं बैठे। जैसे घोड़ी, ऊंटनी, हथिनी चेतन सवारी।

एक दिन में एकबार ही भोजन करे। स्नान सादा तौर से कर लेवे, कपड़े सादा सफेद पहिने, जूता नहीं पहिने, छाता नहीं लगावे, चारों विकथाओं का त्याग रखे, भंड वचन कभी न बोले, हंसी दिल्लगी रूप न प्रवर्ते, पलंग पर न सोवे, अपने बिस्तर पर अन्य को न सुलावे, अपने वस्त्र कपड़े आप ही

धोवे, गृहस्थों से न धुलावे। ज्यादा खराब हो जावें तो दूसरे बदल लेवे।

इसी प्रकार स्त्रियों को भी पुरुषों से बचते रहना चाहिये। जहां तक हो वहां तक अकेले पुरुषों के यहां भोजन को भी न जावे और न पुरुषों से छीने छाने का सम्बन्ध रक्खे। न अपने कपड़ उनसे धुलवावे।

मूर्छाङ्गमर्दतृट्नेत्रचापल्यंकुचवक्रता।
स्वेदस्यादतिदाहश्च स्त्रीणां कामज्वरो भवेत्॥

अर्थ—कामज्वर से स्त्रियों के मूर्च्छा, अङ्गसादन, पिपासा, नेत्रों में चपलता, कुचों में वक्रता, स्वेद, अतिदाह आदि होते हैं। अतः ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारियों को चाहिये कि वह बाह्य में तो विराग भेष रखे और अन्तरंग में विकारभावों को छोड़ता रहे तभी कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

आरम्भ त्याग प्रतिमा का स्वरूप:—

जो आरंभं ण कुणदि अण्णं कारयदि णेय अणुमण्णो।
हिंसासंतट्ठमणो चत्तारम्भो हवे सो हि ॥३८५॥

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा

अर्थ—जो श्रावक गृहकार्यसम्बन्धी कुछ भी आरम्भ न करे, अन्य से न करावे, करे जाको भला नहीं माने, सो हिंसा से भयभीत आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारंभतो व्युपारमति।
प्राणातिपातहेतोः योसावारंभविनिवृत्तः ॥१४४॥

**अर्थ**—जो श्रावक हिंसा से भयभीत होकर आरम्भ कहिये असि, मषि, कृषि, सेवा, शिल्प, वाणिज्य इन संसार सम्बन्धी क्रियाओं को एवं सेवा और सम्पदा को भी छोड़ देता है और संतोष धारण कर ममता घटाता है। अर्थात् ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता जिससे किसी भी प्राणी को कोई बाधा होवे। वह आरम्भत्याग प्रतिमाधारी श्रावक होता है।

**विशेष**—जिसने ऐसे आरम्भों का त्याग कर दिया है जो संसार के बढ़ाने वाले हों तथा जो मोक्षमार्ग का साधनभूत हो सके ऐसा आरम्भ करता है। जैसे स्नान, दान, श्रीजिनेन्द्र देव की पूजा। गृहत्यागी आरम्भव्रती के तो यह व्रत नव कोटी सेशुद्ध पल सकता है। वह न स्वयं आरम्भ करता है, न कराता है, न करते हुए को अच्छा समझता है।

परन्तु गृहवासी के यह व्रत छह कोटी से पलता है। क्योंकि इसको अपनी गृहस्थी के साथ रहना पड़ता है। इसीलिये स्वामी प्रभाचन्द्र मुनिराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार की संस्कृतटीका में बताया है कि—

यो व्युपारमति विशेषेण उपरत व्यापारेभ्य आसमन्तात् आयते असावारम्भविनिवृत्तो भवति। कस्मात्? आरम्भतः कथम्भूतात्, सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखात्, सेवाकृषिवाणिज्या प्रमुखा आद्या यस्य तस्मात् कथं भूतात्। अनेन स्नपनदानपूजाविधानाद्यारंभाद्युपरतिर्निराकृता तस्य प्राणातिपातहेतुत्वाभावात् प्राणिपीडापरिहारेणैव तत्संभवात्। वाणिज्याद्यारम्भादपि तथा सभवस्तर्हि विनिवृत्तिर्न स्यादित्यपि नानिष्टं प्राणिपीडाहेतोरेव तदारम्भात् निवृत्तस्य श्रावकस्यारम्भविनिवृत्तत्वगुणसम्पन्नोपपत्तेः ॥२३॥

अर्थ—गृहवासी श्रावक कृषिवाणिज्यादि महापाप के उपजाने वाले आरम्भ को बिलकुल छोड़ देता है परन्तु जब तक गृहस्थ अवस्था के साथ रहता है उसको देवपूजा वास्ते स्नान, दान और पूजा करनी पड़ती है। इसलिये कुवे से पानी भरना, द्रव्यधोन., दान देने (यानि अतिथि संविभाग करने वास्ते भोजन बनाना) ये कार्य गृहस्थ अवस्था में छूटना अशक्य हैं, अतः करना पड़ते है। इनको छोड़ने के वास्ते ही गृहत्यागी बनता है।

विशेष व्याख्या—आरम्भ त्यागी श्रावक के धार्मिक आरंभ में जैसे देवपूजा के लिये जल भर कर लाना, द्रव्य को शोधना, फटकना इसमें भी हिंसा जरूर हुआ करती है परन्तु गृहस्थावस्था में रहता है तब तक कुटुम्ब के कृषि वाणिज्य का दोष जो बाहर था सो तो छूट गया। परन्तु सूक्ष्म आरंभ का दोष रहता है, जो कि ग्यारहवीं प्रतिमा तक लग ही जाता है टलता नहीं। इस प्रकार पं० जयचन्दजी छावड़ा सर्वार्थसिद्धि की टीका में लिखते हैं कि ग्यारहवीं प्रतिमा के अन्त में जब यह दोष छूटते हैं वहां ही अणुव्रत महाव्रतरूप में परिणत हो जाते हैं। वह ही मुनिधर्म है।

इस प्रतिमा को धारण करे तब अपने पास धन या जायदाद होवे उसका विभाग करे। अपने पास रखना होवे सो तो रक्खे जिससे अपना अपवाद न हो और पीछे बची हुई सम्पत्ति को कुटुम्बीजनों में विभाग करके बांट देवे, जिससे उनको संतोष रहे। जितनी अपने पास सम्पत्ति रखी हो, उससे तीर्थ यात्रा करे, दूसरों से मांगकर नहीं करे और नया धन बढाने की कोशिश नहीं करे।

आरम्भत्यागी अपने घर पर या पराये घर पर न्यौता से या बुलाने पर भोजन कर लेता है। हां इंद्रियों के पोषण करने वास्ते भोजन का गृहस्थों को उपदेश नहीं देता है। अगर कोई गृहस्थ पूछे तो अपनी प्रतिज्ञा त्यागव्रत बता देता है भोजन करने जावे तब १ कमंडलु प्राशुक जल का भर लावे वह कार्य में खर्च करे।

कदाचित् पापकर्मके उदयसे अपने पासके धनको कोई दायादार या राजा या चोर ले लेवें तो आर्त्तरौद्र परिणाम नहीं करे, कर्म का उदय समझ सन्तोष रखे।

प्रश्न—ऐसे आरम्भ त्यागी व्रती को कोई भोजन को नहीं बुलावे तब वह क्या करे?

उत्तर—आरंभत्यागी के लिये पहिले ऊपर बता चुके हैं कि अपनी सम्पत्ति में से धन रखे और दान में, पूजा में, भोजन में खर्च करे। आचार्य प्रभाचन्द्र स्वामी ने रत्नकरंडश्रावकाचार की टीका में बता दिया है सो ही करे। खोटे विकल्प करने से क्या फायदा?

आरंभत्यागी गृहवासी कुटम्बके साथ रहे तबतक भोजन बनाने की व्यवस्था आजावे तो अपना अतिथि संविभाग व्रत को पालने के वास्ते स्वयं जैसे देव पूजा करता है और जल भर कर लाता है द्रव्य धोता है वैसे ही स्वयं रसोई बनाकर अपने व्रत का ठीक ठीक निर्वाह करता है। अगर अपने हाथ से रसोई न बनावेगा तो अतिथि संविभाग व्रत रहेगा ही नहीं।

गृहसे छूटे हुए आरंभत्यागीको चाहिये कि गृहस्थोंके घर पर भोजन करें न कि उनके ऊपर अपना शासन जमावे। अथवा

से जो भी कुछ गृहस्थ सेवा करे वही स्वीकार करे न कि दबाव देकर कुछ मांगे।

यात्रा वगैरह जाना हो तो पैदल विहार करे न कि कोई से माँग कर मोटर, रेल सवारी में बैठे। आचार्यों ने सवारी में बैठने का त्याग इसही प्रतिमा में कहा है।

आचार्य सकलकीर्ति सारचतुर्विंशतिका में कहते हैं—

सकटादिकमारुह्य कुचिन्ग्रामं व्रजेन्न सः।

गृहकार्यविवाहदि सर्वं च योगतस्त्यजेत् ॥५१॥

अर्थ—आरंभत्यागियों के लिये सवारी में बैठने वास्ते या कुटम्बियों के विवाह शादी में अनुमति या सलाह देना मना किया है। फिर भी आजकल के त्यागी लोग पाप बंध के कारण हिंसा जन्य कार्य करके आनन्द मानते हैं, सो भी बड़े बड़े त्यागी कहलाकर और मांग कर।

जैनधर्म में मागना कितना बुरा कहा है सो देखो:—

दोहा

अजाचीक जिनधर्म है, धर्मी जांचे नाहिं।
धर्मी बन जांचन लगे, सो ठगिया जग माहिं ॥१॥
रानी तो काते नहीं, जो काते सो रांड।
साधू तो मांगे नहीं, जो मांगे सो भांड ॥२॥
कर ऊपर करको करो, करतल कर ना करो।
जा दिन करतल कर करो, तादिन मरण करो ॥३॥
धन खेती धिक चाकरी, धन धन है व्यापार।
सबसे बुरा लखानियां बातें मांगणहार ॥४॥

कहांतक कहा जावे कितनी बुरी बातें मांगने वालों के वास्ते बतलाई जाती हैं। फिर भी जैनधर्म के धारक त्यागी महात्मा होते हुए भी मांगना नहीं छोड़ते। यह कितनी लज्जा की बात है।

प्रश्न—अगर आरंभत्यागी ब्रह्मचारी को कोई गृहस्थ भोजन को न बुलावे तब वह क्या करे? क्योंकि भोजन बिना चलता नहीं।

उत्तर—आरंभत्यागी ब्रह्मचारी दो तरह के होते हैं १ गृहवासी २ गृहत्यागी।

(१) गृहवासी तो अपने घर में रहे और अपने पास की सम्पत्ति में से जो धन है उसमें से भोजन कपड़ा यात्रा वास्ते खर्च करें, किसी से मांगने की जरूरत नहीं।

(२) रहा गृहत्यागी सो पहिले अपनी शक्ति देखकर आरंभ त्याग प्रतिमा धारण करे। क्योंकि आजकल का समय परीक्षा प्रधानी का है। आप में इतनी योग्यता होवे तो आरंभत्याग प्रतिमा ग्रहण करे, जो श्रावकों को समझावे उपदेश देवे, शास्त्र सुनावे और उनको आप की तरफ श्रद्धा कराकर उनकी भक्ति से भोजन करे। अगर इतनी योग्यता नहीं तो गृह मे रहे और अपने योग्य व्यापार कर अपना धर्म साधन करे। भीख मांगने से धर्म साधन नहीं होता है अगर भीख मांगकर धर्म सधता होता तो संसार के सब मंगते धर्मात्मा बन जाते।

प्रश्न—अगर गृहस्थों के घर मे कार्य से फुरसत नहीं हो और गृहस्थ ऐसा कहदें कि महाराज दाल और चावल लेकर खिचड़ी बनालो और जीमलो तब त्यागी क्या करे?

उत्तर—सारचतुर्विंशतिका में बतलाया है कि—

त्यक्तारंभवह्वा न च तपो दानं पूजादिकं ।
स्वल्पं करोति यत्तत्स्यात्तस्यमुक्तिनिबंधनं ॥५४॥

अर्थ—गृहत्यागी आरंभ त्याग प्रतिमाधारी के लिए दान करने तप करने, पूजा करने के लिये कहीं भी मनाई नहीं की । हां देखो रत्नकरंड श्रावकाचार की प्रभाचन्द्र स्वामी कृत टीका तथा सारचतुर्बिंशतिका । कहां तक कहा जावे ।

आज कल के हम त्यागी लोग क्रोधित जल्दी हो जाते हैं और गृहस्थों के ऊपर शासन करते हैं । शास्त्रों में बताया है कि—

दोहा

घर छोड़त हैं चार के दुखिया, के आलसी ।
कोइ कोइ करत विचार, अरु घने रेतांमसी ॥१॥

विद्या में विवाद है, पंडिताई में महन्त ।
तपस्या में तामसधनी, विरले निकले सन्त ॥२॥

अर्थ—आजकल लोग घर छोड़ देते हैं परन्तु क्रोध नहीं छोड़ते । घर छोड़ने में फायदा नहीं, क्रोध छोड़ने में लाभ है ।

स्त्री कहती है पति से—

घर छोड़ो घर घर फिरो, घर ना छोड़ो कन्थ ।
घर छोड़े जो घर मिले, शीघ्र हि छोड़ो कन्थ ॥१॥

घर छोड़कर त्यागी होना ठीक नहीं है, पहिले कषाय को छोड़कर त्यागी बने, उसके लिए भोजन बनाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी लोग आगे से आके प्रेम और भक्ति सहित भोजन

देवेंगे। यही जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है उसे ही अपनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

त्यागी लोगों को चाहिये कि पहिले कषाय उपशम करके त्यागी लोग संघ में रहें। अकेले स्वछन्द बिना लगाम के घोड़े की तरह न फिरें और न किसी से मांगने का सवाल करें, तब कोई भी अनादर नहीं करेगा और जैनधर्म की प्रशंसा होगी।

आरंभत्याग प्रतिमाधारी भोजन की व्यवस्था वास्ते आरंभ-त्याग प्रतिमा ग्रहण नहीं करता, वह तो भोजन त्यागने वास्ते प्रतिमा धारण करता है और स्वतन्त्र बनना चाहता है। ऐसे महात्मा के लिए श्रावक लोग कल्पवृक्ष के समान वैयावृति करने को तैयार रहते हैं परन्तु होना चाहिये विवेकी, मंदकषायी और हिंसाजन्य सवारी का त्यागी।

देखो अमितगति श्रावकाचार, गुरु उपदेश श्रावकाचार, सारचतुर्विंशतिका, तथा भगवती आराधना की टीका जिसमें सब विधी खुलासा की है।

### नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा का स्वरूप

**वाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।**
**स्वस्थः संतोषपरः परिचितपरिग्रहाद्विरतः ॥१४५॥**

**अर्थ**—धन धान्य आदि दस प्रकार के सम्पूर्ण परिग्रह से ममता छोड़कर स्वस्थ तथा सन्तोषयुक्त, निर्ममत्व में जो लीन हो जाता है वह ली हुई आठों प्रतिमाओं को विधिपूर्वक पालता हुआ धर्मात्मा श्रावक रागद्वेषादिक अभ्यन्तर परिग्रह और क्षेत्र वस्तु आदि बाह्य परिग्रह में से आवश्यकतानुसार वस्त्र पात्रों के सिवाय शेष परिग्रह को त्यागने योग्य जान मन, वचन, काय

तथा कृतकारित, अनुमोदना करनवकोटि या छह कोटि से त्यागता है और संतोष धारण करता है। तथा शीत उष्णता की वेदना दूर करने के वास्ते अल्पमूल्य के पात्र, वस्त्र को छोड़कर सर्व प्रकार की धन सम्पदा का त्याग करता है।

परिग्रह के दस प्रकार के भेद

क्षेत्रः वास्तु धनं, धान्यं द्विपदं च चतुष्पदम्।
शयनासनं च यानं च कुप्यं भाण्डमितिदश ॥१॥

अर्थ—नव प्रतिमा का धारक श्रावक दस प्रकार के परिग्रह का विचारक होता है।

१० प्रकार के बाह्य परिग्रह

१ क्षेत्र—बाग बगीचा अनाज पैदा होने के खेतादिक। २ वास्तु—घर, हवेली, महल, मकान, किला आदि। ३ धन—सोना गहने, रुपये गिन्नी मुद्रादि। ४—धान्य चांवल, गेहूँ, चना ज्वार, बाजरा, मटर, मोठ, आदि। ५ द्विपद—मुलाजिम, दीवान, नौकर टहलवे पुरुष या स्त्री आदि। ६ चतुष्पद—गाय, भैंस, घोड़ा, घोड़ा, हाथी, ऊंट आदि पशु। ७ शयनासन—तख्त, कुर्सी, पटा मेज, आदि। ८—यान—पालकी, नालकी, पिंजस, बग्घी, मोटर, तांगा, विमान आदि। ९ वस्त्र—सूती, रेशमी, जरी आदि के पहिनने ओढ़ने बिछाने आदि के सर्व प्रकार के कपड़े। जैसे रजाई, कमीज, कोट, कुरता, गादी, तकीये आदि। १० बर्तन—सोने के चांदी के, ताम्बा के, पीतल के, लोहके, कथीर ( रांग ) के कांसे के, पत्थर आदि भोजन में तथा मिट्टी और लकड़ी के काम में लेने योग। इस तरह दस प्रकार के होते हैं।

अभ्यन्तर परिग्रह चौदह प्रकार के होते हैं—

मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट्कषायचतुष्टयं ।
रागद्वेषौ च संगास्युरन्तरंगाश्चतुर्दश ॥१॥

अर्थ—१ मिथ्यात्व, २ स्त्रीवेद, ३ पुरुष वेद, ४ नपुंसक ५ हास्य, ६ रति, ७ अरति, ८ शोक, ९ भय, १० जुगुप्सा ११ क्रोध, १२ मान, १३ माया और १ लोभ ( रागद्वेष , ये अन्तरंग चौदह प्रकार के परिग्रह कहलाते हैं। इनका खुलाशा निम्न प्रकार है—

१ मिथ्यात्व—आत्मा को मदिरा पान की तरह उन्मत्त करने वाला, संसार के महान कष्टों में फिराने वाला ग्यारवें गुणस्थान से भी गिराने वाला यह सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व है ।

२ वेद—स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद के भेद से तीन वेद कहलाते हैं। संसार में महान हिंसक भाव और कलह इसके ही द्वारा होती है। इससे अनेक दुःखों का सामना करना पड़ता है इसलिये इस को छोड़े बिना त्याग नहीं बनता ।

३–८ हास्यादिक—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगप्सा इन छहों का जीव के अष्टमगुणस्थान तक उदय रहता है ये जीव को क्षपक श्रेणी भी नहीं मारने देते। ये आत्म हित में पूरे बाधक हैं, जीव इनके उदय में कभी सन्तोष नहीं लेता।

९-१२ कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ। जीव इनके वश होकर क्या क्या अनर्थ करता है और दुख उठाता है।

१३-१४ रागद्वेष—यह दोनों इस जीव को संसार में अनादि काल से लेकर अनन्त काल तक भ्रमाते ही रहते हैं पीछा छोड़ते ही नहीं। सो ही कहा है:—

संसारमूल सोराग है मोक्षमूलवैराग्य।
मूलदोऊको यों कह्यो भाई जाग सके तो जाग॥

इन चौदह प्रकार के परिग्रह को त्याग किये बिना आत्मा का कल्याण नहीं होता। इसलिये ज्ञानी पुरुषों ने सबसे पहले इसका त्याग किया है सो ही स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है-

जो परिवज्जइ गंथं अब्भंतर बाहिरं च साणंदो।
पावंतिमण्णमाणो णिग्गथो सो हवे णाणी ॥३८६॥

अर्थ—जो ज्ञानी बाह्य तथा अभ्यन्तर परिग्रह को पाप का कारण जानकर सानन्द छोड़ देता है वही ज्ञानी नवम प्रतिमाधारी ब्रह्मचारी श्रावक होता है।

जिनको सच्चा वैराग्य प्राप्त होता है वे ही इस परिग्रह रूप आपदा को और पापरूपी सम्पत्ति को त्याग करते हर्ष मानते हैं।

बाहिरगंथ विहीणा दलिद्दमणुआसहावदो होंति।
अब्भन्तर गंथं पुण ण सक्कदे कोवि छंडेदुं ॥३८७॥

अर्थ—दरिद्र तो स्वभाव से ही बाह्य परिग्रह से रहित है। इसलिये इसके त्याग करने में कोई अचम्भा नहीं है। किन्तु अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ने में कोई भी समर्थ नहीं है। जो अभ्यन्तर परिग्रह छोड़े उसी की बड़ाई है। सामान्य से ममत्व

परिणाम ही अन्तरङ्ग परिग्रह है। उसका त्याग ही सच्चा त्याग है। यह विचारणीय बात है कि बाह्य परिग्रह का त्याग अन्तरङ्ग मूर्च्छा घटाने के लिये किया जाता है न कि लोगों के बताने के लिये। इसलिये इसको छोड़ते हुए आनन्द होता है। किसी के पास बाह्य परिग्रह कुछ भी नहीं है परन्तु अन्तरङ्ग में लालसा विशेष है तो वह पक्का परिग्रहधारी है। सो ही कहा है।

**बाह्यग्रन्थविहीना दरिद्रमनुजश्च पापतः सन्ति।**
**पुनरभ्यन्तरसंगत्यागी लोकेऽति दुर्लभो जीवः ॥१॥**

**अर्थ**—पाप के उदय से बाह्य परिग्रह रहित दरिद्री मनुष्य तो बहुत हैं। किन्तु अभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी जीव लोक में अत्यन्त दुर्लभ है इस ममत्व परिणामरूप भूत को हटाना ही मनुष्यता है।

### गृहत्यागी की विधि

**ताताद्य यावदस्माभिः पलितोऽयं गृहाश्रमः।**
**विरज्यैनं जिहासूनां त्वमद्यार्हसि नः पदम् ॥२५॥७॥**

सागारधर्मामृत

**अर्थ**—पुत्र बान्धवादि जो अपनी गृहस्थी को चलाने योग्य हों उनको अपने परिग्रह रूप भार को सौंप दे। देव, शास्त्र, गुरु या श्रावक पंचों की साक्षी पूर्वक जो कुछ भी दान पुण्य करना हो सो करके उस उत्तराधिकारी से कहे, भाई! इस परिग्रह रूपी गाड़ी के भार को आज तक हमने संभाला। अब इसको आप संभालो हमतो इससे अब विरक्त हो गये हैं। ऐसा कहकर उससे ममता शीघ्र हटा ले और भार छोड़ दे।

तपोभृतां यमीनां च किं साध्यं ब्रह्मचारिणां ।
धनेन येन जायन्ते सर्वानर्थपरम्परा: ॥६२॥

अर्थ—हे त्यागियो धन सर्व पाप का मूल है इसलिये ही तीर्थंकर भगवान भी परिग्रह को छोड़कर जब चौबीस प्रकार के परिग्रह त्यागी हुए तब ही कल्याण हुआ।

## क्षुल्लक साधक श्रावक के भेद प्रभेद

उत्तम ऐलक, मध्यम क्षुल्लक, क्षुल्लिका और जघन्य दशम प्रतिमाधारी पुरुष हो या स्त्री हो, जिसने परिपूर्ण रीति से नैष्ठिक के व्रतों में दोषों को बचाये हों वही साधक श्रावकपणे का अधिकारी माना गया है।

### दशम प्रतिमा का स्वरूप

नवनिष्ठापर: सोऽनुमतिव्युपरत: सदा ।
योनानुमोदेत ग्रन्थमारम्भं कर्म चैहिकम् ॥३०॥

सागारधर्मामृत अध्याय ७

अर्थ—जो पूर्वोक्त नव प्रतिमाओं के व्रत को पूर्ण रीति से पाल करके मन, वचन, काय से धन धान्यादिक परिग्रह की तथा कृषि आदिक आरंभ व पंच सूनादिक की या इस लोक संबन्धी विवाहादिक कार्यों की अनुमोदना नहीं करता अर्थात् इन कार्यों की अनुमति भी नही देता वह श्रावक अनुमति त्यागी कहलाता है। वह उदासीन होता हुआ मठ में, मंदिर में व घर में अथवा चैत्यालय में भी रहे। भोजन के लिये घर पर अन्य श्रावक बुलावे उसके यहां भोजन कर आवे।

मेरे लिये अमुक वस्तु बनाओ ऐसा नहीं कहे। जो कुछ गृहस्थो के घर पर मिले सो ही सही। यह ध्यान में रहे कि गृह-कार्य वगेरह की अनुमति पहले दिया करता था अब अनुमति त्याग प्रतिमा लेने पर गृहस्थपने की किसी प्रकार अनुमति नहीं देता।

ममत्व घटाकर कुटुम्बियों से दूर रहता है। अब इनका शौर सूतक भी नहीं मानता। न उनके घर पर बिना जरूरत जाता है। धर्मकार्य में रोक टोक नहीं। जिसका पहिले कहना आये उसके घर पर भोजन कर आवे, नौता नहीं माने।

रूखा, सूका, चिकना जो भी मिले सो ही संतोष पूर्वक भोजन कर आवे और प्रासुक जल का एक पात्र भर लावे जिससे दुबारा गृहस्थ के घर न जाना पड़े।

पानी भर कर लावे जिससे कार्य कर लेवे। पानी पीने का अभ्यास नवम प्रतिमा तक रक्खे। आगे जल पीना छोड़ दे और आगे बढ़ने के लिये ग्यारहवीं प्रतिमा का अभ्यास रखे। भूले नहीं, विषयों को हटाता ही रहे और ऐसी भावना करे कि मैं अजर, अमर, पद का कारण जो निर्ग्रन्थता है उसके योग्य बन जाऊं।

इत्युक्तैस्तैरनुज्ञाते गृहान्निर्गत्य सोत्कधी।

वनंगत्वा गुरोरन्तेयाचेतोत्कृष्ट तत्पदम् ॥८॥५७॥

अर्थ—सर्व प्रकार से अपने कुटुम्बी जनों से क्षमा करा कर उनकी आज्ञा लेकर घर से निकल कर वन में जाकर और वहां गुरुओं के पास स्थित होकर उत्कृष्ट श्रावकपद की याचना (प्रार्थना) करे।

**इतिचर्यां गृहत्यागपर्यन्तां नैष्ठिकाग्रणीः ।**
**निष्ठाप्य साधकत्वाय पौरस्त्यपदमाश्रयेत् ॥३६॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—नैष्ठिक श्रावकों मे मुख्य अनुमतिविरति प्रतिमा वाले श्रावक को पूर्वोक्त कथनानुसार गृहत्याग है अन्त में जिसके ऐसे गृहस्थाचार को समाप्त करके आत्मसिद्धि करने के लिये आगे के स्थान को अर्थात् उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा को ग्रहण करना चाहिये ।

उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा का स्वरूप

**जो नवकोडविशुद्ध भिक्खायरणेण भुंजदे भोज्जम् ।**
**जायण रहियं जोग्गं उद्दिट्ठाहार विरओ सो ॥१६०॥**

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा

**अर्थ**—जो श्रावक भोज्य जो आहार उसको नवकोटि विशुद्ध कहिये मन, वचन, काय कृत, कारित, अनुमोदना का आपको दोष नहीं लगावे, ऐसा भिक्षाचरण कर लेवे। वहां पर भी याचना रहित लेवे, मांगकर न लेवे। तथा वह भी सिद्धान्तानुकूल हो, सचित्त आदि अयोग्य होवे तो नहीं लेवे। घर को छोड़कर गुरुओं के संघ में ही रहे। निमित्त से किये हुए आहार को नहीं लेवे, सो उद्दिष्ट विरति प्रतिमाधारी श्रावक है ।

इसी प्रकार रत्नकरण्डश्रावकाचार तथा सागारधर्मामृत में भी कहा है। इनके अलावा अनेक श्रावकाचारोंमें भी वर्णन है।

**गृहतो मुनिवनमित्वा गुरूपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।**
**भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखंडधरः ॥१४७॥**

**अर्थ**—दशम प्रतिमाधारी श्रावक अपने कुटुम्बियों को सम्पूर्ण प्रकार से संतोषित करके गृहरूपी जंजाल की फांसी को तोड़कर वन में जहां पर श्रीयतिराजों (मुनि महाराजों) के वर्ग तप कर रहे हों उनके पास व्रतधारण कर ग्यारहवीं प्रतिमाग्रहण कर तप करता हुआ भिक्षावृत्ति से भोजन करे।

वह केवल लंगोटी के सिवाय एक खण्ड वस्त्र रखता है जिससे शिर ढके तो पांव खुले रहें और पांव ढके तो सिर खुला रहे, उसे खण्ड वस्त्र कहते हैं, उसको रखने वाला उद्दिष्ट त्याग ग्यारहवीं प्रतिमाधारी कहलाता है।

तत्तद्व्रतास्त्रनिर्भिन्नश्वसन्मोहमहाभटः।
उद्दिष्टं पिंडमप्युज्झेदुत्कृष्टः श्रावकोऽन्तिमः ॥३७॥

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—उन पूर्वोक्त व्रतरूपी शस्त्रों के प्रहार से अत्यन्त नष्ट होकर के भी जीवित स्वास लेता हुआ मोहरूपी भट जिसके ऐसा अन्तिम उत्कृष्ट ग्यारहवीं प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक अपने उद्देश्य से बनाये हुए भोजन को तथा उपधि शयन और आसन आदि को भी त्याग देता है वह उद्दिष्टव्रती श्रावक कहलाता है। अब उद्दिष्टव्रती श्रावक के भेद बतलाते हैं—

सः द्वेधा प्रथमः श्मश्रुमूर्धजानपनाययेत्।
सितकौपीनसन्व्यानः कर्त्तर्या वा क्षुरेण वा ॥३८॥

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—उद्दिष्टव्रती श्रावक दो प्रकार के होते हैं

१ क्षुल्लक २ ऐलक। इनका प्रथक् प्रथक् आचरण होता है। जैसे प्रथम क्षुल्लक श्रावक सफेद लंगोटी और चादर रखे तथा कैंची से अथवा छुरे से अपनी मूंछदाढ़ी और शरीर के बाल बनवावे। कांख आदि के बालों को बनवाने का इसके लिये विधान नहीं है।

क्षुल्लक के कर्त्तव्य

**स्थानादिषु प्रतिलिखेत्मृदूपकरणेन सः।**
**कुर्यादेव चतुष्पर्व्यामुपवासं चतुर्विधम् ॥३६॥७॥**

सागारधर्मामृत

**अर्थ**—यह प्रथम श्रावक (क्षुल्लक) प्राणियों को बाधा नहीं पहुंचाने वाले कोमल उपकरण वस्त्रादिक या पीछी आदि से सदा प्रतिलेखन (मार्जन) करे और प्रत्येक मास की अष्टमी और चतुर्दशी को (यानि चारों पर्वों के दिन) चारों प्रकार का खाद्य, स्वाद, लेह्य और पेय, पदार्थों का त्याग-रूप उपवास करे। इस प्रकार क्षुल्लक श्रावक दो प्रकार के होते है।

## क्षुल्लक और क्षुल्लिकाओं के दो भेद

जैसे प्रथम भेद (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) दूसरा भेद स्पर्श शूद्र होता है। प्रायश्चित चूलिका मे पं० पन्नालाल जी सोनी पृ० २१२ में लिखते है:—

**कारिणो द्विविधा सिद्धा, भोज्याभोज्यप्रभेदतः।**
**भोज्येष्वेव प्रदातव्यं, सर्वदा क्षुल्लकव्रतम् ॥१५४॥**

**अर्थ**—शूद्र भोज्य और अभोज्य के भेद से दो तरह के

होते हैं जिनके यहां का आहारपानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य खाते पीते हों वे भोज्यकारु होते हैं। इनसे विपरीत अर्थात् जिन का आहार पानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नहीं खाते पीते वे अभोज्यकारु कहलाते हैं।

इनमें से भोज्यकारुओं को ही (भोज्य शूद्रों को ही) क्षुल्लक दीक्षा देनी चाहिये, अभोज्य शूद्रों को नहीं। और भी कहा है—

**दुइयं च वुत्तलिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।**
**भिक्खं भमेई पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥२१॥**

सूत्र पाहुड़

टीकायां—द्वितियं चोक्तं लिंगं वेषः उत्कृष्टं लिंगं अवर-श्रावकाणां च गृहस्थश्रावकाणां सोऽवरश्रावकः भिक्षां भ्रमति पात्रसहितः करभोजी वा। ईर्य्यासमितिसहितः मौनतश्च उत्कृष्टश्रावको दशमैकादशः प्रतिमा प्राप्तः।

द्वितीय कहिये दूसरा लिंग भेष उत्कृष्ट श्रावक कहिये जो गृहस्थ नहीं ऐसा उत्कृष्ट श्रावक कहा है। सो उत्कृष्ट ग्यारवीं प्रतिमा का धारक है, वह भ्रमकर भिक्षा लेता है। वहुरि पत्ते कहिये पात्र में भोजन करे और हाथ में भी करे। भाषा समितिरूप बोले अथवा मौन करि प्रवर्ते।

## दोनों क्षुल्लकों के भेद

इस प्रकार की प्रतिमा के धारी दो तरह के होते हैं। १ तो वर्ण क्षुल्लक, दूसरा स्पर्श शूद्र। वर्ण क्षुल्लक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तो पीतल का पात्र रखें और अवर्ण स्पर्श शूद्र क्षुल्लक लोहे का पात्र रखे। क्योंकि भोजन समय पर जाति पूछना उचित

नहीं। इनकी पहिचान बिना कहे ही पात्र के द्वारा हो जाती और अविनय का कारण भी नहीं बनता। इनमें वर्णक्षुल्लक को भोजन वास्ते चौके मे बिठा दे और अवर्ण को योग्यतानुसार ऐसे स्थान पर बिठादे जो चौके से बाहर होवे पर अपमान जनक न हो।

दोनों तरह के क्षुल्लक क्षुल्लिका बन्दनीय हैं।

सागारधर्मामृत अध्याय ७ श्लोक नं० ४०, ४१, ४२, ४३, और ४३ में देख लेवें।

**अर्थ**—सामान्यतया क्षुल्लक भोजन विधि मे निश्चित बैठकर अपने हाथरूपी पात्र में या वर्तन में अपने आप भोजन करे। भोजन किस विधि से करे ? इसका उत्तर निम्न प्रकार है—

भोजन लेने के लिए एक पात्र अपने हाथ में लेकर श्रावक के घर पर जाकर उसके आंगन में जहां तक हर एक जा सकते हैं वहां पर खड़े होकर "धर्म लाभ हो" ऐसा वचन दातार को सुनावे। ऐसा वचन बोलने के बाद मौन रखे। अपना शरीर मात्र दिखाकर भिक्षा यांचे वहां पर भिक्षा मिले या न मिले दोनों दशाओं मे अपना समभाव रखकर शीघ्र ही अर्थात् बहुत देर वहां नही रहे, वहां से निकल कर दूसरे दातार के घर पर चला जावे।

**प्रश्न**—क्षुल्लक ज्ञानसागर जी ने दान विचार नामा पुस्तक में लिखा है, कि क्षुल्लक दातार के आंगन मे २७ स्वासोच्छ्वास कायोत्सर्ग करे, इतनी देर तक दातार के आंगन में ठहरा रहे। इतनी देर में श्रावक उसको भोजन देवे या प्रार्थना करे तो ठीक, अन्यथा वहां से चला जाय। क्या यह ठीक है ?

उत्तर—इस प्रकार का कथन मूल संघ आम्नाय के ग्रन्थों में तो देखने में आया नहीं और उन्होंने जो लिखा है वह काष्ठा संघ आम्नाय से मिलता है। यह प्रवृत्ति मूल संघ वालों को मान्य नहीं है। भिक्षा लेने के लिए उद्यत क्षुल्लक यदि किसी श्रावक के द्वारा भोजन के लिए प्रार्थना की जावे तो संतोष पूर्वक वहीं भोजन करले। अन्यथा नहीं।

## क्षुल्लकों की विशेष विधि

क्षुल्लक अनेक घर भोजी वर्ण वाले और शूद्र दोनों तरह के होते है परन्तु पात्र बिना नही रहते, पात्र जरूर रखते हैं।

क्षुल्लक भोजन के वास्ते जावे और दातार के आंगनमें धर्म लाभ कहे तब दाता आवाज को सुनकर उनको भोजन देवे। सो अपने पास जो पात्रहै उसमें ले लेवे। फिर वहां से निकल कर अन्य घर मे जावे, वहाँ भी धर्म लाभ कहे और भोजन मिले तो ले लेवे। अगर वहां भोजन तो देवे नहीं और प्रार्थना करे कि महाराज यहां ही विराज कर शांति पूर्वक आप भोजन कर ले तो शांति पूर्वक वहां से पहिले प्रासुक जल लेकर जो पहिले भिक्षा मे मिला है जीमे पश्चात् चाहिए उतना वहा से भी ले लेवे। अगर ऐसा नहीं हुआ हो तो जब तक अपनी उदर पूर्ति के योग्य भोजन न मिले तब तक दातारों के घर से धर्म लाभ पूर्वक भोजन लावे।

पश्चात् आखीरी घर पर प्रासुक जल लेकर शांति पूर्वक बैठकर मिले हुए भोजन को शोधकर जीम लेवे। सचित्त वस्तु व अभक्ष पदार्थ को बचावे। कदाचित् अन्तराय का कारण मिल जावे तो जूंठन में अन्न छोड़े, नहीं तो इतना ही लेवे जिसे जीम ले।

रूखा, सूखा, खट्टा, मीठा चिकना कैसा ही क्यों न हो उस में किसी प्रकार का राग द्वेष नहीं करे, स्वाद की लालसा रहित भोजन करे। इस प्रकार स्पर्श शूद्र क्षुल्लक अनेक घरभोजी का आचरण है।

एक घर पर ही भिक्षा भोजन करे ऐसे जो उत्तम वर्णी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) क्षुल्लक हैं उनका आचरण इस प्रकार है दोनों प्रकार के क्षुल्लक गोचरी को जावें तब अपने चिन्हरूप पात्र को साथ ले जावें, जिससे किसी को किसी प्रकार की शंका ही नहीं होवे और दातार के घर के आंगन में जाकर धर्म लाभ हो ऐसा कहे। दातार सत्कार सहित भोजन वास्ते कहे तो वहां पर बैठकर संतोष से भोजन कर लेवे। अगर नहीं कहे तो दूसरे के घर पर भोजन करने वास्ते चला जावे।

भोजन के वास्ते इशारा नहीं करे, न हुँकारा करे, न समस्या करे, संतोष से सब सावधानी रखते हुए भोजन कर लेवे, अन्तराय के बिना भोजन नहीं छोड़े।

खयाल रहे मुनियों के पीछे भोजन वास्ते जावे। क्योंकि ग्रहण किया हुआ अतिथिसंविभागव्रत इसी प्रकार पल सकता है।

**आकांक्षयन्संयमं भिक्षापात्रप्रक्षालनादिषु।**
**स्वयं यतेत चादर्पः परथाऽसंयमो महान् ॥४४॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—वह क्षुल्लक अपने संयम की रक्षा करने की भावना करता हुआ अपने जीमे हुए भोजन के पात्र को धोने माजने आदि के कार्य में अपने रूप और विद्या आदि का गर्व

नहीं करता हुआ स्वयं ही यत्नाचार पूर्वक प्रवृति करे। शिष्यादिकों से नहीं करावे क्योंकि जीवोंकी अहिंसा जैसी स्वयं पालता है वैसी दूसरे नहीं पाल सकते, इसलिये जब तक पूर्ण त्यागी नहींहै, तब तक अपना काम आप करे (यानि आप खुद संभाले) क्योंकि संयम बड़ा दुर्लभ है।

**ततो गत्वा गुरूपान्तं प्रत्याख्यानं चतुर्विधम्।**
**गृह्णीयाद्विधिवत्सर्वं गुरोश्चालोचयेत्पुरः ॥४५॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—आहार लेने के बाद गुरु के पास जाकर विधि पूर्वक चारों प्रकार के आहार का त्याग ग्रहण करे, अपने गुरु के सामने आहार के लिए जाने के समय से लेकर आने के समय तक की पूर्ण विधि ज्यों ज्यों हुई हो, सब की आलोचना करे, कारण भूल हो सकती है कहने से उसकी शुद्धि हो जावे।

सदा मुनियों के संघ मे निवास भूत वन मे निवास करे। तथा गुरुओं की सेवा करे और अन्तरग तथा बहिरंग दोनों प्रकार के तप का आचरण करे और दश प्रकार की वैयावृत्य का खासकर आचरण करे।

## उत्तम में भी उत्तम श्रावक का स्वरूप

ग्यारवीं प्रतिमा में प्रथम और द्वितीय ऐसे दो भेद हैं। उसमें प्रथम भेद के दो भेद। १ वर्ण क्षुल्लक, २ स्पृश्य शूद्र इनका तो वर्णन ऊपर कर दिया। अब उत्तम में भी उत्तम ऐलक का स्वरूप कहते हैं—

**तद्वद् द्वितीयः किन्त्वार्य संज्ञो लुञ्चत्यसौ कचान् ।**
**कौपीनमात्रयुग्धत्ते, यतिवत्प्रतिलेखनम् ॥ ४८ ॥**

सागारधर्मामृत अध्याय ७

**अर्थ**—क्षुल्लक के समान ही सर्व क्रियाओं को करने वाला दूसरा भेद ऐलक का है परन्तु इतनो सी इसमें विशेषता है कि यह अपने दाढ़ी, मूछों और शिर के बालों का लोंच करता है। सिर्फ लंगोटी मात्र की पराधीनता है और मुनियों के समान मोर की पीछी आदि संयमोपकरण रखता है।

इसकी आर्य संज्ञा है। ऐलक, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीनों वर्णों मे से ही होता है, स्पृश्य शूद्रों में से नहीं होता।

ऐलक भोजन कैसे करे सो बताते हैं—

**सुत्तत्थपय विणट्ठो, मिच्छादिट्ठीहु सो मुणेयव्वो ।**
**खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पतंसचेलस्स ॥ ७ ॥**

सूत्र पाहुड़

**अर्थ**—सूत्र का अर्थ अरु पद विनष्ट है जाके ऐसा जो है सो प्रगट मिथ्यादृष्टि है। याहीतें सचेल है वस्त्र सहित है ताकू खेडेवि कहिये हास्य कुतूहल विषै भी पाणिपात्र कहिये हस्तरूप पात्रकर आहार दान है सो नहीं करना।

**प्रश्न**—यहा पर तो ऐसा कह दिया कि हास्य से भी पाणिपात्र आहार नहीं करे और ऊपर श्लोकों में पाणिपात्र आहार बतला दिया।

**उत्तर**—यहां पाणिपात्रका जो निषेध किया है सो मुनियों के तुल्य अंजुलि बांधकर आहार करने का किया है। बाकी ग्रास को हाथ पर धरकर [रखकर] जीमने का निषेध नहीं है।

हे श्रावक ! नू विचार जो कि सुख की वांच्छा करता है सो क्या तूने पूर्वभव में दान दिया था या तप किया था। यदि यह नहीं किया तो तुझे सुख कैसे मिलसकता है। जैसा पूर्व कियाथा वैसाही यहां प्राप्त हुआ है। संसारमें किसानलोग क्या बिना बोये भी कहीं धान्य पाते है ? नहीं ! तो फिर तुझे अच्छे कार्य किये बिना सुख कैसे मिलेगा। ध्यान में रखना चाहिये कि कीड़ों के खाये हुए ईख के समान अर्थात काने गन्ने के समान इस संसार में वृथा ही मोह मत कर। ममत्व छोड़ने से ही कर्म बन्ध दूर होंगे और नया कर्म बन्ध होना रुकेगा ॥ १५ ॥

धर्मसंग्रहश्रावकाचार

यस्त्वक भिक्षो भुंजीत गत्वाऽऽसावनुमन्यतः ।
तदलाभे विदूध्यात्स उपवासमवश्यकम् ॥ ७०॥८॥

अर्थ—जो श्रावक एक वक्त भिक्षा मांगने वाला है, तो ग्यारवीं प्रतिमाधारी कभी दो वक्त नहीं जीमे।

केवलं वा सवस्त्रं वा कौपीनं स्वीकरोत्यसौ ।
एकस्थान्नपानीयो निन्दागर्हापरायणः ॥ १०४॥८॥

अमितगति श्रावकाचार

अर्थ—उत्कृष्टश्रावक केवल कौपीन वा वस्त्रसहित कौपीन को अंगीकार करता है और एक स्थान मे ही अन्न पानी को लेता है, अपनी निन्दा गर्हा मे तत्पर रहता है।

भोजन समय व्रती लोग निम्न कार्य न करें:—

हुंकारांगुलि खात्कार भ्रूमूर्द्धचलनादिभिः ।
मौनंविदधता संज्ञा विधातव्या न गृद्धये ॥ १ ॥

१ स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका में एकादश प्रतिमा के कथन में, २ सागारधर्मामृत अध्याय ७, ३ वामदेव कृत भावसंग्रह ग्रन्थ पृष्ठ २०४, ४ पार्श्वपुराण, ५ अमितगति श्रावकाचार, ६ धर्मसंग्रह श्रावकाचार, ७ गुणभूषण श्रावकाचार, ८ सज्जन चित्तबल्लभ, ६ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ग्रन्थों में उल्लेख है। लेख बढ़ रहा है इससे यहां नहीं लिखा संयम प्रकाश नामा ग्रन्थ में देखें, वहां लिखा है।

## ऐलक क्षुल्लक भोजन में लालसा नहीं करे

सज्जन चितवल्लभ श्लोक नं० १७, १६

हे भिक्षुक! जिस काल मे तू हाथ में छोटा सा पात्र लेकर भिक्षा के लिये श्रावकों के घर फिरता है उस काल में तुझको और अपमान से क्या। तू अपनी तापसवृत्ति मे अरुचिकर भोजन से रात दिन ऐसा क्यों दुखी है। देख जो महामुनिराज हैं वे इन क्षुधापिपासादि जनित वाधाओं को अपने कल्याण के लिये बड़े हर्ष पूर्वक सहन करलेते है अतः धैर्य धारण कर॥१७॥

हे भिक्षुक! जिस भोजन को तू कुभोजन समझ रहा है उस भोजन का तूने मोल तो दिया नहीं है, यदि तू उस भोजन को मोल देकर खरीदता तो तेरा क्रोध करना भी ठीक था। ध्यान में रख कि भिक्षा में तो रूखा सूखा जैसा मिल जाता है, साधु जन उसको ही बड़े प्रेम से जीम लेते हैं उनको तो अपने षट् आवश्यकरूपी कार्यों को यथोक्त रीति से करना है। ख्याल कर तू इस किराये के घर समान शरीरको वृथा पुष्ट मत कर, क्योंकि किराये की जब अवधि पूरी हो जावेगी तव क्या कालरूपी यमराज तुझे एक क्षण भी ठहरने देगा? कदापि नहीं, फिर इस शरीर से तेरा प्रेम क्यों? समझ! ख्याल कर॥ १६॥

भ्रूनेत्र हुंकारकरांगुलीभिगृद्धिप्रवृत्यै परिवर्ज्यसंज्ञाम्।
करोतिभुक्ति विजिताक्षवृत्तिः सशुद्धमौनव्रतवृद्धिकारी॥२

अर्थ—ख्याति, लाभ, पूजा के वास्ते, हुंकारा, समस्या तथा अंगुली फेरना, भृकुटि चढ़ाना या और तरह से भी इसारा करना मौन तोड़ना होता है। या यों समझिये कि कोई दातार भोजन परोसते समय कोई वस्तु परोसना भूल जावे तो उसको इशारे से समझा देवे कि तुम अमुक वस्तु परोसना भूल गये सो परोस लो। इस प्रकार की समस्या में भोजन की लम्पटता और गृद्धता दीखती है। हां मार्ग से कोई कार्य विपरीत होता होवे तो उसको समझा देवे। इसमें न तो गृद्धता नजर आवे न लम्पटता नजर आवे।

दातार रसयुक्त और रस विहीन दोनों तरह के भोजन परोस गया है। सो नीरस भोजन देवे तब तो हाथों को खींचले और रसयुक्त भोजन देवे तब हाथ बढ़ा लेवे, ऐसा करना गृद्धता कहलाती है।

रस सहित भोजन देवे तब तो हाथों को खींच लेवे, और नीरस भोजन लेता रहे, ये मार्ग शास्त्रोक्त है इसके विपरीत कार्य छोड़ना चाहिये। इसलिये भोजन के समय व्रतियों को मौन बताया है। इसका कारण यही है कि गृहस्थ किसी प्रकार व्रतियों को नीची दृष्टि से नहीं देखे।

व्रतियों की वीरता भोजन की निस्पृहता तथा इन्द्रियों की विजयता, स्वाद की लोलुपता से रहितता ये बाते मौन से ही बनती हैं, इसमें व्रती जनताकी निगाहमें पूज्य बना रहता है और लालसा रूप कर्मबन्ध भी नहीं होता एवं इससे साधु, साधु ही

बना रहता है, स्वादु नहीं होता। अतएव यहभी महान गुण है। अब यह बतलाते हैं कि व्रतीलोक कहां कहां भोजन को न जावे।

गायकस्य तलारस्य नीचकर्मोपजीविनः।
मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायास्तैलिकस्य च ॥३८॥
दीनस्य सूतिकायाश्च च्छिपकस्यविशेषतः ॥
मद्यविक्रयिणो मद्यपानसंसर्गिणश्च न ॥ ३९ ॥
क्रियते भोजनं गेहे यतिना भोक्तुमिच्छुना।
एवमादिकमप्यन्यत् , चिन्तनीयं स्वचेतसा ॥ ४० ॥

इन्द्रनन्दीनीतिसार

अर्थ—जो गाकर जीविका करता हो जैसे गन्धर्व लोग, या तेल अर्क आदि बेचने वाला या नीच कर्म से आजीविका करने वाला हो। माली पुष्प आदि बेचकर आजीविका करने वाला, उत्तम कुली नपुंसक हो, वेश्या हो, दीन हो, कृपण हो, शराब बेचने वाला हो या मद्यपायी की संगति करने वाला हो। इतने प्रकार के स्थान या इनमें से कोई व्यक्ति हो उनके सम्बन्ध से व्रती लोग यानी सयमी लोग भोजन नहीं करे।

## क्षुल्लिकाओं के लिये विधान

यहां पर खयाल रखने की बात है जैसे क्षुल्लक दो वस्त्र रखते हैं वैसे ही क्षुल्लिका भी दो साड़ी रख सकती है। जैसे क्षुल्लक अपने चिन्ह योग पात्र रखे, ऐसे क्षुल्लिका भी पीतल और लोहे का पात्र रखे जिससे वर्ण की पहिचान हो। भोजन के

वास्ते दातार के घर जावे तब धर्म लाभ कहे। स्पृश्य शूद्र तो भिक्षा मांगकर लावे और वर्ण वाले क्षुल्लक क्षुल्लिका चौके में बैठकर जीमें। आजकल भिक्षा माँगकर लाने का समय रहा नहीं, यातें भिक्षा मांगना ठीक नहीं।

गृहस्थ अवस्था म जो व्रत आखड़ी ली है उसको उसही रूप में पालन करे, कारण अभी अवस्था बदली नहीं है। जब मुनि पर्याय हो जावेगी तब वह व्रत महाव्रत हो जावेंगे तब दुजन्मा होवेगा पहिले जैसे की तैसी प्रतिज्ञा पालनी होगी।

जब पानी बरसता हो तब व्रतीलोग भोजन को न जावे कारण कपड़े भीग जावेंगे, गीला कपड़ा भोजन करने में अयोग्य माना गया है।

भावार्थ—समझना चाहिए कि शरीर के सम्बन्ध से और हवा के सम्बन्ध से गर्मी, सर्दी के योग से सम्मूर्च्छन जीव उस कपड़े में पैदा हो जाते है। जो श्वास के अठारहवे भाग में मरने वाले होते हैं। याते गीला कपड़ा व्रतियों को भोजन में नहीं लेना चाहिए।

श्रावक अवस्था जब तक है तब तक दिन में नग्न अवस्था नहीं करे। नग्न होना हँसी खेल नहीं है, महान उत्कृष्ट धर्म है। नग्न होकर फिर कपड़े नहीं पहने। यह धर्म महान् शूरवीर पुरुषों का है इसलिये ख्याल रखना लाजिमी है। भोजन को जावे तब न तो शीघ्र चले न धीरे, यथायोग्य चाल से चले।

नोट—क्षुल्लक, क्षुल्लिका भोजन समय दातार के आंगन मे खड़े होकर धर्म लाभ कहे, अध्याय ७ सागारधर्मामृत।

२—ऐलक भोजन समय अक्षयदान कहे। ज्ञानानंद श्रावकाचार रायमलजी कृत पा० ५४ छापे का।

सौम्यरूप आकृतिसहित नीची दृष्टि रखकर चार हाथ जमीन को देखकर यानि परख कर चले, जिससे प्रमादरूपी दोष न लगे और मौन सहित जावे। रस्ते चलते समय बोलने की आवश्यकता हो जावे तो खड़े रहकर संतोष से वार्तालाप करले, ऐसा मूलाचार और भगवती आराधना में कहा है। चलते चलते कदापि उत्तर न देवे।

**प्रश्न**—मौनसे भोजन को जावे फिर कैसे उत्तर देवे ?

**उत्तर**—मौन तो भोजन के वास्ते है न कि धर्म-कार्य की बात करने वास्ते। भोजन में बोले तो गृद्धता मालूम पड़े। धर्म का उत्तर देने में गृद्धता नहीं कहलाती, प्रशंसा ही है ऐसा समझो।

व्रतियों का ध्यान जंगल में ही होता है सो बताते है—

सवैया

**मुनि आर्यिका ऐलक क्षुल्लक, इनका वास अरण्य के मांहि।**
**भोजन समय पर आवे ग्राम में, इस विधि सिद्धांतों में गाहिं॥**
**आत्मध्यान के ये हैं रसिया, ग्राम माहिं होने का नाहिं।**
**तातें रहो नहीं भूलि ग्राममें नातर आत्मध्यान नशाहिं ॥१॥**

कहने का तात्पर्य यह है कि मुनि हो या आर्यिका हो, ऐलक क्षुल्लक, क्षुल्लिका यानि कोई भी हो वे सब ही आत्मध्यान के स्वादी हुआ करते हैं। सो यह आत्मध्यान ग्राम में होता नहीं, क्योंकि वहां पर गृहस्थ लोगों का रहन, सहन, रोना, पीटना, लड़ना, झगड़ना, विवाह, शादी,जीमन, चूटन, लेन, देन हुआ ही करता है। इससे ध्यान मे स्वतन्त्रता नहीं आती। अतः

ग्राम में मत रहो। जरूरत हो तो थोड़े समय वास्ते ठहरो दोष नहीं। सूना घर, मठ, मंडप, धाढिया, पाषाण की शिला, घास, कंकड़, पटिया का आसन पर सोवें बैठें। पहिली और पिछली रात्रि की दो प्रहर छोड़कर बीच की दो प्रहर मे धर्मध्यानपूर्वक शयन करो।

इन व्रतियों के पास वस्त्र हुआ करते हैं सो श्रावकों से नहीं धुलवाने चाहिए क्योंकि श्रावक लोग प्रमादी होते हैं इस कारण से असंयम होने की पूरी-पूरी संभावना है अतः इनसे प्राशुक द्रव्य और प्राशुक जल लेकर अपने आप वस्त्र धोले तभी असंयम से बचेगा, यही त्यागियों का धर्म है।

ये लोग प्रतिमाधारी कहलाते हैं सो इनको प्रथम प्रतिमा से लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक के व्रतों को सम्हालकर पालना चाहिए।

**प्रश्न**—यदि अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास नहीं करे तो क्या डर है ?

**उत्तर**—अष्टमी चतुर्दशी सिद्धान्तों में पर्व बतलाया है। सो चतुर्थ प्रतिमा में उसको जरूर उपवास करना ही कहा है। यदि उपवास नहीं करेगा तो प्रतिमा पूर्णरीत्या नहीं पलेगी।

**प्रश्न**—उपवास की विधी क्या है सो कहो ?

**उत्तर**—उपवास का विधि विधान द्वितीय प्रतिमा में तथा चतुर्थ प्रतिमा के कथन में कह आये हैं, वहां से जानना।

**प्रश्न**—मुनि सुधर्मसागर जी तो क्षुल्लक वास्ते नवधा भक्ति बताते हैं क्या यह ठीक है ?

**उत्तर**—मुनि श्री १०८ सुधर्मसागर जी महाराज जब पंडिताई करते थे तब गुणभूषण श्रावकाचार की टीका की थी, तब उन्होंने उसमें लिखा था कि क्षुल्लक ऐलक लोग बुलाने से भोजन कर आते हैं। फिर वे क्षुल्लक हुए तब अपने उस कथन को भूल गये कि पहिले मैं ग्रन्थों में क्या लिख चुका हूँ।

**प्रश्न**—चन्द्रप्रभ चरित्र में भी तो क्षुल्लक को अर्घ चढ़ाना लिखा है सो कैसे है?

**उत्तर**— हां ठीक है देखो शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि रावण इन्द्र को जीत कर लंका में आया तब प्रजाजनों ने रावण के चरणों में अर्घ चढ़ाया। देखो पद्मपुराण पर्व १२। (२) जब नारद जी कृष्ण जी की सभा में आये तब अर्घ चढ़ाया। देखो प्रद्युम्नकुमार चरित्र अध्याय ३ श्लोक नं० ११-१२ में। ये ग्रंथ काष्ठासंघियों के हैं, मुनि सुधर्मसागर जी ने अपनी प्रतिष्ठा के लिये उन्हें विशेष महत्व दिया।

**प्रश्न**—आप उनको काष्ठासंघी कैसे बतलाते हैं?

**उत्तर**—हम उनकी लेखमाला से। लाठी संहिता नामा ग्रंथ काष्ठासंघियों का है उसमें मुनि सुधर्मसागर जी लिखते हैं कि क्षुल्लक ५ घरों से भोजन मांग कर लावे और बीच में मुनिराज के भोजन करने का मेल बैठ जावे तो वह क्षुल्लक अपने लाये हुए भोजन में से मुनिराज को भोजन जिमादे।

इस कथन पर मुनि सुधर्मसागर जी के बड़े भाई धर्मरत्न श्रीमान् पं० लालाराम जी ने नोट दिया है कि यह ग्रन्थ काष्ठासंघियों का है ऐसा लेख मूल संघियों को मान्य नहीं है। यदि ऐसा नहीं होता तो श्रीमान् पंडित जी क्यों लिखते अतः यह ज्ञात होता है कि यह मान्य नहीं है तो विचार करो कि अब

अर्घ चढाना जायज रहा या नहीं। इसका निष्कर्ष यही है कि यह जितनी क्रिया है सो सब काष्ठासंघियों की है जो कि मानने योग्य नहीं है।

ज्ञानसागर जी ने यानि मुनि सुधर्मसागर जी ने क्षुल्लक ५ प्रकार के बतलाये हैं सो भी काष्ठासंघियों की अपेक्षा से हैं। इसके पहिले का ग्रन्थ चामुण्डराय चारित्रसार है उसमें ब्रह्मचारी तो ५ प्रकार के बतलाये हैं न कि क्षुल्लक। फिर सुधर्म-सागर जी ऐसा कथन कहाँ से उठा लाये। भगवान जाने।

## प्रतिमाधारियों को नमस्कार में क्या कहना चाहिए ?

१जब तक कपड़े का परिग्रह है तब तक इनको नमोस्तु नहीं होता, सूत्र पाहुड़ में लिखा है कि इनको इच्छाकार कहो और आपस मे व्रतीगण इच्छामि शब्द का प्रयोग करें। गृहस्थों को बदले में दर्शन विशुद्धि या कल्याण हो ऐसा कहे।

खड़े खड़े युगहाथ मिलाकर भायजी,<br>
शिरको नमनकराय चित हुलसाय जी।<br>
इच्छा-कार सुबोध विनयकरवायजी,<br>
नमस्कार उत्तम श्रावक पद थाय जी॥

इस प्रकार खड़े खड़े हाथों को जोड़ शिर नमाकर उत्तम श्रावक ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका के लिये नमस्कार (इच्छाकार) यानि इच्छामि कहना ही इनका सत्कार है।

मुनियों की तरह जमीन पर बैठकर श्रावक अवस्था में नमस्कार कराना अयोग्य है। यदि कोई भूलकर वैसा नमस्कार करे तो खुदव्रतियों को चाहिये कि वह गृहस्थ श्रावकों को

समझा देवे जिससे कि मान के आशय से कर्म बन्ध न होवे यही व्रतियों का कर्तव्य है कि मान नहीं करे।

**प्रश्न**—पाक्षिक अवस्था से लगाकर उद्दिष्ट त्याग ग्यारवीं प्रतिमातक किस २ स्थान पर कौन कौन व्रत निर्दोष होते हैं ?

**उत्तर**—अष्टमूलगुण, पंचाणुव्रत, सप्तशील में से इस प्रकार व्रत लेते हैं। श्रावक के तीन भेद १ जघन्य, २ मध्यम, ३ उत्कृष्ट। १—जघन्य पाक्षिक के अष्टमूलगुण धारण और सामान्य से मिथ्यात्व का त्याग होता है। २—मध्यम पाक्षिक के सप्तव्यसन का त्याग और मिथ्यात्व का सातिचार त्याग होता है। ३—उत्कृष्ट पाक्षिक अभक्षों का तथा सात व्यसनों को अतिचार न लगावे।

१—पंचाणुव्रत धारण रूप प्रतिमा गृहण करे तब सातिचार पंचाणुव्रत होते है। परन्तु मिथ्यात्व, अभक्षों में अतिचार न लगावे।

२—जब बारह व्रत यानि द्वितीय प्रतिमा धारण करें तब पांच अणुव्रत प्रथम प्रतिमा के और यहां पर सप्तशील और ग्रहण करे तब पंचाणुव्रत को निरतिचार पालन करे और सप्तशील के अतिचार क्रम से आगे की प्रतिमाओं में शुद्ध होंगे।

यहां पर तीन गुणव्रत अणुव्रतों को मदद करते हैं और उनमें पूर्णगुणों की कमी है उसको पूरी कराते है सो महाव्रतरूप होने की शिक्षा में मजबूत करते हैं।

अब रहे सप्तशीलों के अतिचार सो ऊपर ऊपर प्रतिमा में इनके अतिचार टलते हैं सो ही यहां बताया जाता है।

१ सामयिक व्रत के अतिचार और दोष तीसरी प्रतिमा में।

२ अतिथि संविभाग के अतिचार चौथी प्रतिमा में।

३ भोग के अतिचार छटी प्रतिमा में।

४ उपभोग के अतिचार सप्तम प्रतिमा में।

५ भोगोपभोग इन दोनों के अतिचार पांचवी प्रतिमा में।

६ देशव्रत के अतिचार व दिग्व्रत के अतिचार अष्टम प्रतिमा में मोटे रूप से तथा अनर्थदन्ड व्रत के अतिचार मोटे रूप अष्टम प्रतिमा में पलते हैं, सूक्ष्म नहीं।

७ नवम प्रतिमा में अनर्थदंड व्रत को मध्यम रूप पाला जाता है सूक्ष्म रूप से मुनिव्रत में होता है।

८ भोगोपभोग को मध्यम दर्जे अनुमति त्याग प्रतिमा में पाला जाता है। कारण जब तक लंगोटी रहती है।

९ ऐलक क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका ठीक रीति से इनके भी अनर्थदंडव्रत नहीं पलता कारण, इनके कपड़ों का धोना, सुखाना बना ही रहता है।

१० पूर्णरीति से ये सब पाप छोड़कर निर्द्वंद होने के व्रत हैं सो इनको समझकर मुनिव्रत की उपासना करो।

११ अतिथि संविभाग व्रत ऐसा जोरदार है किगृहस्थ अवस्था हो या उत्तम श्रावकपन हो। यह व्रत मुनिराज के ही पूर्ण रीति से पलता है पहिले पूर्ण होता ही नहीं इसलिये मुनिराज बनने की योग्यता का अभ्यास कर अतिथिसंविभागी बनो। क्योंकि इनके किसी प्रकार का आरम्भ नहीं सर्व प्रकार के जीवों जैसे त्रस और स्थावर कायिक सबकी दया करने वाला एक मुनिधर्म है। क्योंकि ऐसा हिंसाजनक कभी उपदेश भी नहीं देते, जिससे जीवों को बाधा हो।

## सल्लेखना का विचार

जिस समय अनिवार्य उपसर्ग आजावे, दुर्भिक्ष हो या महान क्लिष्ट रोग हो जावे या कोई प्रकार का दुःसाध्य सर्प डस जावे या गोहरा खा जावे, शरीर निपात होने का कोई कारण आ जावे, जैसे जंगल में आग लग जावे, निकलने का उपाय न होवे, सिंहव्याघ्रादि सामने आ जावे, जिसमें यह निश्चय दीखे कि अब बचना कठिन है ऐसे समय पर शान्ति को धारणकर धर्म की प्रभावना के अर्थ इस जीर्ण शरीर को शान्ति पूर्वक त्याग देना इस ही को समाधि या सल्लेखना कहते हैं।

इसप्रकार की सल्लेखना के दो भेद होते हैं। प्रथम १ भेद तो प्रयोग सल्लेखना, दूसरा भेद शीघ्र सल्लेखना। इन दोनों प्रकार की सल्लेखना का ही यहाँ पर स्वरूप कहेंगे।

यह समाधिमरण जीव का परम उपकारी है। क्योंकि यह अधिक से अधिक सात, आठ भव में सब कर्म खिपाकर मोक्ष करा देता है। यह समाधिमरण इस जीव को सुख का दाता महान उपकारी अथवा यों कहिये संसाररूप विपत्ति में यह जीव का मित्र ही नहीं परम मित्र है।

जैसे कोई पथिक सागर के परले पार जाना चाहता है। परन्तु वह इन तीन वस्तु के बिना परले पार पहुंच नहीं सकता। जैसे पहिले तो उसको श्रद्धा हो कि मेरा उतरना अमुक घाट पर होना ठीक है। दूसरे उसको उसका ज्ञान हो कि इस जलाशय में यहाँ होकर जाने से ठीक-ठीक जगह पर पहुँच जाऊँगा। इसी रास्ते से और भी जो गये हैं वे बिना खेद के

पहुँच गये। तीसरे उसके पास जहाज या बोट या नाव आदि हो जिसमें बैठकर चल सके और वहाँ पहुंच जावे।

इन तीनों वस्तुओं के बिना हमारा सागर पार होना नहीं हो सकता। इस ही तरह हम उस मोक्षपुरी को जाने वाले पथिकों के पास भी तीन पदार्थ चाहिये।

१ पहिले तो उसको यह श्रद्धान होना चाहिये कि निरतिचार व्रत पालूंगा तब ही मेरा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं।

२ दूसरे होवे ज्ञान, जिससे कि व्रतों को शास्त्रोक्त रीति से पालन कर दूषण नहीं लगावे।

३ तीसरे समाधिमरण रूप चारित्र, सो इसके लिये कषाय और काय को कृश करे और शास्त्रोक्त मरण करे तब ही वह पुरुष सात, आठ भव में मोक्ष प्राप्तकर सकता है और हमेशा के लिये इस संसाररूप विषयों के प्रकोप से बचकर सदा के लिये सुखी हो सकता है।

यहाँ पर जो व्रत धारण किया है, इन व्रतों का पूर्ण साधन किया है जिसका फल यह समाधिमरण का लाभ है। सो वह इस शरीर से होता है। शरीर बिना नहीं। इसलिये इस शरीर को ऊपर लिखे अनुसार कारण नहीं मिले और पूरी तरह धर्म-ध्यान में सावचेत रहे तब तक इसके वास्ते ठीक-ठीक सूत्र के अनुकूल आहार विहार और औषधि का कारण मिलावे। परन्तु उसमें भी पूरा-पूरा खयाल रखे।

जैसे सेठ मुनीम को तनख्वाह देता है और कार्य लेता है वैसे ही शरीर की रक्षा करे न कि इसका दास हो जावे। कदाचित किसी कारण से कोई कर्म के निमित्त से असाता

वेदनीय जनित रोग पीड़ा हो जावे तो योग्य प्रतिकार स्वरूप दवा करले व बिल्कुल उदासीन न रहे।

खयाल में रखने की बात है कि रोग का तो तब ही उपशम होगा जबकि असाता वेदनीय जनित कर्म का उपशम होगा। बिना असाता वेदनीय के दूर हुये रोग परीषह उपसर्ग हरगिज भी नहीं टलेंगे। इसलिये खयाल रहे कि धर्म ध्यान के प्रयोग में जैसे अभक्ष दवाइयाँ तथा असेव्य आदिक और भी ऐसे ही कई प्रयोग कदापि नहीं करे और धर्म में सावचेत रहे।

शिवकोटि आचार्य महाराज ने देश व्रतियों के समाधि मरण को बाल पण्डित मरण कहा है इस ही को समझकर पूरी तौर से इस मरण को सुधारना है। इसलिये यहाँ इस का कथन किया जावेगा।

पाक्षिक श्रावक से लेकर बारह व्रतों के धारक तथा ग्यारहवीं प्रतिमा तक के पालक श्रावक का मरण बाल पण्डित मरण कहलाता है।

## सल्लेखना धारियों का कर्तव्य

रत्नकरंडश्रावकाचार

श्लोक नम्बर १२३-१२४-१२५-१२६-१२७ देखें इन श्लोकों का अर्थ इसप्रकार है—

मृत्यु के समय की क्रिया का सुधारना यानि काय और कषाय को कृश करके सन्यास धारण करना ही तप का फल है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है। सबसे रागद्वेष वैर को छोड़कर शांति के साथ सबसे सम्बन्ध छोड़ देवे और परिग्रहरूपी पिशाच को दूर कर देवे। स्वजनों और परजनों से क्षमा करावे और

आप स्वयं क्षमा कर देवे। मायाचार, छल, कपट रहित होकर कृत, कारित, अनुमोदना से किये हुए पापों की अनुमोदना करके मरण पर्यन्त के लिये पाँचों पापों ( हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह ) को सर्वथा छोड़ देवे और महाव्रतों को धारण करे। इसके अलावा शोक, भय, ग्लानि, चिन्ता, कालुष्यता, अरति, जुगप्सा का भी त्याग करे तथा अपने बल पूर्वक उत्साह को प्रगट करे, शास्त्ररूपी अमृत से अपने मन को आनन्दित करे। यानि तत्त्वज्ञान के अनुभव में लग जावे॥ १२३ ॥

कषायों को ज्ञान से कृश करते हुए शरीर को कृश करने के लिये क्रम से पहिले भोजन को त्यागे, केवल दुग्ध या मट्ठा ( छाछ ) को ही लेवे, बाद में उसको भी छोड़ता हुआ, कांजी या गर्म जल को ही पीवे, फिर शक्ति को संभालकर उस गर्म जल को भी छोड़ दे, खूब प्रयत्न के साथ श्री पंच-परमेष्ठी के चरणों मे ध्यान को लगावे और पच नमस्कार मन्त्र को जपता हुआ शरीर का त्याग करे यानि शरीर को छोड़ देवे ॥ १२४ ॥

यह अनुभव योग्य बात है कि आहार पानी को शनै २ घटावे एकदम नहीं, जिससे किसी प्रकार की कषाय या आकुलता पैदा न हो। इससे शाँत परिणामों को काफी मदद मिलती है। जिससे मरण समय मे उत्साहरूप परिणाम बढ़ते रहे सो ही सल्लेखना मरण कहलाता है॥ १२५ ॥

अगर अपनी शक्ति होवे तो परिग्रहरूप फाँसी को त्याग कर मुनियों के समान नग्न दिगम्बर होकर चटाई पर आसन

लगाकर बैठे या लेट जावे और आत्म स्वरूप में अपने चित को लगा के शान्ति रखे, कदाचित ऐसा नहीं कर सके तो आवश्यक कपड़े बर्तन रखकर शेष का त्याग करे ॥ १२६ ॥

कहने का मतलब है कि जो शक्ति को नहीं छिपावे, वही पुरुष समाधि को धारण कर सकता है। जघन्य रूप से इस प्रकार भी कर सकता है कि अपनी शक्ति के अनुकूल एक-एक दो-दो या चार दिन के प्रमाण से भोजन का त्याग व परिग्रह का त्याग करे, यदि इसप्रकार करते २ जीवित रह जावे तो फिर अपनी शक्ति अनुकूल त्यागव्रत को फिर सम्हाल लेवे ॥ १२७ ॥

कहने का मतलब यह है कि ऐसे समाधिमरण के अधि-कारी सामान्यतया गृहस्थ लोग भी हो जाया करते हैं। परन्तु गृहस्थपने के प्रपंचों से अलग यानि दूर रहे। जहाँ एकान्त स्थान होवे वहाँ चार साधर्मी भाइयों का सम्बन्ध रखे, सो वे साधर्मी भाई शास्त्रों को सुनावें और उपदेश भी देवें, जिससे परिणाम वैराग्य रूप परणति में स्थिरीभूत रहें। स्वजन या परजन तथा चेतन अचेतन पदार्थों का सम्बन्ध हरगिज नहीं मिलावे। मोह विकार से बचे, शक्ति को नहीं छिपाकर आचरण करे। यदि शक्ति ही वेदनायुक्त होवे तो लेटा-लेटी करता रहे, परन्तु पंच नमस्कार मन्त्र के जाप्य को हरगिज भी न विसारे। स्वयं जपे या दूसरों से सुनता रहे। शक्ति अनुसार उसपर ध्यान देकर अर्थ विचारता रहे। जिससे अशुभास्रव रुके और धर्म भावना दृढ़ बनी रहे।

## पंच प्रकार की शुद्धि का विवेक

सागारधर्मामृत के अष्टम अध्याय में पं० आशाधर जी

कहते हैं कि सल्लेखना शुद्धि पूर्वक होती है। वह शुद्धि विवेक इसप्रकार से होता है:—

शय्योपध्यालोचनान्नवैयावृत्त्येषु पंचधा।
शुद्धिस्यात्दृष्टिधी वृत्तविनयावश्यकेषुवा ॥४२॥
विवेकोऽक्षकषायाङ्गभक्तोपधिषु पञ्चधा।
स्याच्छय्योपधिकायान्नवैयावृत्यकरेषु वा ॥४३॥

अर्थ—शय्या और संयम, के साधन उपकरण, आलोचन तथा अन्न और वैयावृत्ति में तथा अन्तरग दर्शन, ज्ञान चारित्र और विनय व छह ( सामायिकादि ) आवश्यकों में शुद्धि रखना चाहिये। इन पाचों वातों का समाधि में पूरा खयाल रखे।

इन्द्रिय विषय, कषाय शरीर भोजन और संयम के उपकरण मे तथा शय्या परिग्रह, शरीर अन्न और वैयावृत्ति में पूर्ण रीति से विवेक रखे।

इस प्रकार विधि पूर्वक समाधिमरण करने वाले क्षपक को चाहिये कि वह समाधिमरण के जो अतिचार होते है उनको बचावे। अब उन अतिचारों को कहते है—

समाधिमरण के अतिचार और उनका स्वरूप—

जीवितमरणाशंसे सुहृदनुरागं सुखानुबंधमजन्।
स निधानं संस्तरगश्चरेच्च सल्लेखना विधिना ॥४५॥

अर्थ—सॉथरेपर आरूढ़ हुआ व्यक्ति १ जीने की आशंसा, २ मरने की आशंसा। ३ मित्रानुराग। ४ सुखानुबन्ध।

५ निदानबन्ध नाम के अतिचारों को त्यागता हुआ सल्लेखना की विधि सहित प्रवृत्ति करे। आगे इनका पृथक् २ खुलासा करते हैं।

१ जीवित आशंसा—यह शरीर अवश्य हेय है। जल बुद्बुद के समान अनित्य है। इत्यादि बातों को नहीं स्मरण करते हुए इस शरीर की स्थिति कैसे कायम रहेगी। ऐसे प्रति आदर भाव को जीविताशंसा कहते हैं। अथवा पूजा विशेष देखकर व खूब वैयावृति देखकर, सब से अपनी प्रशंसा सुनकर मन में यह मानना कि चार प्रकार आहार त्याग करके भी मेरा जीवन कायम रहे तो बहुत अच्छा है। क्योंकि यह सब उपरोक्त विभूति मेरे जीवन के निमित्त से हो रही है। इस प्रकार के जीवन की आकांक्षा को जीविताशंसा कहते हैं।

२ मरणाशंसा—रोगों के उपद्रव की आकुलता से प्राप्त जीवन में संक्लेश वालेके प्रति उपयोग को लगाना मरणाशंसा अतिचार है। जब मरण करने वाले पुरुष ने चार प्रकार का आहार का त्याग कर दिया है और कोई उसका पूजा पूर्वक आदर नहीं करता। किसी प्रकार की उसकी श्लाघा नहीं करता उस समय उसके अन्तःकरण में ऐसे भावों का पैदा होना कि मेरा शीघ्र मरण हो जावे तो बहुत अच्छा है। ऐसे विविध प्रकार के परिणामों के होने को मरणाशंसा अतिचार कहते हैं।

३ सुहृदानुराग—बाल्य काल के अपने मित्रों के साथ हमने ऐसे २ खेल खेले हैं, हमारे अमुक मित्र विपत्ति पड़ने पर सहायता करते थे। अमुक मित्र हमारे उत्सवों में तत्काल उप-

स्थित होते थे इस प्रकार बाल्यकालीन मित्रों के प्रति अनुराग भावों का पुनः २ स्मरण करना सुहृदानुराग नाम अतिचार है।

५ सुखानुबन्ध—मैंने ऐसे भोग भोगे हैं। मैं ऐसी शैय्याओं पर सोता था। मैं ऐसा खेल खेलता था, इत्यादि प्रकार से प्रीति विशेष का पुनः २ स्मरण करना सुखानुबन्ध नाम अतिचार है।

५ निदान—इस सुदुश्चर तप के भाव से मुझको भावी जन्म में इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती, नारायण, राजा, महाराजा, सेठ, श्रीमान, धीमान आदि पद की प्राप्ति होवे। ऐसे भविष्य में अभ्युदय की प्राप्ति की वांछा करना उसको निदान नामा अतिचार कहते है।

इस प्रकार के समाधिमरण के अधिकारी पुरुष और स्त्री दोनों हुआ करते हैं, जो कि देशव्रती होवे।

## देशव्रती श्राविकाएं भी मुनियों की तरह समाधिमरण कर सकती हैं—

देशव्रती श्रावक भी सर्व परिग्रह को छोड़कर मुनिराज रूप नग्न दिगम्बर होकर समाधिमरण (शरीर त्याग) कर सकता है ऐसा सिद्धांतों में कथन है।

श्राविकाओं के लिए साधन प्रौढ़ हो तो वे भी एकान्त स्थान में समाधिमरण मुनिराज के तुल्य नग्न होकर कर सकती हैं, रोक नहीं। परन्तु हो एकान्त स्थान। जहां पर पुरुष लोगों के आने जाने योग्य कार्य न हो। कारण स्त्री जाति लज्जा परीषह सहने में असमर्थ हुआ करती है।

## अब शव को कैसे ले जाया जावे यह बताते हैं—

मरण हो जाने के पश्चात् जो शरीर रहता है उसको शव कहते हैं। इसके लिए जैसा उस व्यक्ति ने नियम पालन किया हो वैसा ही उसके मरण में उत्सव करे न कि शोक करे।

धन्य है उस पुरुष को जिसने दुर्लभ समाधिमरण धारण किया। ख्याल रहे जैसा अवसर प्राप्त हो वैसा विमान बनवा कर शव को निकाले या चकडोल बनवावे या सादा तौर से उत्सव करे परन्तु समाधिमरण का उत्सव जरूर होना चाहिये। जिससे दूसरे धर्मात्मा भी इस कार्य के लिये प्रयत्न करने को प्रस्तुत होवें और धर्म की विशेष प्रभावना करें।

ऐसा अवसर प्राप्त न होवे तो जिस देश में जैसा रिवाज होवे वैसा ही करे। परन्तु व्रतियों के लिये मरण समय की विधि दूसरे प्रकार की हुआ करती है। सो भी यहाँ दिखाई जाती है ताकि ध्यान में रहे।

## व्रतियों के मरण समय की क्रियाएं

मृत शरीर को प्रेत भी कहते हैं। प्रेत को रखकर श्मशान में ले जाने के वास्ते एक सुशोभित विमान यानो पालकी बनवाये उसको धोकली भी कहा करते हैं। इसको नये वस्त्रों से सुसोभित कर देवें और उसके ऊपर उस मुर्दे यानी प्रेत को ठीक तौर से रखे जिससे वह गिरने नहीं पावे, खूब रस्सी से कस देवे, मुर्दे के गिरने से बड़ी हानि मानी है, और हानि कारक बात है ही, फिर उस विमान को योग्य अपनी जाति के पुरुष मिलकर अपने कंधों पर धर कर श्मशान

भूमि की तरफ रवाना होवे, ध्यान रहे स्त्री हो या पुरुष हो उस का सिर ले जाते समय ग्राम की तरफ ही होवे, पैर श्मसान की तरफ करके ले जावें।

## अग्नि शुद्ध कैसे हो दाह क्रिया के मन्त्र

समाधिमरण करने वाला त्यागी हो या गृहस्थ हो उसको जलाने वास्ते होम की हुई अग्नि हो, होम उसको कहते हैं, कि १०८ दफे मन्त्र पढ़ले अग्नि शुद्ध हो जाती है ऊँ ह्रॉ ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वशांति कुरु कुरु स्वाहा।

सामने तीन वर्णवाला या शूद्र वर्ण वाला हो उनके वास्ते अग्नि गृहस्थ के घरकी काम आ सकती है।

कन्या या विधवा मरे तो उसके वास्ते पांच दफे दर्भ रखकर काष्ट द्वारा अग्नि सुलगाई गई हो।

काष्ठ से चिता रखते समय ऐसा मन्त्र पढ़े ऊँ ह्रीं ह्रः काष्ठसंचयं करोमि स्वाहा इस प्रकार पढ़ते रहें और लकड़ी बिना सुली देखकर चुनते जावे धरते जावे।

तत्पश्चात मुर्दे को चिता पर सुला देवे उसका मन्त्र ऊँ ह्रीं ह्रौं झ्रौं असि आउसा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा।

फिर उस चिता में अग्नि लगावे और चिता पर घृत डाले उसका मंत्र ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि सन्धुक्षणं करोमि स्वाहा।

फिर खूब घृत और चंदनादिक द्रव्य डाल देवे। जिससे वह अग्नि खूब जोर से जलकर उस मुर्दा को ( शव को ) शीघ्रता पूर्वक जला देवे। जब मुर्दा सर्व प्रकार से ठीक-ठीक जल

जावे, तब स्नान करने के लिये आते वक्त उस मुर्दे को जलाने वाला या उस मुर्दे के कुटुम्बीजन उस चिता की प्रदक्षिणा करके स्नान के लिये निषाण कुँआ बावड़ी तालाब आदि जलाशय पर जावे।

यह ध्यान में रहे कि वह रत्नत्रय धारक स्त्री या पुरुष होवे तो उसका चिन्ह स्थापित करे, भूलें नहीं।

दूसरे दिन जलाने वाला या मुर्दे के कुटुम्बीजन को उस चिता पर दुग्ध डालना चाहिये।

तीसरे दिन चिता की अग्नि को शांत करे और चिता की तमाम भस्मी को एक ऐसे स्थान पर रखे जो वर्षात में बहजावे।

## दाह क्रिया करने वालों का कर्तव्य

मुर्दे को जलाने वाले पुरुषों को चाहिये कि वे चौदह दिन तक और कुटुम्बीजन बारह दिन तक ब्रह्मचर्य व्रत और शील संयम से रहें। बारह भावनाओं का चिंतवन करते रहें। उस मुर्दे के शरीर को जलाया है उसमें अनेक प्राणी मन सहित सैनी जीव जलाये गये हैं, उनका पश्चाताप पूर्वक प्रतिक्रमण करते रहें। और ध्यान स्वाध्याय विचार आदि में रहे। वह देव पूजा शास्त्रों की स्वाध्याय गुरुओं की उपासना नहीं करे। देशान्तर नही जावे, जमीन पर संयम पूर्वक सोवे। दिन में १ दफे ही भोजन करे। चौदह दिन व १२ दिन सब धर्म ध्यान में व्यतीत करे। दाह क्रिया के अधिकारी कुटुम्बीजन ही हुआ करते हैं। अगर कुटुम्बीजन नहीं होवें तब कोई भी दाह क्रिया कर सकता है।

तेरहवें दिन भक्ति पूर्वक पात्रों को दान देना योग्य है। अगर उत्तम पात्र प्राप्त नहीं होवे तो सामान्य साधर्मी भाइयों को भोजन करा दे, मगर दान जरूर करे।

इस प्रकार १०८ श्री निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैनाचार्य
श्री सूर्य सागर जी महाराज द्वारा विरचित
आवश्यक मार्तण्ड नामक ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

शांतिमस्तु! कल्याणमस्तु!

## पुस्तक के सहायक दातारों की नामावली

[illegible]००) श्रीमान् ला० प्यारेलाल जी मानसिंह जी सर्राफ, सब्जी मंडी, देहली।

५००) श्रीमान् ला० कुन्दनलालजी मादीपुरिया, कटरा खुशालराय देहली।

३००) श्रीमती सौभाग्यवती गुलाबदेवी व शान्तादेवी धर्मपत्नी श्रीमान् मदनलाल जी गंगवाल लाडनू कलकत्ते वाले विवेकमार्तण्ड छपाया उसकी बचत में रहे सो।

१२५) श्रीमती फूलांदेवी श्यालकोटवाली, नई देहली।

११०॥) श्रीमती सौभाग्यवती लक्ष्मीदेवी धर्मपत्नी श्रीमान् सेठ गजराजजी गंगवाल कलकत्ते वालों ने लावनी संग्रह छपवाई उसमें से बच रहे।

१०५।≈) श्रीमती सौ० विमलप्रभा देवी धर्मपत्नी श्री पन्नालालजी गंगवाल लाडनू, कलकत्ते वाले, दूसरी पुस्तकें छपाई उसमें से बचत रही।

१०१) श्रीमान् ला० विमलकुमार जी, पहाड़ी धीरज, देहली।

१००) श्रीमती सिंगारीदेवी पहाड़ी धीरज देहली।

१००) श्रीमान् सेठ शोभागमल जी ठोल्या गंगापुर हींगोन्या वाले

५१) श्रीमान् ला० सुखानन्दकुमार जी सीदीपुरा बाजार, देहली

५०) ला० पन्नालाल जी सुमतिप्रकाश जी कासन वाले, देहली।

२५) ला० शीतलप्रसाद जी हलवाई, दरीबा, देहली।

२५) श्रीमती सौभाग्यवती गुणमालादेवी धर्मपत्नी ला० किसनलाल जी कपड़े वाले, पहाड़ी धीरज, देहली।

२५) श्रीमती ज्ञानवतीदेवी पहाड़ी धीरज, देहली।

---

[illegible]१८≈)